CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृतवाङ्मयम् - १

प्रकृतिविहार:

(पद्यात्मकरचनानां सानुवादप्रस्तुति:)

आचार्य: महाप्रज्ञ:

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्गार

संस्कृत और प्राकृत–ये दोनों ऋषि भाषाएं हैं। इनको समझे बिना भारत की आत्मा को नहीं समझा जा सकता। आज विद्यार्थियों में अर्थकारी विद्या के प्रति जितना अधिक आकर्षण है उतना अध्यात्म-विद्या और प्राच्य-विद्या के प्रति नहीं। वर्तमान युग की अपेक्षा है–प्राच्य विद्या के प्रति आकर्षण बढ़े।

आज संस्कृत भाषा का उतना ही मूल्य है जितना मूल्य एक जीने वाले व्यक्ति के लिए श्वास का है।

जहां सम्यक् प्रकार से कृत प्रतिष्ठायुक्त निष्ठा होती है तब उसके अनुराग में विफलता ही कहां ? वहां भी यह संस्कृत भाषा ही इसका उदाहरण है। फिर उसके विकास में सन्देह क्यों ?

आचार्य महाप्रज्ञ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

प्रकृतिविहारः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैनविश्वभारतीप्रकाशनम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाप्रज्ञसंस्कृतवाङ्मयम्-१

प्रकृतिविहारः

(स्फुटश्लोक-आशुकवित्व-यात्रावृत्त-कथालोकादीनां)
सानुवादप्रस्तुतिः

आचार्यः महाप्रज्ञः

मुख्यसम्पादिका
मुख्यनियोजिका साध्वी विश्रुतविभा

सम्पादकौ
शासनश्रीः मुनिः राजेन्द्रकुमारः / साध्वी सिद्धप्रज्ञा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-३४१३०६
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (०१५८१) २२२०८०/२२४६७१
ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

ISBN : 978-81-7195-161-1

आर्थिक सौजन्य : मदनचंद तोलामल गोठी चेरिटेबल ट्रस्ट

प्रथम संस्करण : सितम्बर २०१०

मूल्य : २००/- (दो सौ रुपया मात्र)

मुद्रक : पायोराईट प्रिण्ट मीडिया प्रा. लि. उदयपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तुतिः

तेरापंथधर्मसंघे संस्कृतभाषायाः स्तुत्यो विकासः संवृत्तः। धर्मसंघस्य नैके आचार्याः गीर्वाणवाण्याः विद्वांसः संजाताः। मुनयोऽपि तस्याः वैदुष्यमलभन्त। साध्वीभिः समणीभिश्चापि देववाणी स्वाध्ययनस्य विषयीकृता।

परमपूज्याः आचार्यश्रीमहाप्रज्ञाः सुरभाषायां विशिष्टं वैदुष्यमध्यकार्षुः। अनेके ग्रन्थास्तत्रभवद्भिः वृन्दारकभाषायां प्रणीताः। स्फुटश्लोकाः अपि रचिताः। नाकिवाण्यां समस्यापूर्तिश्चापि व्यधायि। आशुकवित्वं पूज्यचरणानां कृते सहजमिव संजातम्। अहं मन्ये सुरसरस्वतीनभस्तले परमपूज्यपादाः समुज्ज्वलं नक्षत्रमिव आसन्। अत्रभवतां त्रिदशवाण्याः प्रकाण्डं पांडित्यमाकर्षणस्य केन्द्रं समजनि। परमपूज्यक्रमाणां विद्यमानतायामेव योजनेयं निरमायि यद् आचार्यवर्याणां संस्कृतवाङ्मयं प्रकाशे समागच्छेत्।

संभवतः अत्रभवद्भिः गुरुवर्यैरसकृत् प्रोक्तम्—'मया जैनागमसंपादने साफल्यं प्राप्तं तस्य कारणमेकमिदं यन् मम संस्कृतव्याकरणे सुष्ठु अधिकारः आसीत्। तथा च परमपूज्यकालूगणिप्रेरणया मया अष्टमोध्यायः (सिद्धहेमशब्दानुशासनस्य) शिक्षितः। तेन प्राकृतव्याकरणमप्यधीतम्।'

परमपूज्यानां श्रीमहाप्रज्ञानां संस्कृतवाङ्मयं जनानां सम्मुखे उपढौक्यतेतरामिदानीम्। तस्य प्रथमोऽयं विभागः 'प्रकृतिविहारः'। परमपूज्यपादानां विभिन्नाः साहित्यिक्यो रचनाः विलसन्तितमामस्मिन् ग्रन्थे। अनेन संस्कृतभाषाविज्ञैः गरिष्ठं भोजनं प्राप्तुं शक्ष्यते इति मे मतिः।

महत्त्वमञ्चमधिरोढुमर्हस्य ग्रंथस्यास्य संपादने मुख्यनियोजिकया साध्वीविश्रुतविभया आत्मीयभावपूर्णः श्रमो न्ययोजि। एवमेव मुनिवर्यस्य राजेन्द्रकुमारस्य साध्वीसिद्धप्रज्ञायाश्चापि श्रमशीकरा अस्य संपादने विकीर्णाः। एषां महाभागानां पराक्रमेण संस्कृतरसज्ञानां सम्मुखं प्रस्तूयतेतरामयं महाग्रन्थः।

आचार्यः महाश्रमणः

सरदारशहरपत्तनम् (सभाभवनम्)

११ अगस्त २०१०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संपादकीय

आचार्य महाप्रज्ञ एक विलक्षण व्यक्ति थे। उनका व्यक्तित्व अनेक विकास-रश्मियों से आलोकित था। वे तेरापंथ धर्मसंघ के दशमाधिशास्ता थे। उनका जीवन विविध आयामों से प्रभास्वर था। वे मूर्धन्य साहित्यकार, दार्शनिक, योगीपुरुष, कविचेता, तत्त्ववेत्ता, अध्यात्म और विज्ञान के समन्वयक, प्रबुद्ध चिन्तक, जैनमनीषी, वैयाकरण, नैयायिक, प्रवचनपटु, लेखनी के धनी, युगीन समस्याओं के समाधायक, संस्कृत के प्रखर आशुकवि और हिन्दी-संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं के उद्भट विद्वान् थे। उनकी जीवन-यात्रा बिन्दु से सिन्धु, तलहटी से शिखर के आरोहण की यात्रा है।

बिन्दु से सिन्धु

उनका जन्म राजस्थान के टमकोर गांव में हुआ। नाम रखा गया–'नथमल'। उस समय वहां औपचारिक शिक्षा के लिए भी कोई विद्यालय नहीं था, मात्र वर्णमाला का अध्ययन गुरुजी से किया जाता था। बचपन में न तो अध्ययन के प्रति कोई लगाव था और न ही कोई साधन थे। मुनिश्री छबीलजी स्वामी की प्रेरणा से उनके अन्तर्मानस में वैराग्य का अंकुर प्रस्फुटित हुआ। तेरापंथ धर्मसंघ के अष्टमाधिशास्ता पूज्यपाद कालूगणी के पास वे अपनी संसारपक्षीया माता बालूजी के साथ दीक्षित हो गए। पूज्य कालूगणी ने उसी दिन मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ) को शैक्षिक और साधनात्मक विकास के लिए मुनि तुलसी को सौंप दिया। उनके कठोर अनुशासन में बाल मुनि के जीवन का नया सफर प्रारंभ हुआ। शैशव काल में बालसुलभ चंचलता के कारण अध्ययन की गति बहुत ही मंद थी। उसके लिए मुनि तुलसी बहुधा चिन्तित रहते थे। एक बार बाल मुनि नथमल संस्कृत-व्याकरण का अध्ययन कर रहे थे। 'जिन' शब्द की सिद्धि में 'सि' प्रत्यय के प्रयोग के संदर्भ में समझाया जा रहा था। मुनिश्री का तर्क था–'सि' प्रत्यय ही क्यों? 'ति' प्रत्यय का प्रयोग क्यों नहीं? इस स्थिति को देख कर मुनि तुलसी ने सोचा–यह गंभीर अध्ययन कैसे करेगा?

समय के साथ भाग्य बदला, पुरुषार्थ जागा और उन्होंने मन ही मन एक दृढ़ संकल्प किया–मैं अपने सहपाठियों से अध्ययन में कभी पीछे नहीं रहूंगा और ऐसा कोई कार्य नहीं करूंगा जिससे मुनि तुलसी नाराज हों।

इन दो दृढ़ संकल्पों के साथ ही उनके भाग्य का महासूर्य उदित हो गया, प्रतिभा का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जागरण हो गया। दिनोंदिन वे आगे बढ़ने लगे। उन्होंने जैन आगमों का, संस्कृत-साहित्य का, भारतीय दर्शन तथा अन्य दर्शनों का तलस्पर्शी तुलनात्मक अध्ययन किया। संस्कृत और प्राकृत भाषा पर उनका समान प्रभुत्व स्थापित हो गया। सन् १९५४ मुंबई में विश्व के प्रसिद्ध विद्वान् पेनिसिल्वेनिया यूनिवर्सिटी, अमेरिका के संस्कृतविभागाध्यक्ष एवं अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज के अध्यक्ष डॉ. नार्मल ब्राउन आचार्य तुलसी के पास आए। उन्होंने प्रार्थना के स्वरों में कहा—मैं भारत की भूमि पर आया हूं। भगवान् महावीर की वाणी प्राकृत भाषा में 'स्याद्वाद' विषय पर सुनना चाहता हूं। आचार्यवर के निर्देशानुसार मुनि नथमलजी ने लगभग आधा घंटा वक्तव्य दिया। प्राकृत भाषा में बोलने का उनका वह प्रथम ही अवसर था। उसे सुनकर डॉ. ब्राउन की आंखों से हर्ष के आंसू छलक पड़े और उन्हें लगा कि आज उनकी भारत-यात्रा सफल हो गई है।

मुनिश्री ने हिन्दी में बहुत लिखा, किन्तु संस्कृत भाषा में उससे कम नहीं लिखा। हिन्दी लेखन से पूर्व उनका सारा पठन-पाठन और लेखन संस्कृत भाषा में ही संपादित होता था। मातृभाषा की तरह संस्कृत भाषा भी उनके लिए सहज, सरल और सरस भाषा थी। उन्होंने जो कहा और जो लिखा वह साहित्य की एक अमूल्य निधि बन गई। कम शब्दों में भावों की अभिव्यंजना करना, प्रदत्त विषय पर तत्काल आशुकवित्व करना, संस्कृत में नई-नई कल्पनाओं की उड़ाने भरकर संस्कृत में श्लोक रचना करना, संस्कृत में गहन विषयों का प्रतिपादन करना आदि उनकी प्रज्ञा-जागरण के निदर्शन हैं। अनेक स्थानों पर मूर्धन्य विद्वानों द्वारा उनकी कसौटियां भी हुईं पर वे उनमें सर्वत्र सफल रहे।

योजना और रूपरेखा

मई २००८ में आचार्य महाप्रज्ञ जयपुर, अणुविभा में प्रवासित थे। एक दिन मैं आचार्यवर की सेवा में थी। मैंने गुरुदेव से निवेदन किया—आचार्यवर! क्या हम आपके संस्कृत-साहित्य को 'तुलसीसंस्कृतवाङ्मयम्' की भांति नया आकार दे सकते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा—'क्यों नहीं। संस्कृत में अनेक रचनाएं हैं। कुछ प्रकाशित हैं, कुछ अप्रकाशित हैं। उनको व्यवस्थित रूप दिया जा सकता है।'

आचार्यवर की स्वीकृति प्राप्त कर मैंने जयपुर में ही संस्कृत-सृजन के संकलन का काम शुरू कर दिया। समग्र संस्कृत-साहित्य के अवलोकन के पश्चात् उसकी रूपरेखा निर्धारित की गई। उसे दो भागों में विभक्त किया गया—

- **पद्यबद्ध रचनाएं**—इन रचनाओं में विविध नामों से कई रचनाएं पहले से ही प्रकाशित हैं—१. अतुला तुला २. रत्नपालचरित्रम् ३. अश्रुवीणा ४. संबोधिः ५. भिक्षुगीता ६. भिक्षुगाथा। इनके अतिरिक्त सैकड़ों श्लोक ऐसे भी हैं जो अभी तक प्रकाश में नहीं आए और वे पूज्यवर की डायरियों और हस्तलिखित प्रति 'कर्णिका' में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुरक्षित थे। अनेक फुटकर श्लोक जैन भारती, विज्ञप्ति तथा प्रेक्षाध्यान आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी उपलब्ध हुए, जो अभी तक अज्ञात थे।

● **गद्यबद्ध रचनाएं**—इन रचनाओं में मुकुलम् और सुप्रभातम्—ये दो रचनाएं पहले से प्रकाशित हैं, पर अनेक स्थानों तथा समय-समय पर विविध प्रसंगों पर लिखे गए अनेक निबन्ध ऐसे भी हैं जो अभी तक अप्रकाशित हैं।

'अश्रुवीणा' और सुप्रभातम्—ये दोनों कृतियां वर्तमान में यूनिवर्सिटी के पाठ्यक्रम में लगी हुई हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ ने भाष्य लिखने की परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए संस्कृत भाषा में प्रथम बार **'आचारांग-भाष्यम्'** का प्रणयन किया। यह उनकी मौलिक देन है। यह गद्यमय महनीय कृति है। इस भाष्य में प्राचीन व्याख्या साहित्य से हटकर अनेक नए अर्थ प्रस्थापित किए गए हैं, अनेक नए तथ्यों का प्रतिपादन हुआ है। इससे नए परिवेश में प्राचीन तथ्यों को समझने की सुलभता हुई है।

इन समग्र रचनाओं को हमने 'महाप्रज्ञसंस्कृतवाङ्मयम्' के नाम से चार विभागों में गुंफित करने की योजना प्रस्तुत की। आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रस्तुत योजना को उपयुक्त मानकर उसकी तत्काल क्रियान्विति के लिए यथोचित निर्देश प्रदान किया। संस्कृतवाङ्मयम् के चार विभागों की विषय-वस्तु इस प्रकार है—

१. **महाप्रज्ञसंस्कृतवाङ्मयम्–१.** इसमें तुला-अतुला के विविधा, आशुकवित्वम्, यात्रावृत्तम् तथा कुछेक अन्य साहित्यिक सामग्री का समावेश है। इनके अतिरिक्त अप्रकाशित मेघाष्टकम्, समुद्राष्टकम् आदि तथा आचार्य महाप्रज्ञ की व्यक्तिगत डायरियों में सुरक्षित अन्य सामग्री और जैन भारती आदि पत्र-पत्रिकाओं में यत्र तत्र विकीर्ण अनेक श्लोकों का भी इसमें संग्रहण हुआ है।

२. **महाप्रज्ञसंस्कृतवाङ्मयम्–२.** यह ग्रंथ तुला-अतुला की अवशिष्ट सामग्री, समय-समय पर विरचित विविध अष्टकम्, भिक्षुगीता, भिक्षुगाथा, जैनन्यायपञ्चाशती तथा जैन धर्म और तेरापंथ से संबंधित सामग्री से गुंफित है।

३. **महाप्रज्ञसंस्कृतवाङ्मयम्–३.** यह ग्रंथ संबोधिः, अश्रुवीणा तथा रत्नपालचरित्रम्—इन महाकाव्यों से अनुबंधित है।

४. **महाप्रज्ञसंस्कृतवाङ्मयम्–४.** मुकुलम्, सुप्रभातम् तथा अन्य प्रकाशित-अप्रकाशित अनेक निबंध इस ग्रंथ के विषय-वस्तु हैं।

इस योजना के अंतर्गत प्रकाशित-अप्रकाशित सामग्री कों जुटाने का कार्य प्रारंभ हो गया। यद्यपि मैंने इसको संकलना का कार्य जयपुर में ही शुरू कर दिया था फिर भी विविध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्रोतों और अनेक मुनियां से समय-समय पर आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा विरचित अनेक श्लोक तथा आशुकविताएं उपलब्ध होती गईं और वह सारी सामग्री यथास्थान जुड़ती गईं। अनेक रचनाएं ऐसी भी हैं जिनका नाम और रचनास्थल ज्ञात है पर वे सर्वथा अनुपलब्ध हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ

प्रस्तुत ग्रन्थ **'प्रकृतिविहारः'** महाप्रज्ञसंस्कृतवाङ्मयम् का प्रथम विभाग है। इसमें आठ उच्छ्वास हैं। इसका प्रथम उच्छ्वास है–**'प्रकृति-प्रेक्षा'**। प्रकृति में सहजता, रमणीयता और आनन्दानुभूति का दर्शन होता है। मनुष्य ने सदा ही प्रकृति को पसन्द किया। महाकवियों के अनेक महाकाव्य प्रकृतिचित्रण से चित्रित हैं। यदि किसी को सत्यं, शिवं और सुन्दरम् का दिग्दर्शन करना हो तो वह प्रकृति से ही किया जा सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ प्रकृति के उपासक थे। वे लिखते हैं–**'प्रकृतौ विद्यमानानां सौन्दर्यं जायते ध्रुवम्'**–जो लोग प्रकृति में रहते हैं उनमें निश्चित ही सौन्दर्य होता है। उन्होंने प्रकृति के अनेक चित्रों को अपनी कल्पनाशक्ति के आधार पर काव्य का रूप दिया। इस उच्छ्वास में आचार्यवर ने उन्हीं मनोहारी और हृदयस्पर्शी चित्रों का चित्रण किया है–

सन् १९५४ मुम्बई में आचार्य तुलसी चातुर्मासिक प्रवास कर रहे थे। मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) ने वहां विशाल समुद्र को देखा। कवि-मानस में कल्पनाओं का ज्वार उठने लगा। सहज ही **'समुद्राष्टकम्'** का निर्माण हो गया। कवि ने केवल समुद्र के आकार-प्रकार को ही नहीं देखा, वर्तमान की समस्याओं के संदर्भ में भी देखा। वर्तमान की ज्वलन्त समस्या है–संग्रहवृत्ति। समुद्र संग्रह का प्रतीक माना जाता है। कवि ने संग्रहवृत्ति पर प्रहार करते हुए समुद्र को संबोधित करते हुए लिखा–

जलनिधे! सरितामपकर्षणं, सृजसि तेन महानिति गीयसे।
बत! निरर्थकसंग्रहपद्धतिरुपनतास्ति तया जगती द्रुता।।

(समुद्राष्टकम्-१, पृ. १२)

समुद्र! तुम नदियों का पानी लेकर महान् बने हो, ऐसा लोग कहते हैं। खेद है कि तुम्हारे में यह निरर्थक संग्रहवृत्ति पनप रही है, इससे विश्व पीड़ित हो रहा है।

कवि ने मेघ को गहराई से देखा। **'मेघाष्टकम्'** का सृजन हो गया। मेघ के माध्यम से उन्होंने मानवीय प्रकृति को चित्रित करते हुए लिखा कि सभी लोग भरे हुए को ही भरते हैं–

संतप्ता भूविभागा हुतवहसदृशा यत्र धूलीप्रदेशे।
बिन्दून् बिन्दून् प्रतीक्षां विदधति सतृषं दह्यमाना झलाभिः।।
तत्राम्भोदावलोको न भवति सुलभो यत्र सिन्धोर्लहर्य-
स्तत्रैते भूरि दृश्या ऋतमिति सकलाः पूर्णमापूरयन्ति।।

(मेघाष्टकम्-१, पृ. ६)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस मरुधर प्रदेश में सूर्य के आतप से भूमि-विभाग अग्नि की तरह तप उठता है और जहां के प्यासे लोग चिलचिलाती धूप से झुलसते हुए बूंद-बूंद के लिए प्रतीक्षा करते हैं, वहां मेघ का दर्शन भी सुलभ नहीं होता। किन्तु जहां समुद्र की लहरें उछलती रहती हैं, वहां बादलों का समूह आकाश में मंडराता रहता है। (वर्षा भी अत्यधिक होती है।) यह सत्य है कि सभी लोग भरे हुए को ही भरते हैं।

इसी प्रकार इस उच्छ्वास में कवि ने कमल, सूर्य आदि विषयों के माध्यम से भी मनुष्य के स्वभाव का मार्मिक विश्लेषण किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ का दूसरा उच्छ्वास है–'संवित्तिः'। इस उच्छ्वास में यत्र-तत्र आचार्य महाप्रज्ञ की संवेदनशील-चेतना का साक्षात्कार होता है। एक बार आचार्यवर अपने कक्ष में विराज रहे थे। सामने छज्जे पर कबूतर बैठे थे। सूर्यास्त हो चुका था। अंधेरे ने अपने पांव फैला दिए। कबूतर उस छोटे से छज्जे पर अपने पंजे टिकाकर फड़फड़ा रहे थे। उस फड़फड़ाहट को देखकर आचार्यवर का कवि-मानस बोल उठा–

अनन्तलीला प्रथमे क्षणे तु, छदौं गृहाणां स्थितिरुत्तरेऽस्मिन्।
दिने च रात्रौ च कियान् प्रभेद, इदं कपोता हि विदन्ति नान्ये।।

(कियान् प्रभेदः ?, पृ. २८)

पहले क्षण में अनंत आकाश में उड़ने वाले ये कबूतर दूसरे क्षण में घरों के छज्जों पर आ बैठते हैं। दिन और रात में कितना अंतर होता है–इसे कबूतर ही जान सकते हैं, दूसरे नहीं।

आचार्य महाप्रज्ञ परिवर्तन के क्रम को अनिवार्य मानते हैं। इस क्रम में आश्चर्य के लिए कोई अवकाश नहीं है। प्रकाश और अंधकार, उदय और अस्त–इस दुनिया में चलता रहता है। आचार्यवर का यही भाव प्रस्तुत श्लोक में मुखर हुआ है–

अस्तंगते सवितरि प्रतिभाति चन्द्रश्चन्द्रेऽस्तमाव्रजति भाति सहस्रभानुः।
चित्रं किमत्र जगतः खलु रीतिरेषा, कश्चिन्नयत्युदयमस्तमियर्त्ति कश्चित्।।

(अनतिक्रमः क्रमः, पृ. ३३)

सूर्य के अस्त होने पर चन्द्रमा उदित होता है और चन्द्रमा के अस्त होने पर सूर्य उदित होता है। इसमें आश्चर्य क्या है? क्योंकि संसार की यही रीति है कि कोई उदित होता है और कोई अस्त।

हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता के प्रथम वर्ष में आयोजित अखिल भारतीय संस्कृत-काव्य प्रतियोगिता में लिखा गया गीत 'स्वतंत्रभारतभारती' भी इसी उच्छ्वास में है। इस गीतरचना प्रतियोगिता में मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ) ने प्रथम स्थान प्राप्त कर तेरापंथ धर्मसंघ का ही नहीं, संपूर्ण जैन समाज का गौरव बढ़ाया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस उच्छ्वास में नीतिमान् कौन? श्रद्धेय कौन? नेतृत्व की कसौटी और मनोबल को बढ़ाने वाले तथ्यों पर भी विमर्श किया गया है।

'अध्यात्मम्' नामक तीसरे उच्छ्वास में आचार्य महाप्रज्ञ ने वर्तमान युग में घटित होने वाली संयोग-वियोगजन्य स्थितियों की ओर संकेत किया है। कौन उनको सहन कर सकता है? उसका तथ्यपरक विश्लेषण इस प्रकार है–

नानास्थितिर्योगवियोगजन्या, संसारचक्रे समुपस्थिता स्यात्।
अध्यात्मचित्तं तदिदं सहेत, न सोढुमन्यत् प्रभविष्णु किञ्चित्।।
(अध्यात्मम्, पृ. ५३)

संसार चक्र में संयोग और वियोग से होने वाली नाना स्थितियां समुपस्थित होती हैं। उसे अध्यात्म से अनुप्राणित चित्त सहन कर लेता है, दूसरा (पदार्थ से अनुप्राणित चित्त) उसे किञ्चित् भी सहन नहीं कर सकता। यह आध्यात्मिक प्राणी की एक कसौटी है।

ध्यान जीवन का आनन्द है, शक्ति का स्रोत है। वह तभी संभव है जब व्यक्ति ध्यान की गहराइयों में प्रवेश करता है। एक दिन मैंने आचार्य महाप्रज्ञ को एक श्लोक सुनाया–

पदे पदे निधानानि, योजने रसकूपिकाः।
भाग्यहीना न पश्यन्ति, बहुरत्ना वसुन्धरा।।

श्लोक सुनते ही आचार्यवर ने श्लोक का संदर्भ बदलकर अध्यात्म का पुट दे दिया–

पदे पदे सदानन्दः, शक्तिस्रोतः पदे पदे।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, बहुरत्नं शरीरकम्।।
(ध्यानम्, पृ. ५४)

पग-पग पर सदा आनन्द है, पग-पग पर शक्तिस्रोत है। यह शरीर बहुरत्न वाला है, किन्तु ध्यानहीन व्यक्ति उसे देख नहीं पाते।

इस उच्छ्वास में सुख-दुःख, काय-सिद्धि, समस्या-समाधान, आत्मतुला, आत्मान्वेषण, सत्सङ्ग आदि विषयों का भी विशद विश्लेषण हुआ है।

प्रस्तुत ग्रंथ का चौथा उच्छ्वास है–'प्रज्ञालोकः'। इसमें आचार्य महाप्रज्ञ ने एक सौ पन्द्रह विषयों पर श्लोक-रचना कर अपनी विशिष्ट काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है। योगक्षेम वर्ष का प्रातःकालीन समय। चतुर्विध धर्मसंघ की उपस्थिति। निर्धारित विषयों पर नियमित प्रवचन। प्रवचन से पूर्व निर्धारित विषय पर श्लोक-रचना। एक-दो श्लोकों में पूरे प्रवचन की निष्पत्ति सबके सामने आ जाती थी।

इस प्रवचन शृंखला में एक जगह आचार्यवर ने सुलभ क्या है और दुर्लभ क्या है? इस संदर्भ में मनुष्य की दुर्बलता और सबलता को उजागर किया है–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रमोदो दुर्लभो लोके, ईर्ष्याऽस्ति सुलभा नृणाम्।
गुणे संभागिता नेष्टा, दोषे संभागिता प्रिया।।
(किं दुर्लभः सुलभश्च, पृ. ९९)

शिष्य ने पूछा—प्रभो! मनुष्य के लिए दुर्लभ क्या है? सुलभ क्या है?

गुरु ने समाधान की भाषा में कहा—वत्स! प्रमोद-भावना—दूसरों की विशेषता देखकर प्रमुदित होना मनुष्य के लिए दुर्लभ है और ईर्ष्या सुलभ है।

मनुष्य की प्रकृति विचित्र है। वह गुण में संभागी होना नहीं चाहता, दोष में संभागी होना उसे प्रिय लगता है। यही मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है। इसके विपरीत आचरण करना सबलता है।

सुख और दुःख का चक्र निरंतर चालू रहता है। व्यक्ति कभी सुख का अनुभव करता है और कभी दुःख का। आचार्यवर ने इनके मूल कारण की मीमांसा वर्तमान संदर्भ में प्रस्तुत की—'नेगेटिव एटीट्यूट दुःख का हेतु है और पॉजेटिव एटीट्यूट सुख का।' इन दोनों के मूल में है—भीतर का भाव। वह शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकार का होता है—

सुखं दुःखं तयोर्मूलं, विचारश्च वरावरः।
तयोर्मूले स्थितो भावः अन्तःशुद्धस्तथेतरः।।
(सुखदुःखयोर्मूलम्, पृ. १०५)

शिष्य ने पूछा—भंते! सुख-दुःख का मूल कारण क्या है?

शिष्य! सुख का मूल कारण है—प्रशस्त विचार और दुःख का मूल कारण है—अप्रशस्त विचार।

उन दोनों के मूल में है—भाव, जो शुद्ध व अशुद्ध—दोनों प्रकार का होता है।

पांचवां उच्छ्वास **'आशुकवित्वम्'** की अभिधा से अभिहित है। इसमें आचार्यप्रवर द्वारा विविध स्थानों और विविध समयों में विहित आशुकविताओं का समाकलन है। आचार्य महाप्रज्ञ ने अपनी काव्यचेतना से स्फूर्त्त होने वाली काव्यरचनाओं से विद्वानों को प्रभावित और चमत्कृत किया। उनकी आशुकविताओं में उनका कविरूप, काव्यवैशिष्ट्य, अन्तःस्फुरणा और सारस्वतिक प्रतिभा का साक्षात्कार होता है।

आचार्य महाप्रज्ञ गुरुदेव तुलसी की विभिन्न प्रदेशों की यात्राओं में सहयात्री बनकर रहे। उन यात्राओं में आशुकवित्व को अधिक व्यापक बनने का अवसर मिला। विशेष आयोजनों में प्रायः आशुकवित्व का उपक्रम निर्धारित था। लोगों की मांग और गुरुदेव का प्रोत्साहन—इन दोनों के सम्मिलन से प्रायः आशुकवित्व करने का प्रसंग उपस्थित हो जाता था। सन्तों की जागरूकता से अनेक आशुकविताएं लिखी गईं और उनका संकलन होता गया। उसके आधार पर प्रस्तुत उच्छ्वास के चार विभाग हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. समस्यापूर्तिरूप आशुकवित्व

२. प्रदत्त समस्यानुबद्ध आशुकवित्व

३. प्रदत्त विषयानुबद्ध आशुकवित्व

४. प्रसंगानुबद्ध आशुकवित्व

इन आशुकविताओं में आचार्य महाप्रज्ञ ने स्वान्तःसन्तोषाय, स्व-अभ्यासाय अथवा गुरोर्निर्देशाय समस्यापूर्त्ति रूप आशुकवित्व कर अपने काव्यकौशल का परिचय दिया है।

सन् १९४८, छापर में समस्या दी गई–'सिन्दूरबिन्दुर्विधवाललाटे'। आचार्य महाप्रज्ञ ने पांच श्लोकों में उसकी समस्यापूर्ति की। उदाहरण के रूप में उसका एक श्लोक यहां प्रस्तुत है–

पत्युर्वियोगाश्रुसरित्प्रवाह-प्रक्षालिते वर्ष्मणि नैकशोऽपि।
स्वेदोदबिन्दुद्रविते क्व कल्प्यः, सिन्दूरबिन्दुर्विधवाललाटे।।

(सिन्दूर...., पृ. ११९)

पति के वियोग में पत्नी द्वारा अश्रुरूपी सरिता के प्रवाह से अनेक बार अपने शरीर को प्रक्षालित करने पर और अनेक बार पसीने की बून्दों से भी शरीर गीला हो जाने पर यह कल्पना कहां रह जाती है कि विधवा के ललाट पर सिन्दूर का बिन्दु है? (वह तो धुल जाता है।)

इस प्रकार समस्यापूर्ति के अनेक उदाहरण प्रस्तुत उच्छ्वास में गुंफित हैं।

आचार्यप्रवर के जीवन में कुछ ऐसे प्रसंग भी उपस्थित हुए जिनमें अनायास ही आशुकविताओं का निर्माण हो गया। उनमें कुछेक प्रसंग दृश्यपरक थे तो कुछ व्यक्तिपरक। कुछेक स्थानपरक थे तो कुछ प्रकृतिपरक।

सन् १९५० में आचार्य तुलसी आगरा पधारे। वहां विश्वप्रसिद्ध, कलापूर्ण ऐतिहासिक ताजमहल के अवलोकन के पश्चात् आचार्य महाप्रज्ञ का कविमानस काव्य की ऊर्मियों से तरंगित हो उठा और तत्काल उन्होंने 'ताजमहल' पर आशुकविता कर जनमानस को चमत्कृत कर दिया। उसका एक श्लोक यहां उद्धृत करना सार्थक है–

अन्तर्गतस्ताजमहालयस्य वलक्षतामैक्षिषि भव्यभित्तेः।
अरेऽट्टहासोऽस्ति विलासिबुद्धेर्यत्कारितो ही स्वयमेव राज्ञा।।

(ताजमहलः, पृ. १६५)

मैंने ताजमहल के भीतर सुन्दर भित्ति की धवलिमा देखी, पर वास्तव में वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धवलिमा नहीं थी। आश्चर्य है कि वह तो स्वयं सम्राट् (शाहजहां) द्वारा कृत अपनी विलासितापूर्ण बुद्धि का अट्टहास मात्र था।

१४ जनवरी, २००३ में आचार्य महाप्रज्ञ मुंबई जाते समय केलवा बीच पधारे। उस दिन मकर संक्रांति का दिन था। सामने सामुद्रीय मनोहरी दृश्य था। सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था। समुद्र तट पर चतुर्विध धर्मसंघ के सम्मुख आचार्यप्रवर ने 'सूर्यास्त' पर आशुकविता करते हुए छह श्लोक प्रस्तुत किए। प्रकृति के जीवन्त चित्रण की झलक प्रस्तुत दो श्लोकों में इस प्रकार है—

जलेऽपि सूर्यो गगनेऽपि सूर्यः, सूर्यद्वयं चित्रमलं तनोति।
बिम्बं यदुच्चैः प्रतिभाति नित्यं, निम्नास्पदं तत् प्रतिबिम्बमेति ।।
(सूर्यास्तम्, पृ. १८०)

आकाश में भी सूर्य है और समुद्र के जल में भी सूर्य दिखाई दे रहा है। दो सूर्यों का होना विचित्रता उत्पन्न कर रहा है। यह सत्य है कि बिम्ब सदा ऊपर होता है और वही निम्नास्पद होकर प्रतिबिम्ब हो जाता है।

शनैः शनैः नीरमुपैति पार्श्वे, गम्भीरताया इदमेव चिह्नम्।
परां स्पृशन्तीह जना न ते स्युः, गाम्भीर्यभाजो भुवने कदापि ।।
(सूर्यास्तम्, पृ. १८१)

समुद्र का जल धीरे-धीरे निकट आ रहा है, यही गम्भीरता का लक्षण है। जो व्यक्ति एक साथ वेग से उत्कर्ष का स्पर्श करते हैं वे कभी इस संसार में गंभीर नहीं हो सकते।

इस प्रकार अनेक प्रसंगों पर आचार्यवर ने अपनी काव्यचेतना से अनेक दृश्य-पदार्थों को काव्य का विषय बनाया। प्रस्तुत उच्छ्वास में पैंतीस प्रसंग आशुकवित्व से अनुबद्ध हैं।

प्रदत्त समस्या अथवा विषय पर छन्द की प्रतिबद्धता के साथ आशुकविता करना वास्तव में कठिनतम कार्य है। कुछ विद्वान् मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) को पराजितभाव से, कुछ चमत्कारभाव से और कुछ आश्चर्यभाव से समस्याएं देते थे। उनको सुनने पर रोमांच भी होता था और मन में अकारण एक विकल्प भी उत्पन्न होता था कि मुनिश्री प्रस्तुत समस्या की संपूर्ति कैसे कर पाएंगे? आचार्य महाप्रज्ञ में पूर्ण आत्मविश्वास था, गुरुप्रसाद और अंतःप्रज्ञा का जागरण था। वे परीक्षण की उन कसौटियों में सदा विजयी रहे। इस संदर्भ में दो प्रसंगों की चर्चा करना अपेक्षित है—

पूना का प्रसंग है। आचार्य तुलसी के सान्निध्य में वाग्वर्धिनी सभा में संस्कृत का एक बड़ा आयोजन था। अनेक मूर्धन्य विद्वानों की संभागिता उसमें थी। प्रवचन के पश्चात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्वज्जन मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) के श्रीमुख से आशुकविता सुनने के लिए उत्सुक थे। एस. पी. कॉलेज के अवकाश प्राप्त डॉ. के. एन. वाटवे, एम. ए., पीएच.डी. संस्कृत विभागाध्यक्ष ने आशुकविता के लिए 'घटीयन्त्रम्' विषय देते हुए स्रग्धरा छन्द में उसका वर्णन करने के लिए कहा। उस समय तक मुनिश्री ने प्रस्तुत छन्द में कोई आशुकविता नहीं की थी। गुरुदेव तुलसी ने उनकी ओर देखते हुए कहा—छन्द नया है, क्या तुम प्रस्तुत छन्द में आशुकविता कर दोगे, अन्यथा वाटवेजी से छन्द बदलने के लिए कह दें। आचार्य महाप्रज्ञ में अतुल आत्मबल था। छन्द नया होते हुए भी उन्होंने पूर्ण आत्मविश्वास के साथ 'कोई चिन्ता नहीं'—यह कहकर समस्यापूर्ति में चार श्लोक प्रस्तुत किए। एक जैन मुनि के मुख से आशुकविता सुनकर सारी सभा भित्तिचित्र की भांति जड़वत् हो गई और सारा हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। उन श्लोकों में एक श्लोक को यहां प्रस्तुत करना प्रासंगिक है—

चक्षुर्यद् वान्तरालं स्फुरितमपि भवेत् तन्न यन्त्रस्य चेष्टा,
विज्ञाः पश्यन्तु सर्वे वयमिह मुनयः कस्य हस्तेऽस्ति यन्त्रम्?
चक्षुष्मानत्र बुद्धो भरतजनपदे स्वात्मना स्वं प्रपश्येत्,
बाह्ये दृष्टिं वितन्वन् बहिरपि सुदृशः! स्यात्पराधीनचेताः।।

(घटीयन्त्रम्, पृ. १४५)

जब यह अन्तःचक्ष खुल जाता है तब वह कोई यन्त्र की चेष्टा नहीं मानी जाती। सारे विद्वान् देखें कि हम मुनि हैं। हमारे किसके हाथ में घड़ी है? भारत में उसे ही चक्षुष्मान् माना गया है, जो अपनी आत्मा से अपने आपको देखता है। चक्षुष्मान् विद्वानो! बाहर की ओर दृष्टि पसारने वाले का चित्त बाह्य वस्तुओं के अधीन हो जाता है।

दूसरा प्रसंग बनारस का है। आचार्य तुलसी के सान्निध्य में बनारस संस्कृत महाविद्यालय में संस्कृत का कार्यक्रम था। मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) ने संस्कृत में 'स्याद्वाद' पर प्रवचन किया। एक विद्वान् के मन में कुछ विरोधी प्रतिक्रिया हुई। लम्बे समय तक वाद-प्रतिवाद होता रहा। अन्त में उसका समाधान हो गया। विद्वानों में आशुकविता सुनने की ललक थी। तीन विद्वानों ने तीन समस्याएं दीं। उनमें से एक समस्या—'सरस्यामालस्यादिव पतति पाटीरपवनः' को निदर्शन के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है—

श्रमो विश्रामार्थी भवति यदिदानीं प्रतिजनं,
जनाः सर्वे खर्वं निदधतितमां गर्वमतुलम्।
इयं वृत्तिः प्रादुर्भवति यदि वा चेतनजने,
'सरस्यामालस्यादिव पतति पाटीरपवनः।।

(सरस्यामालस्यादिव...पृ. १३९)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज श्रम मानो प्रत्येक मनुष्य में प्रविष्ट होकर विश्राम करने की बात सोच रहा है। सब मनुष्य निकृष्ट कोटि का अतुलनीय गर्व कर रहे हैं। यदि चेतनावान् मनुष्यों में इस प्रकार की वृत्ति प्रकट होती है तो कहना होगा कि चन्दनवन का पवन सरोवर में मानो अलसाया हुआ सुस्ता रहा है।

इस प्रकार आशुकवित्व के सैकड़ों-सैकड़ों प्रसंग आचार्य महाप्रज्ञ के सामने आए। उनमें कुछ प्रसंग कड़ी कसौटी के थे। आज भी प्रदत्त कुछ जटिल समस्याएं वर्तमान के पन्नों में अंकित हैं। जैसे—

- **मशकगलकरन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम्।** पृ.१३६
- **सूच्यग्रे कूपशतकं तदुपरि नगरी तत्र गंगाप्रवाहः।** पृ.१३६
- **कर्दन्त्यमी मानवाः।** पृ.१३८
- **न रजनी न दिवा न दिवाकरः।** पृ.१३९
- **कथं भवेद् नो जठराग्निशान्तिः।** पृ.१४०
- **न जाने किं द्रष्टुं स्फुरितनयनस्तारकगणः।** पृ.१३६

आचार्य महाप्रज्ञ का बीसवीं सदी का उत्तरार्ध संस्कृत विद्वानों के सम्पर्क का समय था। भंडारकर इंस्टीट्यूट, तिलक विद्यापीठ, संस्कृत वाग्वर्धिनी सभा, बनारस संस्कृत महाविद्यालय, डेक्कन कॉलेज पूना, अन्नामलै यूनिवर्सिटी चेन्नई आदि राष्ट्रविश्रुत विद्या-केन्द्रों में आचार्यवर के संस्कृत में अनेक कार्यक्रम आयोजित हुए। सभी स्थानों में आचार्यवर ने अपने प्रज्ञाजन्य चमत्कारों से जनमानस पर अलौकिक छाप छोड़कर अपने प्रभुत्व को स्थापित किया।

अनेक संस्कृत रचनाएं, अनेक आशुकविताएं प्रस्तुत ग्रंथ में संकलित हैं। कुछ आशुकविताएं ऐसी भी हैं जो सन्तों द्वारा लिखी नहीं जा सकी और सामान्यतः उन्हें संकलित करने का उस समय तक मानस भी नहीं था। उस समय न तो आधुनिक साधन थे और न ही लिखने वालों की नियोजित व्यवस्था थी। साधनाभाव में वे सारी आशुकविताएं अनन्त आकाश में विलीन होकर मात्र अतीत की स्मृतियां रह गईं। काश! आज वे आशुकविताएं सुरक्षित रह पातीं तो प्रस्तुत उच्छ्वास का आकार-प्रकार समृद्ध होता और ग्रंथगौरव भी बढ़ता। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में उन आशुकविताओं का रचनास्थल, विषय, विषय देने वाला और रचनातिथि का उल्लेख मिलता है, किन्तु सामग्री अनुपलब्ध है। ऐतिहासिकता की दृष्टि से उनकी संक्षिप्त-सी तालिका नीचे प्रस्तुत की जा रही है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिनांक	प्रदत्तविषय	विषयप्रदाता	स्थान	संदर्भ
२५ जून, १९५३	१. पाप क्या है?	श्री मुरलीधर	नागौर	–
८ अगस्त, १९५४	२. शान्ति और शून्य	–	केशव बाग का हॉल, मुंबई	–
१० सितम्बर, १९५४	३. कल्पसूत्र का रहस्य	डॉ. नार्मल ब्राउन	सिक्कानगर, मुंबई	–
२१ मई, १९५५	४. शिक्षा की सफलता के तीन पहलु	–	धरणगांव	शिक्षासम्मेलन
२३ मई, १९५५	५. तरति शोकमात्मवित्	–	एरन्डोल	–
२७ मई, १९५५	६. वन्दनीया भारतीया संस्कृतिः	दोंडाईचावासी गोविन्दराय शास्त्री	धरणगांव	साहित्यगोष्ठी
४ जून, १९५५	७. शिवशंकर को विडाल ने खा डाला	शिवाजी भावे	धुलिया (महाराष्ट्र), शिवाजी भावे का आवास-स्थल	–
२३ मार्च, १९५८	८. ताजमहल	–	आगरा (अचल भवन)	–
	९. गुरुकुलजीवनम्	–	कन्या गुरुकुल	संस्कृत गोष्ठी
४ जून, १९५८	१०. वसन्त	–	सीतापुर	–
१५ दिसंबर, १९५९	११. चूल्हा	–	दिगम्बर जैन भवन, गया	–
२२ जनवरी, १९६०	१२. यौवनं भारभूतम् लावण्यं लुण्ठितम्	–	जटिया बगीचा, खुर्जा	संस्कृतगोष्ठी
२२ अक्टूबर, १९६०	१३. जीवेमः शरदः शतम्	–	राजनगर	–
४ अक्टूबर, १९६१	१४. एकान्तवासं हि सुखम्	–	बीदासर	–
२४ जून, १९६७	१५. उद्धृतम्	–	पालीताणा (सौराष्ट्र)	आचार्यश्री धुरंधरसूरि के मिलन के अवसर पर
९ सितम्बर, १९६७	१६. मृत्यु, चश्मा, शून्य, जीवन की भव्यता	–	महाकक्ष सनातन हॉल की सूरत	–
	१७. संशोधनम् मन्दिर	डॉ. आर. एन. दाण्डेकर, एम.ए. पीएच.डी	पूना	–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपरोक्त आशुकविताओं के अतिरिक्त कुछेक आशुकविताएं ऐसी भी हैं जिनके विषय का नामोल्लेख ही प्राप्त नहीं है, स्थान और दिनांक का उल्लेख मिलता है।

प्रस्तुत ग्रंथ का छट्ठा उच्छ्वास है—'यात्रावृत्तम्'। इसमें जयपुर और रणथम्भोर की यात्रा का आंखों देखा चित्रण है। उस समय के उबड़-खाबड़ मार्ग, आचार्य तुलसी का जयपुर पदार्पण, वहां के श्रावकों की स्थिति, 'ठोलिया' भवन में पहला प्रवास, धर्म की बुद्धिगम्य व्याख्या आदि बातों का इसमें विशदता से वर्णन हुआ है।

रणथम्भोर वर्तमान में अभयारण्य नाम से प्रसिद्ध है। कविमानस ने उस समय की उन्नत पर्वतमाला, वृक्षावलि की सघन श्रेणी, रणदभंवर का किला, गणेश मन्दिर, दुर्ग की प्राकृतिक खाई और उसमें जीर्ण-शीर्ण तोपों आदि का इतना सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है कि पढ़ने वाला यही सोचता है कि आचार्य महाप्रज्ञ अपनी यात्रा के साथ हमें भी यात्रा करा रहे हैं। आचार्यवर ने वहां गणेश मन्दिर में गणेशजी की एक मूर्त्ति देखी। उसके केवल सूंड थी, उदर नहीं था। ऐसा क्यों? कविचेतना में कल्पना ने पांखें लगाकर उड़ना प्रारंभ किया और उसका कारण खोज लिया। उसे प्रस्तुत करते हुए कवि बोल उठा—

धान्याऽभावे वसति न जनस्तत्कुतः क्षुत्समाधि-
रालोच्यैवं मनसि सुतरां यत्र लम्बोदरोऽपि।
संकोच्य स्वं वपुषि धरते केवलं वारणास्यं,
राहू राहोः शिर इति नयो द्वैतमापच्च तेन।।
(रणथम्भोरयात्रा, पृ. १९८)

धान्य का अभाव होने के कारण वहां कोई मनुष्य नहीं रहता। ऐसी स्थिति में भूख शांत कैसे हो—मन में निरंतर ऐसा सोचकर गणेशजी भी अपने आपका संकोच कर, शरीर पर केवल हाथी का मुंह (सूंड) धारण करने लगे।

तर्कशास्त्रीय न्याय के अनुसार राहू का सिर नहीं कहा जाता। राहू का केवल धड़ ही होता है, वह (सिर) राहू शब्द से गृहीत हो जाता है। किन्तु उस गणेशजी की मूर्ति का केवल सिर देखने के बाद यह लगा कि यह तर्कशास्त्रीय न्याय दोहरा हो गया है—एक राहू के लिए और एक गणेशजी के लिए।

इस ग्रंथ का सातवां उच्छ्वास है—'कथालोकः'। कथाएं आबाल-वृद्ध सभी के लिए रोचक, सरस और पठनीय होती हैं। आचार्य महाप्रज्ञ की प्रवचन शैली प्रायः कथाप्रधान होती थी। वे गूढ़तम विषयों को भी कथा के माध्यम से सरलता से प्रतिपादित कर देते थे। उन्होंने अनेक कथाओं को प्रांजल संस्कृत-भाषा में गुंफित किया। प्रस्तुत उच्छ्वास में छब्बीस कथाओं का समावेश है। कुछ कथाएं लम्बी हैं तो कुछ एक-एक श्लोक में निबद्ध हैं। इन कथाओं में उन्होंने गागर में सागर को भरने का काम किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस उच्छ्वास में 'ममत्वम्' नामक कथा छत्तीस श्लोकों में गुंफित है। ममत्व का बन्धन महाभयंकर होता है, यह इस कथा का प्रतिपाद्य है। ग्रंथ में समाकलित सभी कथाएं शिक्षा, ज्ञान, सरसता और रोचकता को समेटे हुए हैं और सबको एक नयी दिशा देने वाली हैं।

इस ग्रंथ का अंतिम और आठवां उच्छ्वास है—**'पाइयभारई'**। यह प्राकृत भाषा में निबद्ध है। इसमें तीन अध्याय संकलित हैं—

१. तुलसीमंजरी पसत्थिसिलोगा, २. रायगिहसंकप्पो, ३. अप्पनिवेदणं।

आचार्य महाप्रज्ञ का संस्कृत और प्राकृत भाषा पर समान अधिकार था। वे दोनों भाषाओं में आशुकविता करते थे, वक्तव्य देते थे। आचार्य हेमचन्द्र ने हैमशब्दानुशासन का आठवां अध्याय प्राकृत आदि छह भाषाओं में गुंफित किया। आचार्य महाप्रज्ञ ने **'तुलसी मञ्जरी'** नाम से उसी अध्याय की बृहत् प्रक्रिया लिखी। उसके प्रत्येक प्रकरण के अन्त में व्याकरणानुरूप गाथाओं की रचना है और व्याकरण के साथ गुरु की गुरुता को प्रदर्शित किया है। उदाहरण के रूप में उसका एक श्लोक यहां प्रस्तुत है—

जस्स नो जम्हदम्हत्तं, अत्थि तं तुलसीगणिं।
जमम्हत्तेणं जाणामो, सब्भत्तिभावणा हि सा।।
(तुलसीमंजरी...., पृ. २३४)

जिसमें युष्मद् (तू) और अस्मद् (मैं) का भेद नहीं है, उस तुलसीगणी को हम अस्मद् (उत्तम-पुरुष) रूप में जान रहे हैं और वही वास्तव में सद्भक्ति की भावना है।

'रायगिहसंकप्पो' के अन्तर्गत आचार्य महाप्रज्ञ ने प्राकृत भाषा में आशुकवित्व करते हुए भगवान् महावीर के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित की है।

राजगृह, वैभार पर्वत का सर्वोच्च शिखर। वहां सप्तपर्णी गुफा का द्वार। आचार्य तुलसी ससंघ वहां पधारे और विशाल शिलाखण्ड पर विराजे। इतिहासकार कहते हैं कि यह वही शिलाखण्ड है जहां भगवान् महावीर के चरण टिके थे। उस दृश्य को देखकर आचार्य महाप्रज्ञ का कविमानस भगवान् महावीर की स्मृति में मुखर हो उठा—

मिउभावं कठोरत्तं, किच्चा चिअ समन्निअं।
अभू परीसहेऽदीणो, मिऊ सव्वेसु पाणिसु।।
(रायगिहसंकप्पो, पृ. २३६)

भगवान महावीर ने मृदुता और कठोरता का समन्वय किया। यह शिलापट्ट ऊपर से चिकना और भीतर से कठोर है। भगवान महावीर के आसन के लिए यह इसलिए उपयुक्त बना कि वे परीषहों को सहन करने में अदीन—कठोर थे और प्राणियों के प्रति मृदुता (स्निग्धता) का अनुभव करने वाले थे।

'अप्पनिवेदणं' में आचार्य महाप्रज्ञ का पच्चीस गाथाओं में निबद्ध आत्मनिवेदन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तुत है। उन्होंने 'श्रामण्य' को स्वीकार किया यह वे जानते हैं किन्तु क्यों स्वीकार किया, यह नहीं जानते। इसके उत्तर में उन्होंने यही कहा है कि ज्ञान सभी अर्थों का प्रवर्तक नहीं होता। अतः श्रद्धा का प्रकाश ज्ञान के प्रकाश से महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रकार एक अध्यात्मयोगी का यह आत्मनिवेदन प्रत्येक अध्यात्म साधक के लिए मननीय है।

इस प्रकार आठ उच्छ्वासों में संवलित यह महाग्रन्थ संस्कृतरसिक विद्वानों के लिए एक बहुमूल्य उपहार है। इसमें समाकलित कुछ रचनाएं स्वतंत्र अनुभूति के क्षणों में लिखी हुई हैं, इसलिए उनको शुद्ध काव्य कहने की अपेक्षा दर्शन-संपुटित काव्य कहना अधिक संगत है। कुछ रचनाएं घटना, प्रकृति, व्यक्ति या स्थानविशेष को लेकर लिखी गई हैं। कुछ रचनाएं सहज स्फुरणा से स्फूर्त्त है तो कुछ समस्या और विषय से प्रतिबद्ध हैं। उनमें देश-काल के परिवर्तन के साथ उनकी भाषा शैली और अभिव्यंजना में भी अन्तर है।

प्रस्तुत आठ उच्छ्वासों में अनेक विषय समाहित हुए हैं और प्रत्येक विषय कम से कम एक अथवा अनेक श्लोकों में निबद्ध है। उसकी सूचि इस प्रकार है–

क्र.सं.	उच्छ्वासनाम	विषयसं.	श्लोकसं.
१.	प्रकृतिप्रेक्षा	२६	८६
२.	संवित्तिः	२३	७३
३.	अध्यात्मम्	२०	७४
४.	प्रज्ञालोकः	११५	१६२
५.	आशुकवित्वम्	–	–
	• समस्यापूर्त्तिः	३३	८५
	• प्रदत्तसमस्या	१३	१४
	• प्रदत्तविषयः	२५	९९
	• प्रसंगबद्धः	३५	८४
६.	यात्रावृत्तम्		
	• जयपुरः		२३
	• रणथम्भोरः		२२
७.	कथालोकः	२६	६४
८.	पाइयभारई	३	
	• तुलसीमंजरी...		१५
	• राजगिहसंकप्पो		५
	• अप्पनिवेदणं		२५
	कुल योग	३१९	८३१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार इस महाग्रंथ में कुल तीन सौ उन्नीस विषयों का प्रतिपादन हुआ है और कुल आठ सौ इकतीस श्लोकों की रचना हुई है। ग्रंथ के परिशिष्ट में ग्रंथगत एक सौ एक सूक्तियों का संचयन और ग्रंथ में कितने-कितने श्लोक किन-किन छन्दों में निबद्ध हैं उसकी तालिका भी प्रस्तुत की गई है। ये दोनों परिशिष्ट भी पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।

प्रस्तुत महाप्रज्ञसंस्कृतवाङ्मयम् का यह प्रथम विभाग 'प्रकृतिविहारः' बहुविध रचनाओं का समाकलन ग्रन्थ है। इसमें 'तुला-अतुला' (पूर्व प्रकाशित) कृति का भी बहुलांश भाग सम्मिलित है। पूर्व में मुनि शुभकरणजी और मुनि श्रीचंदजी 'कमल' ने उन रचनाओं को लिखकर उनका संकलन किया था। फलतः उनका उपयोग 'तुला-अतुला' में हुआ। इस पुस्तक का अनुवाद और संपादन आगममनीषी मुनि दुलहराजजी ने किया है। अनेक स्फुट रचनाएं और श्लोक भी प्रस्तुत ग्रन्थ में जुड़े हैं। उनमें से कुछ रचनाओं का अनुवाद मैंने कर पूज्यवरश्री महाप्रज्ञ को दिखाया। उन्होंने उसमें यथोचित परिष्कार किया और कुछ श्लोकों को साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने अनूदित किया है।

अहोभावज्ञापन

मैं प्रस्तुत संदर्भ में उन मनीषियों की अहोभाव से स्मृति करना चाहती हूं, जिनके आत्मीय योग से यह ग्रंथ पाठकों को सुलभ हो सका है।

प्रस्तुत ग्रंथ की अंतरात्मा हैं परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ। पूज्य गुरुदेव ने इस ग्रंथ का स्वयं अवलोकन किया, संकलन-संयोजना का समग्र निर्देशन किया, संस्कृत श्लोकों के अनुवाद का निरीक्षण और संशोधन किया। इस ग्रंथ का प्रायः हर श्लोक उनके दृष्टि-स्पर्श और मनीषा-स्पर्श से कृतार्थ बना है।

अपने आराध्य के प्रति क्या आभार व्यक्त करूं और किन शब्दों में करूं? उनसे जो कुछ मुझे मिला, वह मेरे जीवन की बहुमूल्य थाती है। यही कामना है—उनकी साक्षात् उपस्थिति ने जीवन में जिस अक्षय-ऊर्जा का संचार किया है, अब भावस्मृति उसी ऊर्जा का संरक्षण और संवर्धन करती रहे।

परम श्रद्धेय आचार्य महाश्रमण ने प्रस्तुत ग्रंथ की प्रस्तुति लिखी है। यह उनके महान् अनुग्रह का जीवंत साक्ष्य है। उनका मार्गदर्शन और दिशादर्शन हमारे जीवन की अनमोल निधि है।

समादरणीया साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी का वात्सल्य और दिशाबोध भी मुझे सतत प्राप्त रहा है। उनकी करुणा और कृपाभाव मेरी सृजनधर्मिता को नए उन्मेष देता रहे।

प्रस्तुत कृति के संकलन-संपादन में साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी का अविस्मरणीय योग रहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। संकलन-संपादन की इस यात्रा में वे निरंतर सहभागी रहीं। अनुवाद आदि कार्यों में उनका अनन्य सहयोग मिला। शरीर की अस्वस्थता की स्थिति में उन्होंने अहर्निश जो श्रम किया है, वह उनकी गुरु-भक्ति और श्रुतनिष्ठा का निदर्शन है।

आचार्यवर लाडनूं चातुर्मास के बाद श्रीडूंगरगढ़ पधारे। मैंने गुरुदेव से निवेदन किया—'आचार्यवर! संस्कृतवाङ्मय का प्रथम भाग प्रायः तैयार है। यदि इसका एक बार संतों के द्वारा निरीक्षण हो जाए, अपेक्षित परिष्कार हो जाए तो अच्छा रहे।'

आचार्यवर ने कहा—'मुनि राजेन्द्रजी को यह पांडुलिपि दे दो।'

गुरुदेव के निर्देश से शासनश्री मुनि राजेन्द्रकुमारजी ने पूरी कृति का पुनः निरीक्षण किया, यथोचित परिवर्तन और संशोधन किया। मुनिश्री का संस्कृत भाषा पर अच्छा अधिकार है। उनकी सूक्ष्म मनीषा से इस कृति में निखार आया है। ग्रन्थ के दोनों परिशिष्ट भी उनके द्वारा कृत हैं।

साध्वी श्रुतयशाजी और समणी कुसुमप्रज्ञाजी ने प्रूफनिरीक्षण में सहयोग दिया, यह मेरे लिए आह्लाद का विषय है।

इस प्रकार अनेक व्यक्तियों को 'महाप्रज्ञसंस्कृतवाङ्मयम्' के विशाल कार्य से जुड़ने का सौभाग्य मिला है। मैं सबके प्रति अपनी मंगलभावना व्यक्त करती हूं। इस साहित्य-त्रिपथगा में अभिस्नात होकर हमने जो पाया है, वह अकथनीय है।

जैनविश्वभारती प्रस्तुत ग्रंथ 'प्रकृतिविहारः' का प्रकाशन कर परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ के संस्कृतवाङ्मय को विद्वद् पाठकों तक पहुंचाने का जो उपक्रम कर रही है, उसका मूल्य स्पष्ट है।

प्रस्तुत ग्रन्थ संस्कृत-साहित्य की गरिमा को वृद्धिंगत करने वाला और प्रबुद्धजनों की प्रबुद्धता को प्रबोधित करने वाला सिद्ध हो, यही मेरी मंगल अभीप्सा है।

मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभा

गोठी भवन, सरदारशहर

१६ जुलाई, २०१०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयानुक्रमः

प्रथमः उच्छ्वासः
प्रकृतिप्रेक्षा

१. पद्मषोडशकम् १
२. अब्जम् ४
३. कीदृशी चेष्टा! ४
४. मेघाष्टकम्–१ ५
५. मेघाष्टकम्–२ ८
६. कादम्बिनी ११
७. प्रेमाकर्षणम् ११
८. समुद्राष्टकम्–१ १२
९. समुद्राष्टकम्–२ १४
१०. असंग्रहः १७
११. विवेकः १७
१२. प्रकृतिः १८
१३. माधुर्यम् १८
१४. स्थितेर्मूल्यम् १९
१५. गृहमणिः १९
१६. नभोमणिः २०
१७. तटस्था सन्धिवेला २१
१८. शून्यम् २२
१९. निद्रा २२
२०. स्नेहः २३
२१. जलस्य प्रकाशः २३
२२. छिद्रम् २४
२३. अपराजितः २४
२४. सरसता २४
२५. लक्ष्मीः २५
२६. महतां कष्टम् २५

द्वितीयः उच्छ्वासः
संवित्तिः

१. लाघवम् २७
२. जडता : अन्धकारः २७
३. कियान् प्रभेदः? २८
४. पौष–निशा २८
५. अन्धकारः २८
६. यथार्थम् २९
७. वाचालता ३०
८. सज्जनो दुर्जनश्च ३०
९. अभिमानः ३१
१०. तिरस्कारः ३२
११. असहनीयो हस्तक्षेपः ३२
१२. अनतिक्रमः क्रमः ३३
१३. कविदार्शनिकसङ्गमः ३३
१४. दुर्लभो विवेकः ३४
१५. विरलता ३४
१६. स्वतन्त्रताया विवेकः ३५
१७. स्वतन्त्रभारतभारती ३६
१८. नैतिकताया मूल्यानि ३७
१९. नीतिमान् पुरुषः ३८
२०. लोकतन्त्रस्य चिरजीवितायाः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूत्राणि ३९
२१. कः कर्तुं नेतृत्वम्? ४०
२२. श्रद्धेयः पुरुषः ४०
२३. मनोबलपञ्चविंशिका ४१

तृतीयः उच्छ्वासः

अध्यात्मम्

१. अनुभवसप्तकम् ५१
२. अध्यात्मम् ५३
३. ध्यानम् ५४
४. चंचलता : स्थिरता ५५
५. सुखदुःखम् ५५
६. कायसिद्धिः ५५
७. समस्या समाधानञ्च ५६
० शारीरिकसमस्या ५६
० मानसिकसमस्या ५६
० वैचारिकसमस्या ५६
० पारिवारिकसमस्या ५७
० आर्थिकसमस्या ५७
८. वर्तमानस्य शोधनम् ५७
९. धर्मस्य साफल्यम् ५७
१०. कलहस्य कारणं निवारणञ्च ५८
११. विनाशहेतवः ५८
१२. सुखिजीवनम् ५९
१३. दीक्षा ५९
१४. विश्वासः ६०
१५. आत्मान्वेषणम् ६०
१६. आत्मतुला ६१
१७. कोऽयं सत्सङ्गः ६२
१८. प्रवृत्तिः निवृत्तिश्च ६४
१९. सत्सङ्गाष्टकम् ६४
२०. संवादः ६६

चतुर्थः उच्छ्वासः

प्रज्ञालोकः

१. मंगलम् ७१
२. धर्मस्य लक्षणम् ७१
३. कथं शृणुयात् ? ७१
४. अनुशासनम् : एको विमर्शः ७२
५. गुरुशिष्ययोः सम्बन्धः ७२
६. तितिक्षायाः निकषोपलानि ७२
७. दुर्लभः संयोगः ७३
८. स्वतन्त्रतायाः सीमा ७३
९. धर्मस्य आदिबिन्दुः ७३
१०. किं ज्ञानम्? ७४
११. सत्यस्यानुभूतिः-१ ७४
१२. सत्यस्यानुभूतिः-२ ७४
१३. योगक्षेमप्रस्थाने का बाधा ? ७५
१४. कपिलस्य सम्बोधिः ७५
१५. रूपान्तरणं कथं सम्भवेत्? ७६
१६. एकोऽनेकः ७६
१७. शाश्वताऽशाश्वतयोर्विवेकः ७६
१८. अपराधस्तन्निवारणञ्च ७७
१९. आत्मना युध्यस्व ७७
२०. कथमाकर्षणम्? ७७
२१. इच्छा : व्यक्ता अव्यक्ता च ७८
२२. प्रमत्तोऽप्रमत्तश्च ७८
२३. अतीतं वर्तमानञ्च ७८
२४. परोक्षज्ञानं समाधिश्च ७९
२५. भावक्रिया द्रव्यक्रिया च ७९
२६. किमर्थं प्रतिक्रिया ? ८०
२७. मिताहारो मौनञ्च ८०
२८. सर्वाङ्गीणशिक्षाप्रणाली ८०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२९. पूजनीयो बहुश्रुत: ८१
३०. जातीयघृणा ८१
३१. कर्मणा जाति: ८२
३२. यज्ञादे: आध्यात्मिकीकरणम् ८२
३३. जन्मास्ति कर्माधीनम् ८२
३४. सत्यमुत भावविप्लव: ८२
३५. इच्छाभेद: कथम्? ८३
३६. अध्यात्मस्यावतरणम् ८३
३७. मान्यता धारणा च ८३
३८. तुलनात्मकाध्ययनस्य रहस्यम् ८४
३९. महदाश्चर्यम् ८४
४०. मौलिकमनोवृत्ति: ८४
४१. क्वास्मि? ८४
४२. ब्रह्मचर्यस्य सिद्धि: ८५
४३. प्रेक्षा : अपरा परा च ८५
४४. गुरुताया: सूत्रम् ८५
४५. कोऽभय: ? ८५
४६. क: कलाविज्ञ:? ८६
४७. धारणाया: पुष्टि: ८६
४८. देहस्थ: आत्मस्थश्च ८६
४९. आत्मना आत्मदर्शनम् ८६
५०. कायोत्सर्ग: ८७
५१. क्वास्ति भेदरेखा? ८७
५२. को धीर:? ८८
५३. संघर्षस्य बीजानि ८८
५४. उपादानं निमित्तं च ८८
५५. संघबद्धसाधनार्ह: ८८
५६. धर्मस्य सत्यम् ८९
५७. अनुभवो जागृयात् कथम्? ८९
५८. को मनस: संचालक:? ८९
५९. योगी भोगी च ८९
६०. क: समर्थ: ? ९०
६१. सहिष्णुताया अनुप्रेक्षा ९०
६२. इदमपि चिन्तनीयम् ९०
६३. चारित्रस्य स्रोत: ९०
६४. रसनाया: संयम: ९१
६५. आचारशास्त्रम् ९१
६६. को नियामक:? ९२
६७. हिंसा : प्रमादो वधो वा? ९२
६८. इच्छाया: रूपद्वयम् ९२
६९. भोगस्य आसक्तिर्मात्रा च ९२
७०. कर्मणा को बध्यते? ९३
७१. को लभते सुखदु:खम् ? ९३
७२. दु:खस्य चक्रम् ९३
७३. अस्तित्वस्य सनातनत्वं कदा ? ९४
७४. परं सुखम् ९४
७५. समाधेर्मूल्यम् ९४
७६. अन्तर्बहिश्च क: ? ९४
७७. संविभागस्य सिद्धि: ९५
७८. श्रेय: प्रेयश्च ९५
७९. अन्तरात्मा बहिरात्मा च ९५
८०. रागो विरागश्च ९६
८१. श्रुतं समाधिश्च ९६
८२. ज्ञानं क्रिया च ९६
८३. क: सत्याग्रही कश्चात्मजीवी ? ९७
८४. द्विधा मूर्खता ९७
८५. अहिंसाया: शस्त्रम् ९७
८६. किं सारम् ? ९८
८७. मौनं कदा? ९८
८८. विभिन्नमतयो लोका: ९८
८९. भावो भाषा च ९९
९०. तदा जागर्त्ति नर: ९९
९१. किं दुर्लभ: सुलभश्च ? ९९
९२. श्रुतपरम्परा ९९
९३. श्रुतेन किम् ? १००
९४. का वचनसम्पदा ? १००
९५. द्विविधं सत्यम् १००
९६. सुखस्य भेदा: १००
९७. क्व सुखम् ? १०१
९८. आत्मकर्तृत्ववाद: १०१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९९. ज्ञानाचरणयोः कस्य प्राधान्यम्? १०१
१००. अनेकान्तवादः १०२
१०१. भाषाविवेकः १०२
१०२. सर्वं वक्तुं न शक्यम् १०२
१०३. पुरुषार्थचतुष्टयी १०३
१०४. धर्मस्य द्वे रूपे १०३
१०५. किमर्थमुपासना? १०४
१०६. नमस्कारमंत्रं परममंगलम् १०४
१०७. तन्त्रम् : मन्त्रम् १०४
१०८. तुलसी तुलसीसमः १०४
१०९. अध्यात्मचतुष्पदी १०५
११०. सुखदुःखयोर्मूलम् १०५
१११. अध्यात्मसूत्रम् १०५
११२. स्वभावपरिवर्तनस्य सूत्राणि १०६
११३. मानसिकसंतुलनस्य घटकाः १०६
११४. हृदयपरिवर्तनम् १०६
११५. कीदृशो दिग्गजः? १०७

पञ्चमः उच्छ्वासः

आशुकवित्वम्

१. आशुकवित्वम् : समस्यापूर्त्तिरूपम्

१. गीतं न गायतितरां युवतिर्निशासु १०९
२. किं तया किं तया किं तया किं तया? ११०
३. वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुषु ११०
४. मणे! भावी तूर्णं पुनरपि तवातुच्छमहिमा १११
५. दुर्जया बत! बलावलिप्तता १११
६. कथं धीरं धीरं ध्वनति नवनीलो जलधरः? ११२
७. कथं कान्ते दान्ते गलितवदनाभा नववधूः? ११३
८. मोदन्ते मुनयो मनोबलजुषः कष्टेष्वनेकेष्वपि ११४
९. गिरेर्दाहो दृश्यो न च पदतलस्येति विदितम् ११६
१०. ब्राह्मणस्य महत्पापं संध्यावन्दनकर्मभिः ११८
११. सिन्दूरबिन्दुर्विधवाललाटे ११८
१२. कियच्चित्रं वाग्मी भवति बत! मूकोऽपि मनुजः १२०
१३. मेघे वर्षति वेगवाहिनि कथं दौर्भिक्ष्यसंभावना? १२१
१४. मूकोऽपि कोऽपि मनुजः किमु वाक्पटुः स्यात्? १२२
१५. विषममसिधाराव्रतमिदम् १२३
१६. सीदन्ति सन्तो विलसन्त्यसन्तः १२४
१७. साम्यं काम्यं प्रकृतिरुचिरं क्वापि वक्रं विभाव्यम् १२५
१८. कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा १२६
१९. जनः सामान्योऽयं कथमिव विजानीत सहसा १२७
२०. न खलु न खुल वाच्यं सन्ति सन्तः कियन्तः १२७
२१. चित्रं दिवापि रजनी रजनी दिवा च १२८
२२. भवेद् वर्षारम्भः प्रकृतिपुलको मोदजनकः १२९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२३. न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति १३०
२४. किमेतन्नीलाभं गगनपटलं शून्यमखिलम्? १३०
२५. भाव्यं सत्पुरुषार्थिभिर्नहि भिये ज्योतिर्विदोऽष्टग्रही १३१
२६. कथं स्यात् संसारे विगलितमदः शीतसमरः ? १३२
२७. न जाने किं द्रष्टुं स्फुरितनयनस्तारकगणः? १३२
२८. को हि तुलामधिरोहति? १३३
२९. क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे १३३
३०. कियान् कान्तः काम्यः कलिमलहरः कालुसमयः १३४
३१. प्रणंणम्ये कालूं कलिमलकलापाग्निसलिलम् १३४
३२. सहस्रांशुः प्रांशुः किमिति विमना उत्सवदिने? १३५
३३. न जाने किं द्रष्टुं स्फुरितनयनोऽयं दिनकरः १३६

२. आशुकवित्वम् : प्रदत्तसमस्यानुबद्धम्

१. मशकगलकरन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम् १३६
२. सूच्यग्रे कूपशतकं तदुपरि नगरी तत्र गंगाप्रवाहः १३६
३. दिशि प्रतीच्यां समुदेति भानुः १३७
४. मशकदशनमध्ये हस्तिनः सञ्चरन्ति १३७
५. कालीकज्जलशोणिमा धवलयत्यर्धं नभोमण्डलम् १३८
६. सभामध्ये न कोकिला १३८
७. कर्दन्त्यमी मानवाः १३८
८. सरस्यामालस्यादिव पतति पाटीरपवनः १३९
९. न रजनी न दिवा न दिवाकरः १३९
१०. महाजनो येन गतः स पन्थाः १३९
११. अस्ति स्तः सन्ति कल्पनाः १४०
१२. चन्द्रोदये रोदिति चक्रवाकी १४०
१३. कथं भवेद् नो जठराग्निशान्तिः? १४०

३. आशुकवित्वम् : प्रदत्तविषयानुबद्धम्

१. आवर्तः १४१
२. विद्वत्सभा १४२
३. संस्कृतभाषाया विरोधः १४३
४. घटीयन्त्रम् १४४
५. मृतभाषा १४६
६. मोक्षस्वरूपम् १४६
७. अद्यतनीयमायोजनम् १४७
८. क्रीडाप्राङ्गणम् १४८
९. भारतीयसंस्कृतिः १४९
१०. हिंसा : अहिंसा १४९
११. कथमणुत्वं स्यात्? १५०
१२. राष्ट्रसङ्घः १५१
१३. मणिशेखरचोरः १५१
१४. नयवादः १५३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१५. (क) अपरा-परा विद्या १५५
१६. (ख) भूकम्पः १५६
१७. सामञ्जस्यम् १५७
१८. अहिंसायाम् अपवादः १५८
१९. अतुल-तुलना १५९
२०. त्रिनेत्रः १६०
२१. कलशः १६१
२२. वाक्-संयमः १६१
२३. आत्मोत्थानं कथं भूयात्? १६२
२४. विशुद्धेर्सौरभम् १६३
२५. किं भारतं संस्कृतभारतीं विना? १६३

४. आशुकवित्वम् : प्रसंगानुबद्धम्

१. एकता १६४
२. ताजमहलः १६४
३. त्रिचक्षुः १६५
४. गंगानहरः १६५
५. त्रिवेणीसङ्गमः १६७
६. मिलनम् १६८
७. सम्मेदशिखरम् १६८
८. दीपमाला १६९
९. अन्तर्दर्शनम् १७०
१०. मैत्रीभावना १७१
११. अभयस्थानं समुद्रः १७१
१२. वृक्षलयनम् १७२
१३. कलाक्षेत्रम् १७२
१४. चिदम्बरम् १७३
१५. समागमनम् १७४
१६. समाधिः १७५
१७. मैसूर-राजप्रासादः १७५
१८. बाहुवली १७६
१९. किं माधुर्यम् ? १७७
२०. संयमः १७८
२१. सन्निधेः प्रभावः १७८
२२. शतजीवी चिरं भूयात् १७९
२३. विश्वविद्यालयः १७९
२४. सूर्यास्तम् १८०
२५. किं तया दीक्षया? १८१
२६. किमर्थं ध्यानम्? १८२
२७. स किं करिष्यति? १८२
२८. श्रमनिष्ठा १८३
२९. कः श्रेष्ठः? १८३
३०. कः श्रेष्ठो लेखकः? १८३
३१. तपोनिष्ठा गरीयसी १८४
३२. सा धन्या १८४
३३. मनःप्रसत्तिः १८५
३४. तुलसीप्रसादः १८५
३५. अर्थसम्पदा १८६

षष्ठः उच्छ्वासः

यात्रावृत्तम्

१. जयपुरयात्रा १८७
२. रणथम्भोरयात्रा १९४

सप्तमः उच्छ्वासः

कथालोकः

१. ममत्वम् २०३
२. विश्वासात्मा २१२
३. वैरम् २१३
४. कायोत्सर्गः २१४
५. अद्वैतम् २१४
६. स्वार्थः २१५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७. दोषदर्शनम्	२१६	१७. अविधिज्ञता	२२२
८. पूर्वमान्यता	२१६	१८. क्रोधं मा कुरु	२२३
९. न्यूनता	२१७	१९. महत्त्वाकांक्षा	२२४
१०. यमराजः	२१७	२०. अनर्थस्य मूलम्	२२५
११. सन्तोषः	२१८	२१. दुरुपयोगः	२२७
१२. सर्वजित्	२१९	२२. अज्ञानम्	२२७
१३. तुलना	२१९	२३. मनोभावः	२२८
१४. स्वभावः	२२०	२४. चातुर्यम्	२२९
१५. अनुभवः	२२१	२५. आग्रहः	२३०
१६. महद् ध्येयम्	२२१	२६. भयं कुतः?	२३०

अष्टमः उच्छ्वासः

पाइयभारई

१. तुलसीमंजरी पसत्थिसिलोगा	२३३	३. अप्पनिवेदणं	२३७
२. राजगिहसंकप्पो	२३६		

परिशिष्टद्वयम्

१. ग्रन्थगताः सूक्तयः	२४७	२. ग्रन्थश्लोकेषु प्रयुक्तछन्दांसि	२५७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथमः उच्छ्वासः

प्रकृतिप्रेक्षा

१. पद्मषोडशकम्

(प्रातःकाल का समय। इधर सूर्य ने आकाश में यात्रा शुरू की और मैंने अपने चरणों से धरती को मापने का प्रयास किया। मैं परिव्रजन करता करता एक सरोवर के निकट पहुंचा। मैंने देखा–उसमें कमल खिले हुए हैं। वे विहंस रहे हैं। उनकी प्रसन्नता को देखकर मैं उनके पास गया और उनसे वार्तालाप शुरू किया। मैंने पूछा–)

१. [1]यैः परमाणुभिरुत्पन्नस्त्वं, मृदुलसरोरुह[2]! तेऽन्यत्रापि।
प्राप्यन्ते वा नहि प्राप्यन्त, इत्यवगन्तुं मे प्रबलेच्छा॥

कमल! तुम अत्यन्त मृदु हो। जिन परमाणुओं से तुम उत्पन्न हुए हो, वे अन्यत्र प्राप्त हैं या नहीं, यह जानने के लिए मैं अत्यन्त उत्सुक हूं।

२. किन्त्वनुमाम्यणवस्तव कायसदृशा नो नीयन्तेऽन्यत्र।
किञ्च गुणास्त्वयि सर्वविशिष्टा उपलभ्यन्तेऽनुपमा अन्यैः॥

कमल! किन्तु मेरा यह अनुमान है कि तुम्हारे शरीर के सदृश परमाणु अन्यत्र प्राप्त नहीं हैं, क्योंकि तुम्हारे गुण तुम्हें विशिष्ट बना रहे हैं। तुम्हारी विशेषताओं की तुलना के लिए कोई उपमा उपलब्ध नहीं है, इसलिए तुम अनुपम हो।

३. पङ्केऽप्युत्पत्तिं संप्राप्य, कालुष्यं नाद्रियसे यत्त्वम्।
तत्तव वैचित्र्यं कियदास्ते, सौवे[3]ऽप्यवगुणभाजि न पक्षः॥

कमल! तुम विशिष्ट और अनुपम इसलिए हो कि तुम कीचड़ में उत्पन्न होकर भी उसकी कलुषता से स्पृष्ट नहीं होते, यह तुम्हारी कितनी बड़ी विचित्रता है! पंक तुम्हारा अपना है, फिर भी वह कलुषित है, इसलिए उसके प्रति तुम्हारा पक्षपात नहीं।

१. पादाकुलकम्।
२. सरोरुहम्–कमल।
३. सौवम् (स्वस्य इदम्)–अपना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. जडे[1] नितान्तं सृजसि निवासं, तथापि जाड्यं नाङ्गीकुरुषे।
मृदुलत्वं च जहासि न तद्वत्, तव वैशिष्ट्यं कियदेतत् स्यात्॥

कमल! तुम निरंतर जड़ (जल) में निवास करते हो, परन्तु उसकी जड़ता को स्वीकार नहीं करते, सदा जल से ऊपर रहते हो। उसी प्रकार तुम अपनी कोमलता को भी नहीं छोड़ते, यह तुम्हारी कितनी महान् विशेषता है!

५. त्वां विवशीकर्तुं यदि जाड्यं, तीव्रं रूपं स्वस्य करोति।
तदपि ततो दूरं स्थातुं त्वं, प्राणानप्यर्पयसि विचित्रम्॥

कमल! यदि जड़ता तुमको जड़ बनाने के लिए तीव्र रूप धारण कर बाध्य करती है, तब भी तुम उससे दूर रहने के लिए अपने प्राणों का भी अर्पण कर देते हो, मृदुता को नहीं छोड़ते। यह विचित्र है!

६. अस्तं गच्छति मित्रे सूर्ये, संकोचं तनुषे निजतनुषः[2]।
यावन्नोदयमेति पुनः स, तावत् कलयसि नात्मविकासम्॥

कमल! सूर्य तुम्हारा मित्र है। जब वह अस्त हो जाता है, तब तुम अपने शरीर को संकुचित कर लेते हो। जब तक वह पुनः उदित नहीं होता, तब तक तुम अपने आपको विकसित नहीं करते।

७. माधुर्यं त्वयि कियदस्तीति, कुर्यादऽनुमानं को विद्वान्।
तव धूल्यामपि लुठति नितान्तं, कविवल्लभरोलम्बकदम्बः[3]॥

कमल! तुम्हारे में कितनी मधुरता है, इसका अनुमान कौन विद्वान् कर सकता है। देखो, कविजनों का प्रिय भ्रमरसमूह तुम्हारे पराग में निरन्तर लुठता रहता है।

८. यश्चरणस्त्रिदशेशकिरीटमञ्जुलमणिसंघर्षणरक्तः।
तस्याप्युपमानार्थं भुवने, त्वमेव योग्यं प्राप्तं कविभिः॥

कमल! जो चरण इन्द्र के मुकुट की मंजुल मणियों के संघट्टन से लाल हो जाते हैं, उन चरणों को भी उपमित करने के लिए लोक में कवियों ने तुम्हें ही योग्य समझा है।

९. दानं यो वितरत्यर्थिभ्यः[4], सम्मानं च कृपाप्रार्थिभ्यः[5]।
तस्मै हस्ताय त्वामेव, विदधत्युपमापदमभिरूपाः[6]॥

---

१. जडम्–जल।
२. तनुः (तनुस्)–शरीर।
३. रोलम्बकदम्बः–भ्रमरसमूह।
४. अर्थी–याचक।
५. प्रार्थी–आकांक्षी।
६. अभिरूपः–विद्वान्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कमल! जो हाथ याचक लोगों को दान देता है और कृपाकांक्षी लोगों को सम्मान प्रदान करता है, उस हाथ को विद्वान् लोग तुम्हारी ही उपमापद से उपमित करते हैं।

१०. चित्रं चित्रं मुखनयनादेः, शरीरसारस्यावयवस्य।
उपमानं यत्त्वमेव जातं, किं सुकृतं कृतमिति जिज्ञासुः॥

कमल! अत्यधिक आश्चर्य है कि मुख, नयन आदि शरीर के सारे सारभूत अवयवों के लिए तुम ही उपमान बने हुए हो। मैं यह जानना चाहता हूं कि तुमने ऐसा कौन-सा सुकृत किया है?

११. शरणं यातेभ्यः[१] संकोचे, जातेऽपि स्थानं दातव्यम्।
इति शिक्षयितुं त्वं सन्मनुजान्, धरसि निशायामलिं स्वकोशे॥

कमल! स्थान का संकोच होने पर भी शरणागत को स्थान अवश्य देना चाहिए, सज्जनों को यह शिक्षा देने के लिए तुम रात में अपने कोश में भौंरे को स्थान देते हो।

१२. नैयायिकविदुरा[२]स्त्वयि रक्ताः, सन्ति नितान्तं यदभावेऽपि।
तव जन्मेच्छव इति निगदन्ति, गगनेऽम्बुज[३] कुसुमं किं न स्यात्॥

कमल! तार्किक विद्वान् लोग तुम्हारे प्रति बहुत अधिक अनुरक्त हैं। वे अभाव में भी तुम्हारी उत्पत्ति देखना चाहते हैं। उनका तर्क है-यदि अभाव में कुछ हो तो आकाश में कमल का फूल क्यों नहीं खिलेगा?

१३. यत्र क्वापि जलाशयमात्रे, वर्णनीयमम्बुजमित्यर्थम्।
असन्निबन्धः कृत इति किं रे!, काव्यशिक्षकाणां त्वयि मोहः॥

कमल! जहां कहीं भी जलाशयमात्र में कमल का वर्णन कर देना चाहिए-यह असद् निबंध कवि-समय (कवि की आचारसंहिता) है। काव्यशास्त्रियों का तेरे प्रति यह क्यों मोह है?

१४. लक्ष्मीं किञ्चिदपि प्राप्यैवं, शुष्कदारुवद् दारुणभावाः।
ये नमन्ति न हि मनुजास्तांस्तव, हसन्ति पुष्पाणि स्मितमिषतः॥

कमल! थोड़ी-सी लक्ष्मी पाकर भी जो मनुष्य सूखे ठूंठ की तरह कठोर बने रहते हैं और कभी नहीं झुकते, उन पर मुसकान के बहाने तुम्हारे फूल हंसते हैं।

---

१. यातः -गया हुआ।
२. नैयायिकविदुरः-तार्किक विद्वान् लोग।
३. अम्बुजम्-कमल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१५. शिक्षयन्ति भो! भो! द्रष्टव्यमस्माकं च पितुर्वैशिष्ट्यम्।
स्वयं रमा[१]ऽस्मिन् वसति तथापि, मृदुलत्वं न जहाति कदापि॥

कमल! ये फूल हमें सिखा रहे हैं कि हमारे पिता की विशेषता देखो, इसमें लक्ष्मी स्वयं निवास करती है, फिर भी यह मृदुता को कभी नहीं छोड़ता।

१६. पद्मेदानीं त्वयोपमायै, श्रीमत्तुलसीचरणं रुचिरम्।
त्वां पावनमपि मुनिनथमल्लः, धन्यंमन्यं पुनस्तनोति॥

कमल! आचार्य तुलसी के मनोहर चरणों के लिए तुम उपमान बनते हो। तुम पावन–निर्मल हो, फिर भी मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ) तुम्हें इस उपमा के कारण धान्यमानी बना रहा है।

(वि. सं. १९९९, ज्येष्ठमास (जून, १९४३), राजगढ़)

२. अब्जम्

(अहंकार का आवेश चिन्तन की वीथी को बदल देता है, दृष्टि भ्रान्त हो जाती है। उस समय आवश्यकता है किसी सचेतक की।)

१. [२]अब्ज! भृङ्गावलिं वीक्ष्यावलिप्तं प्रेम वारिणा।
मात्याक्षीस्तद् विना तूर्णं, ह्येषाऽन्यत्र गमिष्यति॥

हे कमल! मंडराती हुई भौरों की पंक्ति को देखकर तू अभिमानी होकर जल से प्रेम मत तोड़। उसके बिना (प्रेम के बिना) यह भ्रमरपंक्ति शीघ्र ही दूसरे स्थान पर चली जाएगी।

३. कीदृशी चेष्टा!

(प्रातःकाल का समय। सूर्य की रश्मियां धरती को छू रही थीं। कमल की पंखुड़ियां विकस्वर हो रही थीं। भौंरे कमल का पराग लेने मंडरा रहे थे। एक दुर्जन व्यक्ति आया। उसे सूर्य, कमल और भौंरे का मिलन अच्छा नहीं लगा। उसने अपने तर्क के बाण चलाए और इन तीनों के मनोभंग का प्रयत्न किया।)

१. [३]कोपारुणमिव रक्तं, भूत्वा त्वामीक्षतेऽह! यत्पद्मम्।
तदपि हि तेन प्रीतिं, कुरुषे भानो!ऽत्र वैचित्र्यम्॥

---

१. रमा–लक्ष्मी।
२. अनुष्टुप्।
३. आर्या।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे सूर्य! आश्चर्य है! जो कमल मानो क्रोध की भांति लाल होकर तुमको देख रहा है, फिर भी तुम उससे प्रेम करते हो, यह विचित्रता है।

२. अम्बुज! किं पश्यसि नो, दुराचरितं त्वममुष्य गगनमणेः[१]।
त्वया सृजन्नपि मैत्रीं, त्वदुत्पत्तिहेतुं शोषयति॥

कमल! क्या तुम इस सूर्य के दुराचरण को नहीं देखते? एक ओर वह तुम्हारे साथ मैत्री करता है और दूसरी ओर तुम्हारी उत्पत्ति के मूल कारण–कीचड़ को सुखाता है।

३. मा विश्वसिहि मधुकृत्![२] मदर्थमिन्दीवरं[३] प्रफुल्लमिति।
एतत्सवितुर्दर्शनलालसमेव स्फुटीभवति॥

भ्रमर! तुम यह विश्वास मत करो कि यह नील कमल मेरे लिए खिला है, यह तो सूर्य के दर्शन करने की लालसा से ही खिला है, तुम्हारे लिए नहीं।

४. कस्यचिदेवं वचनश्रवणात् तरणि[४]र्जगाम सहसाऽस्तम्।
संकुचितं नलिनेन[५], गतमन्यत्र द्विरेफेण[६]॥

किसी दुर्जन व्यक्ति के इस प्रकार के वचन सुनकर सूर्य सहसा अस्त हो गया, कमल सिकुड़ गया और भ्रमर अन्यत्र चला गया।

५. विरहं सोढुमनीश, इव रविरुदितः प्रकाशते कमलम्।
भृङ्गो गुञ्जारवति, निष्फलस्तन्मनोरथतरुः॥

मानो विरह को सहने में असमर्थ सूर्य पुनः उदित हुआ, कमल खिल उठा और भौंरा गुंजारव करने लगा। यह देखकर उस दुर्जन व्यक्ति का मनोरथ रूपी वृक्ष निष्फल हो गया।

(वि. सं. १९९८ (सन् १९४२), चांपासनी)

४. मेघाष्टकम्–१

(आचार्यश्री तुलसी मुंबई में वर्षावास–चतुर्मास कर रहे थे। एक ओर विशाल समुद्र, दूसरी ओर निरंतर वर्षा। हमने समुद्र को भी देखा और बादलों को भी। मन एक प्रश्न से तरंगित हो गया–इन बादलों में जल कहां से आ रहा है? इस प्रश्न का उत्तर पाने

१. गगनमणिः-सूर्य।
२. मधुकृत्—भौंरा।
३. इन्दीवरम्—नील कमल।
४. तरणिः—सूर्य।
५. नलिनम्—कमल।
६. द्विरेफः—भ्रमर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिए कवि-मानस का क्रीडांगण तैयार किया गया और अनेक कोणों से बादलों के क्रीडाक्रम का अवलोकन किया गया। प्रस्तुत है क्रीड़ा की ऊर्मियों का वर्णन-)

१. [1]लीलालोलाः पयोदाश्चपलगतिकला व्योम्नि नीले नटन्तो,
विद्युल्लेखाविहीना हृतजलधिजलाः प्रायशो गर्जिशून्याः।
आरूढा गन्धवाहं[2] वृत[3]भगण[4] रुचो ज्योतिषां दस्यवो हि,
स्तैन्ये दाने च तुल्यो विधिरिति तिमिरं मौनिता[5] गोप्यता च॥

नील गगन में मेघ नाच रहे हैं। वे क्रीड़ा से चंचल बने हुए और चपल गति करने की कला से युक्त हैं। उन्होंने समुद्र के जल को चुराया है, इसलिए वे बिजली की लहर से विहीन और सर्वथा गर्जना से शून्य बने हुए पवन पर आरूढ हैं। वे नक्षत्रगण की आभा को आवृत करने वाले और ज्योति के शत्रु हैं, क्योंकि चोरी और दान की विधि एक जैसी होती है। वह है-अंधकार, मौनव्रतधारिता और गोपनीयता।

२. संतप्ता भूविभागा हुतवहसदृशा यत्र धूलीप्रदेशे,
बिन्दून् बिन्दून् प्रतीक्षां विदधति सतृषं दह्यमाना झलाभिः[6]।
तत्राम्भोदावलोको न भवति सुलभो यत्र सिन्धोर्लहर्य-
स्तत्रैते भूरि दृश्या ऋतमिति सकलाः पूर्णमापूरयन्ति॥

जिस मरुधर प्रदेश में सूर्य के आतप से भूमिविभाग अग्नि की तरह तप उठता है और वहां के प्यासे लोग चिलचिलाती धूप से झुलसते हुए बूंद-बूंद के लिए प्रतीक्षा करते हैं, वहां मेघ का दर्शन भी सुलभ नहीं होता। किन्तु जहां समुद्र की लहरें उछलती रहती हैं, वहां बादलों का समूह आकाश में मंडराता रहता है। (वर्षा भी अत्यधिक होती है।) यह सत्य है कि सभी लोग भरे हुए को ही भरते हैं।

३. दृष्टं स्पष्टं मरौ ते प्रतनुकपयसाऽऽटोप[7]मारोपयन्तो,
वर्षन्ति स्वल्पमम्बु स्तनितविलसितैर्भापयन्तः[8] किशोरान्।
रौद्रं रूपं सृजन्तः कथमपि कुटिलं मोहमय्यां[9] न दृष्टाः,
सारे नाडम्बरो यद् बहिरुपकरणं रच्यते स्वल्पसारैः॥

मैंने मरुभूमि में यह स्पष्ट देखा है कि थोड़े पानी वाले बादल बहुत आडम्बर करते हुए आकाश में उमड़ते हैं, गर्जन करते हुए बालकों को डराते हैं, किन्तु बहुत कम

१. स्रग्धरा।
२. गन्धवाहः-हवा।
३. वृतः-आवृत।
४. भगणः-नक्षत्रगण।
५. मौनिता (मौनिनो भावः)-मौनव्रतधारिता।
६. झला-चिलचिलाती धूप।
७. आटोपः-आडम्बर।
८. भापयन्-डराता हुआ।
९. मोहमयी-मुम्बई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पानी बरसाते हैं। यहां मुम्बई में मैंने उन्हें किसी प्रकार का कुटिल रौद्र रूप धारण करते हुए नहीं देखा। इससे यह तथ्य स्पष्ट होता है कि जो सारयुक्त होता है, उसमें कोई आडम्बर नहीं होता और जो स्वल्प सार वाला होता है, वही बाहरी उपकरणों की रचना करता है, आडम्बर दिखाता है।

४. सिन्धोरादाय नीरं विदधति मधुरं क्षारभावं व्युदास्य[१],
सिञ्चन्तीलामशेषां सुबहुलसलिला आपगाः[२] संसृजन्ति।
अज्ञानारम्भ एष प्रकृतिविरचितस्तेन केचिद् रुदन्ति,
वर्षाभावे तदन्ये जलबहुलतया पापमज्ञानमुच्चैः॥

बादल समुद्र से पानी लेकर, उसके खारेपन को मिटाकर मीठा बना देते हैं। वे सारी पृथ्वी को पानी से सींचते हैं और अति प्रचुर पानी वाली नदियों की रचना करते हैं। यह प्रकृति-विरचित अज्ञान का ही फल है। इससे कई लोग वर्षा के अभाव में तो कई वर्षा की अति से रोते हैं। यह सत्य है—अज्ञान बहुत बड़ा पाप है।

५. [३]ग्रीष्मो नीतो निधनमभितो येन तद्राज्यलक्ष्मी-
र्ध्वस्ता चक्रे रसमवनिगं शोषयित्वा प्रकामम्।
हा! किं जातं सहजसुलभं पापिनोऽन्तेन पाप-
मन्तं नेतुं स्फुरति धिषणा शाश्वतो मार्क्सवादः॥

बादलों ने उस ग्रीष्म ऋतु को सब ओर से नष्ट कर डाला, जिसने पृथ्वी के रस का प्रचुर शोषण कर वर्षा की राज्यलक्ष्मी को ध्वस्त किया था। हा! यह क्या सहज सुलभ हो गया कि मनुष्य की बुद्धि पाप का अन्त करने के लिए पापी का अन्त करने की दिशा में स्फूर्त होती है। क्या मार्क्सवाद शाश्वत नहीं है?

६. [४]क्षणेऽध्वानः शुष्काः स्फुटमपि नभो धूपललितं,
क्षणे मेघाच्छन्नं तदह! खलु ते नीरभरिताः।
अये मेघा! नैतद् विदितमपि सर्वोर्ध्वमटतां[५],
न विश्वासश्चाप्यो[६] भवति महतां चञ्चलधियाम्॥

मुम्बई में हमने देखा कि क्षणभर के लिए सारे मार्ग सूखे हुए हैं। आकाश स्वच्छ और धूप से ललित है। क्षणभर के बाद देखा कि सारा आकाश मेघ से आच्छन्न है और

१. वि+उद्+आ+पूर्वक अस् धातु से क्त्वा स्थाने यप् होने पर व्युदास्य—दूर कर या मिटाकर।
२. आपगा—नदी।
३. शालिनी।
४. शिखरिणी।
५. अटन्—घूमते हुए।
६. आप्यः (आप्तुं योग्यः)—प्राप्त करने योग्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आश्चर्य है कि वे मेघ जल से भरे-पूरे हैं। हे मेघ! तुम सबसे ऊंचे घूमते-फिरते हो, फिर भी तुम्हें यह ज्ञात नहीं है कि चंचलवृत्ति वाले महान् होते हुए भी जनता का विश्वास प्राप्त करने योग्य नहीं हो सकते।

७. [१]आश्रित्यानिलमूर्ध्वगा जलमुचो[२] जानन्ति तत्त्वं न तत्,
कुर्वन्तो गगनाङ्गणे चपलताकेलिं हरन्ते मनः।
स्तोकेनैव पलेन भूमिपतनं ते यान्त्यतर्क्यं ध्रुव-
मन्यालम्बनतो यदूर्ध्वगमनं तन्नास्ति रिक्तं भयात्॥

मेघ पवन के आश्रय से बहुत ऊंचे चले जाते हैं। वे आकाश में चपलता से क्रीड़ा करते हुए लोगों का मन हर लेते हैं और थोड़े ही समय में अप्रत्याशित रूप से भूमि पर गिर जाते हैं। वे इस तत्त्व को नहीं जानते कि दूसरों के सहारे ऊंचा चढ़ना खतरे से खाली नहीं होता।

८. [३]धान्यं येभ्यो नयति कृषको जीवनं सर्वलोकः,
शैत्यं वातो नवरसमगः[४] स्नेहमुर्वी प्रकर्षम्।
जातो नूनं जलधरसुहृत् केवलं यन्मयूरः,
गम्यं तस्माद् हृदयमितरद् भिन्नमावश्यकत्वम्॥

मेघों से कृषक धान्य पाता है, सारे प्राणी जीवन पाते हैं, पवन ठंडक तथा वृक्ष नया रस प्राप्त करते हैं और भूमि प्रचुर स्निग्धता पाती है। किन्तु इतना होने पर भी केवल मयूर ही जलधर का सुहृद् बना है। इससे यह सत्य अभिव्यक्त होता है कि हृदय भिन्न होता है और आवश्यकता भिन्न।

५. मेघाष्टकम्-२

१. [५]आदाय शान्तमनसा स्वपितुर्वरेण्य-
मादेशमद्य जलदश्चपलां प्रणेतुम्।
सज्जीबभूव विविधैर्वसनैश्च जन्यैः[६],
श्वश्र्वालयं प्रति स मौनमनाश्चचाल॥

मेघ अपने पिता के वरेण्य आदेश को शान्त मन से स्वीकार कर चपला (विद्युत्) को प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार की वेशभूषा से सज्जित होकर बरातियों के साथ मौन होकर ससुराल के लिए चल पड़ा।

---

१. शार्दूलविक्रीडितम्।
२. जलमुक्-बादल।
३. मन्दाक्रान्ता।
४. अगः-वृक्ष।
५. वसन्ततिलका।
६. जन्यः(जनीं वहति)-जामाता के मित्र(बराती)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. [1]अध्वानं चपला विलोलनयना लोलोकयन्ती मिषात्,
पत्युः संतमसं प्रवालजटिलं दृष्ट्वा मुखं दूरतः।
धावन्ती च प्रकम्पमानचरणैर्भूयो स्खलन्ती कदा,
जल्पन्तीव ललद्गिरा[2] च सहसा पेदे पितुः सन्निधौ।।

चंचल आंखों वाली चपला मार्ग को देखने के बहाने अंधकार में पति के अंधकारमय प्रवाल जैसे रक्तिम मुख को दूर से देख रही है। वह प्रकम्पित चरणों से बार-बार स्खलित होती हुई भूमि पर दौड़ रही है और लल्लर वाणी से मानो बोलती हुई सहसा पिता (पवन) की सन्निधि में पहुंच गई।

३. [3]हे! हे! पितः! कथमहं सहसा प्रपेदे,
स्त्रीत्वेन जन्म कनकाभमिह प्रदेशे।
यत्रस्थितैः सकलजानपदैः प्रपन्नं,
कन्याधनं च पितरि प्रबलाक्षिरोगः।।

हे पिता! मैंने इस प्रदेश में स्त्री के रूप में कनक की आभावाला जन्म कैसे लिया, जिस प्रदेश में रहने वाले सारे लोग कन्याधन को पिता के प्रबल चक्षु-रोग के रूप में मानते हैं।

४. [4]नाऽयं योग्योऽसफलवदनं दर्शयेत् स्वस्य पित्रे,
तेनैवाधो रुदति प्रचुरैरश्रुधाराप्रपातैः।
छिन्दन् छिन्दन् सकलवदनं खण्डशो यत् प्रयच्छन्
आसारैः स व्यथितमनसाऽलब्धदारः प्रयाति।।

यह उपयुक्त नहीं है कि वह अपना असफल मुंह पिता को दिखाए, इसलिए वह प्रचुर अश्रुधारा को छोड़ता हुआ अधोमुख होकर रोता है। सम्पूर्ण मुंह का खण्डशः छेदन करता हुआ-वेगवान् वर्षा करता हुआ वह (मेघ) व्यथित मन से पत्नी को बिना प्राप्त किए ही चला जाता है।

५. [5]सूनौ गुणाः समुपयान्ति च पूर्वजानां,
डार्विन्-विकाससरणिर्विशदेति नैवम्।
गम्भीरतास्थितिमिमां महदर्णवस्य,
लोला पयोदपटलिः क्व समश्नुतेह।।

---

१. शार्दूलविक्रीडितम्।
२. ललद्गीः-लल्लर वाणी।
३. वसन्ततिलका।
४. मन्दाक्रान्ता।
५. वसन्ततिलका।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वजों के गुण पुत्र में आते हैं, डार्विन की यह विकासवाद की पद्धति स्पष्ट नहीं है। चंचल मेघपटली समुद्र की इस गंभीरता और मर्यादा को कहां प्राप्त करती है?

६. [1]स्तैन्यं कृत्वा झटिति सततं धावमानैः पयोदैः,
लोप्त्रं[2] नीत्वा जगति सकले विज्ञवर्येषु 'दानी'।
संज्ञां नीता विधिबलवशात् कैतवं गर्जयन्तो
हा! हा! चित्रं सकलमनुजा वावदूकेषु[3] रक्ताः।।

चोरी करके, शीघ्रता से अपहृत धन को लेकर निरन्तर दौड़ने वाले बादलों ने छलपूर्वक गर्जना करते हुए विधिबल से समस्त संसार में विज्ञजनों के मध्य 'दानी' की संज्ञा (यश) को प्राप्त कर लिया। बहुत आश्चर्य है कि सब लोग वाचाल व्यक्तियों में ही अनुरक्त हो जाते हैं।

७. [4]उद्भूतो वारिराशेर्नभसि च गमनं वायुना प्रेर्यमाणो
विद्युल्लेखा नवोढा भृतकसमुदयो नक्रमत्स्यादयो हि।
नाऽहं सीमागतो नो नियमनिगडितो गन्तुमस्मि स्वतन्त्र
इत्थं मानं प्रकुर्वन् घनरसपृषतान्[5] पातयन् खे प्रयाति।।

मैं समुद्र से पैदा हुआ हूं। वायु द्वारा प्रेरित होने पर मैं गगन में गमन करता हूं। बिजली की लहर मेरी नवोढा है और मगरमच्छ, मत्स्य आदि मेरा भृतकसमूह (नौकर-चाकर) है। न मैं किसी सीमा में आबद्ध हूं और न किसी नियम से नियन्त्रित। मैं (कहीं भी) जाने में स्वतन्त्र हूं–इस प्रकार अभिमान करता हुआ मेघ जल की बून्दों को गिराता हुआ आकाश में विहरण करता है।

८. [6]रे! रे! मेघ! स्तनसि सततं श्लाघमानः स्वभाग्यं,
गुर्व्यां भूमौ विलसति सदा चक्रवालं[7] गुणानाम्।
काये वाक्ये मनसि च कदा नैव गर्वं विधत्ते,
नीचो गर्वी भवति विषया नापरे येन दृष्टाः।।

हे मेघ! तू अपने भाग्य की श्लाघा करता हुआ निरन्तर गर्जन कर रहा है। इस विशाल पृथ्वी पर सदा गुणों का समूह शोभित होता है, फिर भी वह (भूमि) मनसा, वाचा, कर्मणा कभी भी गर्व नहीं करती। यह सत्य है कि जिसने दूसरे विषयों को नहीं जाना है वह तुच्छ–अज्ञानी व्यक्ति थोड़ा–सा जानकर गर्वित हो जाता है।

१. मन्दाक्रान्ता।
२. लोप्त्रम्–चुराया हुआ धन।
३. वावदूकः–मुखर।
४. स्रग्धरा।
५. घनरसपृषतः–जल की बून्द।
६. मन्दाक्रान्ता।
७. चक्रवालम्–राशि, समूह।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६. कादम्बिनी

(आत्मीयता और दम्भ दोनों में बहुत दूरी है। इस दूरी को स्पष्ट कर रही है मेघमाला।)

१. [1]आयाता गगनाङ्गणे प्रगुणिता कादम्बिनी[2] दम्भिनी,
व्योम्ना स्थानमदायि सत्कृतियुतं प्राच्छाद्य सूर्यं स्थिता।
सारस्यं समवप्रदाय परितो भूयो गता मेदिनीं,
क्षीणं नीरसमात्रमत्र कुणपं[3] हा! दम्भिनां चेष्टितम्॥

आकाश में यह दम्भिनी मेघमाला एकाकार होकर उमड़ आई। आकाश ने सत्कारपूर्वक उसे स्थान दिया। वह सूर्य को आच्छादित कर वहां ठहर गई। चारों ओर से सरसता लेकर वह पुनः भूमी पर गिरी। उसका सारा पानी क्षीण हो गया और अब वह नीरस कलेवर की भांति रह गई। हा! दम्भियों की चेष्टा ऐसी होती है।

७. प्रेमाकर्षणम्

(समुद्र का आकाश काली कजरारी घटाओं से घिर गया। इठलाते हुए बादल इधर-उधर घूमने लगे। समुद्र ने उन्हें सहन कर लिया, किन्तु उनका गर्जारव समुद्र के लिए असह्य हो गया। वह बोल उठा-)

१. [4]नीरं मत्तो[5] नीतं, नाश्रयोऽपि वर्तते तव क्वापि।
आकृत्याऽपि श्यामो, गर्जसि कस्मान्मुधा[6] मेघ!॥

मेघ! तुमने मेरे से पानी लिया है। तुम्हारा आश्रय भी कहीं नहीं है। तुम आकृति से भी काले हो, फिर क्यों तुम व्यर्थ गरज रहे हो?

२. क्षारं मधुरं कृत्वा, तव वारि तेनैव संतोष्य जनान्।
पुनरपि ते वितरामि, तस्माद् गर्जाम्यहं न मुधा॥

समुद्र! मैं तुम्हारे खारे पानी को मीठा बनाकर लोगों को देता हूं और उससे वे संतुष्ट होते हैं। वही पानी तुम्हें पुनः लौटा देता हूं, इसलिए मैं गर्जन करता हूं। मेरा गर्जना व्यर्थ नहीं हैं।

३. पुत्रस्तव सकलङ्कस्तनुजा चपला च तत्पतिः कृष्णः।
क्षारमयः सकलोऽसि, गर्जसि कस्मान्मुधा सिन्धो!॥

---

१. शार्दूलविक्रीडितम्।
२. कादम्बिनी-मेघमाला।
३. कुणपम्-कलेवर।
४. आर्या।
५. मत्तः-मेरे से।
६. मुधा-व्यर्थ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समुद्र! तुम्हारा पुत्र चन्द्रमा सकलंक है, पुत्री लक्ष्मी चपल है और उसका पति कृष्ण है–काला है। तुम सर्वात्मना क्षारमय हो। फिर भी तुम व्यर्थ क्यों गर्जन करते हो?

४. जगदानन्दविधायी, परोपकाराय जगति चतुरतरः।
तव तुल्यो मम तनुजः, तस्माद् गर्जाम्यहं न मुधा॥

मेघ! मेरा पुत्र (चन्द्रमा) तुम्हारे तुल्य है। वह जगत् को आनन्द देने वाला और संसार का उपकार करने में अतिनिपुण है, इसलिए मैं गर्जन करता हूं। मेरा गर्जना व्यर्थ नहीं है।

(वि. सं. १९९८, माघशुक्ला (जनवरी, १९४२), मेलूसर)

८. समुद्राष्टकम्–१

(आचार्य तुलसी वि. सं. २०११ में मुम्बई और उसके परिपार्श्व के क्षेत्रों में यात्रा कर रहे थे। मैंने पहली बार समुद्र देखा, उसकी विशालता को देखा, उसके ज्वारभाटे को देखा। कवि–मानस केवल वस्तु को नहीं देखता, उसके साथ पल्लवित होने वाली समस्याओं को भी देखता है और उन पर चिन्तन भी करता है। प्रस्तुत है चिन्तन के कुछ कण–)

१. [1]जलकणैर्विहितो जलधिर्महान्, विपुलता फलिता ललिता ततः।
पुलिन[2]बिन्दुमुपेक्ष्य स गच्छति, किमिति हा! महिमा महतामसौ॥

पानी की बूंदों ने समुद्र को महान् बनाया और उन्हीं के कारण उसकी विपुलता और सुन्दरता फलित हुई, किन्तु समुद्र तटवर्ती बूंदों की उपेक्षा कर चला जा रहा है। आश्चर्य है! क्या महान् व्यक्तियों की यही महत्ता है?

२. जलनिधे! सरितामपकर्षणं, सृजसि तेन महानिति गीयसे।
बत! निरर्थकसंग्रहपद्धतिरुपनतास्ति तया जगती दुता[3]॥

समुद्र! तुम नदियों का पानी लेकर महान् बने हो, ऐसा लोग कहते हैं। खेद है कि यह निरर्थक संग्रह की पद्धति तुम्हारे में है, इससे विश्व पीड़ित हो रहा है।

३. बहुलता न भवेन्मधुरा क्वचिज्जलधिरेष विभाति निदर्शनम्।
मधुरतां सृजति ध्रुवमल्पता, जलद एष विभाति निदर्शनम्॥

---

१. द्रुतविलम्बितम्।
२. पुलिनम्–वह तट जिसे पानी ने छोड़ दिया है।
३. दुतः (दुं–गतौ)–पीड़ित। धातूनामनेकार्थकत्वात्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रचुरता कहीं भी मधुर नहीं होती, इसका स्पष्ट उदाहरण है-यह समुद्र। अल्पता मधुरता का सृजन करती है, इसका उदाहरण है-यह बादल।

४. जलनिधिर्वसुधामुपसर्पति, सुरपथं[1] लहरी परिचुम्बति।
न खलु वेत्ति कृशानुभवा हि सा, न तु नुता[2]ऽपि च शून्यगतोच्चता॥

समुद्र भूमि पर उपसर्पण करता है और तरंग आकाश को छूने का प्रयत्न करती है। वह अल्प अनुभव वाली है। वह नहीं जानती कि दूसरे के द्वारा प्रेरित होने पर भी शून्य में जाने से उच्चता की प्राप्ति नहीं होती।

५. [3]नयसि नयति निम्नं यद् गुरुं त्वं तुलापि,
प्रकटमहह! दोषोऽयं द्वयोर्निर्विशेषः।
तदिह न तुलितो नो तोयबाहुल्ययोगात्,
सदृशचरितयुग्मे कः कथं तोलयेत् कम्॥

समुद्र! जिस प्रकार तुम जिस भारी वस्तु को नीचे ले जाते हो, उसी प्रकार तुला भी भारी वस्तु को नीचे ले जाती है। दोनों में यह दोष स्पष्ट और समान है, यह आश्चर्य है। तुम अभी तक तुलित नहीं हुए तो। तुम विशाल जलराशि हो, इसलिए नहीं तुले, ऐसा नहीं है, किन्तु जहां दोनों सदृश चरित्र वाले हों, वहां कौन किसको कैसे तोले?

६. भवति च नववेला मूर्त्तसंघर्षवेला,
तदिह जलधिवेलाकाल एव प्रमाणम्।
अमितसलिलराशिर्नेकधाऽऽयाति याति,
दृषदि[4] दृषदि रुद्धो, दुर्लभो हि विकासः॥

यह स्पष्ट है कि नई वेला संघर्ष की वेला होती है। इसका प्रमाण है समुद्र में ज्वार-भाटे का समय। उस समय अमित जलराशि अनेक बार तट से टकराती है और चली जाती है। उसका आगमन और गमन चट्टानों से अवरुद्ध होता है। यह सच है कि विकास अत्यन्त दुर्लभ होता है।

७. कथय कथय विद्या क्वाम्बुधे!ऽसावधीता,
चपलपवनलोलोऽपि स्थितिं[5] लङ्घसे न।
न खलु न खलु विद्यामन्दिरे मानवानां,
मिलति कठिनकाले स्वव्रताभ्यासशिक्षा॥

१. सुरपथः-आकाश।
२. नुतः (णुक्-स्तुतौ)-प्रेरित।
३. मालिनी।
४. दृषत्-चट्टान।
५. स्थितिः-मर्यादा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समुद्र! तुम चपल पवन के द्वारा चंचल होने पर भी अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ते। तुम बताओ कि तुमने यह विद्या कहां से सीखी? आज के विद्यालयों में मनुष्यों को आपत्तिकाल में भी अपने व्रतों में दृढ रहने की शिक्षा कहां मिलती है?

८. सलिलमपि सुधा स्याद् मन्थनेनेति तत्त्व-
ममृतमपि विषं स्याद् रूढवृत्त्येति तथ्यम्।
उदधिरपि समन्थोऽसूत रत्नानि सूक्तिः,
विगलितपरिवर्तः क्षारतामेष याति॥

मन्थन से पानी भी अमृत बन जाता है, यह एक यथार्थ है। रूढवृत्ति से अमृत भी विष हो जाता है, यह भी एक तथ्य है। यह प्रसिद्धि है कि मंथन किए जाने पर समुद्र ने भी रत्नों को उत्पन्न किया। जब उसका मंथन रुक गया तो उसमें परिवर्तन होना बंद हो गया, तब वह भी पड़ा-पड़ा खारा बन गया।

(वि. सं. २०११ (सन् १९५४), मुंबई चतुर्मास)

९. समुद्राष्टकम्-२

१. [१]नौचित्यं महतां विभाति जलधे! क्रोडे खलानां चयः,
क्षुद्रा नो परिपन्थिन[२]स्तदपि हा! दूरं परिक्षेपणम्।
रत्नानि प्रचुराणि सन्ति चरणे यज्जीविनां वैभवं,
तृण्या[३] यत्तव मस्तके विलसते हाऽज्ञानिनां चेष्टितम्॥

हे समुद्र! तुम्हारे बड़े होने का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि तुम अपनी गोद में दुष्टों (मगरमच्छ, मत्स्य आदि) का चय कर रहे हो, भरण-पोषण कर रहे हो और जो तुम्हारे शत्रु नहीं है उन क्षुद्रों (घोंघा, सीपी, शंख आदि) को दूर फेंक रहे हो। प्रचुर रत्न जो मनुष्यों के वैभव हैं, उनको तुम अपने चरण (सतह) में रखते हो और जो घास-पात है, उसको अपने मस्तक (ऊपर) पर रखते हो। हा! यह अज्ञानियों की ही चेष्टा है।

२. नदी चक्रे सिन्धुं जलधिरिति तातस्य प्रसृतो
जनेषूहापोहस्तनयजलदेनोपचरितः।
पुनर्नारीरूपं धृतमिह धुनीं[४] प्रापयति सः,
ततो विश्वासो नो भवति महतां चञ्चलधियाम्॥

नदी ने समुद्र को जलधि बना दिया। इससे जनता में मेघ के पिता (समुद्र) के प्रति ऊहापोह हो गया। उसे दूर करने के लिए उसके पुत्र मेघ ने अपना व्यवहार निभाया,

१. शार्दूलविक्रीडितम्।
२. परिपन्थी-शत्रु।
३. तृण्या (तृणानां समूहः)-घास का समूह।
४. धुनी-नदी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पानी बरसाया। बरसे पानी ने पुनः नारी रूप में सरिता को धारण कर लिया। समुद्र ने पुनः उस नदी को प्राप्त कर लिया, अपने में समा लिया। इसलिए चंचल बुद्धि वाले बड़े व्यक्तियों के प्रति विश्वास नहीं होता।

३. [१]मर्यादाक्रमणं न ये विदधते ते पूरुषाः पूरुषा
इत्थं ज्ञापयतोऽभिधा जलनिधेर्जाता मितद्रु[२]र्मुदा।
कामं शैलसुता समुद्रदयिता मेघस्य माता परं,
संतेने जगतः प्लवं[३] चलतया धिक् चापलाजृम्भितम्।।

जो पुरुष मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते वे ही वास्तव में पुरुष होते हैं। इस बात को प्रसन्नता से जताने वाला समुद्र 'मितद्रु' (मर्यादा में रहने वाला) की संज्ञा से अभिहित हो गया। मर्यादा का अतिक्रम किसी भी नदी ने किया हो, चाहे वह पर्वत की पुत्री हो, समुद्र की पत्नी हो और मेघ की माता हो, उन सबने अपने चंचल स्वभाव के कारण जगत् में बाढ़ की स्थिति को उत्पन्न किया है। धिक्कार है! चंचलता के विस्तार को।

४. [४]सदा स्तैन्यं कृत्वा झगिति मुदिरो[५] याति नभसि,
जलादाने[६]नाऽयं प्लवयतितरा[७]मात्मजननीम्।
तथाप्येषा रोषं मनसि च कदा नैव तनुते,
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।।

बादल सदा चोरी करके तुरन्त ही आकाश में चला जाता है और जल के सम्पूर्ण दान से अपनी माता को प्लावित कर देता है। फिर भी यह नदी मन में इसके प्रति कभी रोष नहीं करती। पुत्र कुपुत्र हो सकता है, किन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती।

५. [८]पुत्रास्ते वसुधातले सुकृतयो ये स्युः पितुः सेविनो
दोषान् सर्वगुणान् विधाय सततं लोके यतन्ते हितम्।
नैवं कार्यकरोऽर्णवो बत! कृषौ पानेऽवगाहे[९] तथा,
चाक्रोशं परिहर्तुमेव जलदैर्मिष्टं जलं क्षिप्यते।।

पृथ्वी पर वे ही पुत्र भाग्यशाली होते हैं, जो पिता की सेवा करते हैं और दोषों को सब गुणों के रूप में परिणत कर निरन्तर लोकहित में प्रयत्न करते हैं। खेद है कि समुद्र

---

१. शार्दूलविक्रीडितम्।
२. मितद्रुः–समुद्र, मर्यादा में रहने वाला।
३. प्लवः–बाढ़।
४. शिखरिणी।
५. मुदिरः–बादल।
६. आदानम्–सम्पूर्ण दान।
७. प्लव इव आचरति–प्लवयति।
८. शार्दूलविक्रीडितम्।
९. अवगाहः–स्नान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का पानी खेती में, पीने में और स्नान करने में कार्यकारी नहीं होता, उपयोगी नहीं होता। उस आक्रोश का परिहार करने के लिए ही बादल मीठा पानी बरसाते हैं।

६. उत्पादव्ययनित्यमेव सुतरां संसूचयन्नूर्मिभिः,
सर्वं नीरमयं जगत् रसजनुश्चाद्वैतवादं वदन्।
अस्तित्वं हि विभिन्नमेव जगति द्वैतं भवेद् बिन्दुना,
बौद्धानां क्षणिकत्वमम्बुनिधिना संसूच्यते वीचिभिः।।

ऊर्मियां निरन्तर उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य को सूचित कर रही हैं। सारा जगत् जलमय है, वर्षा का जल इस अद्वैतवाद का कथन कर रहा है। जगत् में अस्तित्व भिन्न-भिन्न है, यह द्वैत बिन्दु से सिद्ध हो रहा है। समुद्र की तरंगें बौद्धों के क्षणिकवाद को संसूचित कर रही हैं। इस प्रकार समुद्र दार्शनिक सिद्धांतों का सूचक बन रहा है।

७. [1]बिन्दून् बिन्दून् मधुरपयसां स्वात्मलीनं नयानो,
दुःखं पेदे[2] दृषदि[3] मथितः संग्रहेणाब्धिरेवं।
नो गृह्णाति भवति मधुरा निम्नगा[4] तोषयुक्ता,
तस्माद् गम्यं जगति मनुजैः शोषणं भूरि दुःखम्।।

समुद्र मधुर जल की बून्द-बून्द को अपने में लीन करता हुआ संग्रह कर रहा है। उसके कारण वह चट्टानों से मथित होकर दुःख को प्राप्त करता है। नदी संतोषी होने के कारण संग्रह नहीं करती, इसलिए वह मधुर होती है। अतः मनुष्यों के लिए यह ज्ञातव्य है कि जगत् में शोषण प्रचुर दुःख का हेतु होता है।

८. [5]स्वात्मानं सुतरां समाधिसहितं संप्रीणयन् सागरे,
संघे स्वात्मकृतिं निनाय जलधौ दुःखे च सौख्ये सदा।
आत्माशी[6] परिहाय संघमवधिं[7] यातो बहिर्नीरतः,
स्वैरी[8] मृत्युमवाप बोधयति स श्रेयस्करं शासनम्।।

बिन्दु ने प्रसन्न होते हुए अपने आपको अत्यन्त समाधिपूर्वक सागर में विलीन कर दिया। उसने संघ (समूह) में अपनी आत्मकृति (जलीयाकृति) को प्राप्त कर लिया और वह सुख और दुःख में समुद्र के साथ रहने लगा। जो बिन्दु आत्माशी (स्वाभिमानी)

---

१. मन्दाक्रान्ता।
२. पेदे (पदंङ्च्-गतौ, णबादि, प्रथमपुरुष, एकवचन)-प्राप्त करना।
३. दृषद्-चट्टान।
४. निम्नगा-नदी।
५. शार्दूलविक्रीडितम्।
६. आत्माशी-स्वाभिमानी।
७. अवधिः-मर्यादा।
८. स्वैरी-स्वेच्छाचारी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होकर संघ की मर्यादा को छोड़कर जलराशि से बाहर चला गया, वह स्वेच्छाचारी मृत्यु को प्राप्त हो गया। यह बिन्दु बोध दे रहा है कि शासन (संघ) ही श्रेयस्कर होता है।

१०. असंग्रहः

(संग्रह हो और कटुता न आए, यह कैसे संभव हो सकता है? जलधर जल लेता है और उसका विसर्जन कर देता है, उसका संग्रहं नहीं करता। इसी में खोजा जा सकता है माधुर्य का रस।)

१. [1]बिन्दून् बिन्दून् गृहीत्वा सुमधुरपयसो जात एवासि सिन्धो!,
गृह्णन् गृह्णन् पुनर्वा दददपि च ददत् क्षार एवासि बन्धो!।
अग्राहे बाह्यरूपं न भवति विपुलं किन्तु माधुर्यमत्र,
वक्षो व्याप्नोति नूनं न वहननिवहः[2] संग्रहे व्यत्ययो हि॥

हे समुद्र ! तुम मीठे पानी की एक-एक बून्द का ग्रहण कर सिन्धु रूप में परिणत हुए हो। बन्धो! तुम जल को लेते हो और पुनः उसे देते भी हो, फिर भी तुम खारे बने हुए हो। इसका कारण है–तुम्हारी संग्रहवृत्ति। असंग्रह में बाह्य रूप विशाल नहीं होता, किन्तु मधुरता होती है। फिर उसकी छाती पर वाहन नहीं चलते। संग्रह में इससे विपरीत होता है।

२. सिन्धो! साम्राज्यवादं व्यपनय नयतः शास्ति तन्त्रं प्रजानां,
गृह्णन् दायं गिरिभ्योऽनुभवसि न शमं संग्रहोन्मत्तचेताः।
प्रादुर्भूतोऽस्ति भूम्यां निधनकर इतः पश्य संसत्प्रकाशे,
हिन्दूकोडाभिधोऽयं स्फुरति विधिरतो मुञ्च पत्नीरनल्पाः॥

हे समुद्र! तू साम्राज्यवाद को छोड़। आज प्रजातंत्र न्याय से शासन कर रहा है। तू पर्वतों से दाय–पानी का हिस्सा लेता हुआ भी शांति का अनुभव नहीं कर रहा है, क्योंकि तेरा चित्त संग्रह करने में उन्मत्त है। संसद् के प्रकाश में तू देख, इधर पृथ्वी पर मृत्यु–कर लगा है और उधर 'हिन्दूकोड नामक कानून' चालू हुआ है। अतः तू संग्रह और बहुपत्नी–प्रथा को छोड़ दे।

११. विवेकः

('अपना अपना होता है और मसया पराया'–इस सत्य का साक्षात्कार तब होता है, जब नदियां पूरे वेग के साथ समुद्र की गोद में चली जाती हैं।)

---

१. स्रग्धरा। २. वहननिवहः–वाहनसमूह।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. [1]पयोधरस्य सन्ततिस्तता सरोवरादिकै-
र्हठात् स्वमध्यगापि यन्निरर्थकं बहिष्कृता।
प्रयोजनं विनाप्यहो! धृताम्बुराशिना स्वयं,
परः परः स्वकः स्वकः प्रतीयते ततो जनैः॥

मेघ ने विपुल धाराओं से पानी बरसाया। सरोवर आदि जलाशयों ने हठात् उस पानी को अपने भीतर ले लिया, जो निरर्थक था उसे बाहर निकाल दिया। समुद्र ने यह देखा। आश्चर्य है कि उसने बिना प्रयोजन ही उस पानी को अपने में धारण कर लिया। इससे लोगों को विश्वास हो गया कि 'अपना अपना होता है और पराया पराया।'

१२. प्रकृतिः

(आसान है दूसरे की कमी को देखना और बहुत कठिन है अपनी कमी को देखना। आसान है स्व-गुण का प्रकाशन और बहुत कठिन है पर-गुण का प्रकाशन। इसीलिए दूसरों की उन्नति सहन नहीं होती। क्योंकि मनुष्य विविध प्रकृति वाला होता है।)

१. [2]अन्येषां स्खलनां दूरादपि पश्यन्ति मानवाः।
स्वकीयां करमध्यस्थामप्यहो नैव जानते॥

मनुष्य की प्रकृति है कि वह दूसरों की कमियों को दूर से भी देख लेता है, किन्तु वह अपने हाथ के मध्यस्थित को भी नहीं जान पाता, अपनी कमी को नहीं देख पाता, यह आश्चर्य है।

२. प्रसारः केन कस्याथ सोढव्योऽपरजातिना।
गतिरेषा यदा भाति, नितान्तं सहजन्मना॥

कौन किस दूसरी जाति के प्रसार-उन्नति को सहन करता है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति सदा जन्म के साथ रहती है।

१३. माधुर्यम्

(मधुरता प्रिय होती है और कटुता अप्रिय। जो व्यक्ति कटुता को मधुरता में बदलना जानता है उसकी कुछ कमियां भी क्षम्य हो जाती हैं।)

१. [3]जीवन[4]हरणं स्तनितं, वर्षणमात्मनीत्यादि घनकार्यम्।
सर्वं सहते सिन्धुर्मधुरीकरणगुणमेक्ष्यै[5]कम्॥

१. पञ्चचामरः।
२. अनुष्टुप्।
३. आर्या।
४. जीवनम्-जल।
५. एक्ष्य (आ+ईक्ष्+यप्)-देखकर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेघ का कार्य है–समुद्र के जल का हरण करना, उसी पर गर्जन करना और वर्षा करना। समुद्र मेघ में एक महान् गुण को देखकर इन सारी चेष्टाओं को सहन कर रहा है। वह गुण है खारे पानी को मीठा बनाना।

१४. स्थितेर्मूल्यम्

(गति का अपना मूल्य है और स्थिति का अपना मूल्य। केवल गतिशील होने की बात न सोचें, उसके साथ स्थिति की बात अवश्य सोचें।)

१. [1]रत्नाकरो[2]ऽगतिः कामं, जलपोतगतिः परम्।
प्रतिग्रामं व्रजन्त्यां च, नद्यां पोता व्रजन्ति किम्?।।

समुद्र स्वयं अगति है–गति नहीं करता, किन्तु जलपोत की गति उसके सहारे होती है। नदी गांव–गांव में गति करती है, क्या जलपोत उसमें गति करते हैं?

१५. गृहमणिः

(प्रत्येक वस्तु के असीम पर्याय होते हैं। वे सब हमारे ज्ञान के विषय नहीं बनते। अनगिन कवियों ने दीपक की अनगिन पर्यायों पर लिखा है। मैंने भी उसकी कुछ पर्यायों का आलेखन किया है।)

१. [3]दीप! प्रकाशयसि रे परवस्तुजातं,
द्रष्टुं स्वरूपमपि यद् मुकुरे यतस्व।
स्नेहापशोषणतया त्वयि भास्वरेऽपि,
यः कालिमा न हि कलङ्कपदं किमत्र?॥

रे दीपक! तुम पर–वस्तुओं को प्रकाशित करते हो, किन्तु अपने स्वरूप को भी कांच में देखने का यत्न करो। तुम स्वयं भास्वर हो, फिर भी स्नेह की शोषणता के कारण जो कालिमा तुम्हारे में आई है क्या यह तुम्हारे पर कलंक का चिह्न नहीं है?

२. आलोकवानसि वरं गृहरत्न[4]! किन्तु,
कीर्तिं न गातुमभिमानिवरोऽहमिच्छुः।
कान्ताकराङ्गुलिविकम्पनमध्यवासि,
त्वज्जीवनं च मरणं किमिदं तवार्हम्?॥

दीपक! तुम भलीभांति प्रकाशवान् हो, किन्तु अत्यन्त स्वाभिमानी मैं तुम्हारी

---

१. अनुष्टुप्।
२. रत्नाकरः–समुद्र।
३. वसन्ततिलका।
४. गृहरत्नम्–दीपक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीर्ति-गान करने का इच्छुक नहीं हूं, क्योंकि तुम्हारा जीवन-मरण स्त्री के हाथ की अंगुलियों के कम्पन पर टिका हुआ है। क्या यह तुम्हारे योग्य है?

३. [1]तैलं पूर्णं वर्ति[2]रुच्चैः कृताऽऽस्या[3], सूक्ष्मो वातः पावकः पावनात्मा।
चित्रं चित्रं नो तथापि प्रदीपो, वृत्रस्तोमं[4] भूमिसाद् यत्तनोति॥

दीपक में तैल भी पूर्ण है और ऊंचा मुंह किए बाती भी खड़ी है। मन्द पवन चल रहा है। पवित्र ज्योति जल रही है। फिर भी अत्यंत आश्चर्य है कि दीपक अंधकार को नष्ट नहीं कर रहा है।

१६. नभोमणिः

(इस विश्व में कोई सर्वथा पूर्ण नहीं है तो कोई सर्वथा अपूर्ण भी नहीं है। जो पूर्ण है, उसमें भी अपूर्णता के अंश विद्यमान हैं और जो अपूर्ण है, उसमें भी पूर्णता के अंश विद्यमान हैं। सूर्य पूर्णता का प्रतीक है। कवि की दृष्टि उसमें भी अपूर्णता का दर्शन कर रही है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।)

१. [5]सातङ्कं कुरुषेऽथ भूगृहमहो! रे कोऽसि? भास्वानहं,
छिद्रान्वेषक! किं तवास्त्यविषयः पृष्ठं न मे मुञ्चसि।
दोषं पश्यसि नात्मनः कथमरे! पश्यन्न वा पश्यसि,
विघ्नस्त्वं मम साम्यकर्मणि हहा! किं पावनं चेष्टितम्॥

सूर्य ने अंधकार से कहा–'रे अन्धकार! आश्चर्य है कि तुम इस भूमिगृह को आतंकित करते हो।' अन्धकार ने पूछा–'तुम कौन हो?' सूर्य ने कहा–'मैं सूर्य हूं।' अंधकार बोला–'छिद्रान्वेषक! क्या तुम्हारा कोई ऐसा विषय है, जिसे तुम नहीं छूते? तुम मेरा पीछा क्यों नहीं छोड़ते?' सूर्य ने कहा–'अरे! तुम अपना दोष क्यों नहीं देखते अथवा देखते हुए भी नहीं देखते?' अन्धकार ने कहा–'मेरे अस्तित्व में सर्वत्र समता का साम्राज्य है। उसमें कोई ऊंचा-नीचा, काला-गोरा दिखाई नहीं देता। इसलिए सूर्य! तुम मेरे इस समता कार्य में विघ्न बने हुए हो।' खेद है! क्या तुम्हारी यह चेष्टा पवित्र है?

२. [6]ग्रीष्मे भानोररुणकिरणैः शुष्यमाणे हि पङ्के,
सम्यगबुद्धं विकलनिनदैर्भास्वतां कर्मकाण्डम्।
क्षुद्रोद्धारे श्रयति सलिलं स्वात्मना गर्तवासं,
तेनैवाद्य प्रकृतिमुखरैर्ददुरैर्गीयमानम्॥

---

१. शालिनी।
२. वर्तिः–बाती।
३. आस्यम्–मुख।
४. वृत्रस्तोमः–अंधकारसमूह।
५. शार्दूलविक्रीडितम्।
६. मन्दाक्रान्ता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य अरुण किरणों से तप रहा था। उसके ताप से कीचड़ सूखने लगा। तब पंकवासी मेंढकों ने व्याकुल शब्दों से कहा–हमने प्रकाशवान् व्यक्तियों के कर्मकाण्ड को अच्छी प्रकार से जान लिया है। वे दूसरों को कष्ट देने में रस लेते हैं। इतने में उन क्षुद्रजीवों का उद्धार करने की कामना से पानी ने अपने आपको गड्ढे में वासित कर लिया। उससे मेंढक हर्षित हो उठे। इसलिए आज भी वर्षा ऋतु में प्रकृति से मुखर बने हुए मेंढक पानी का यशोगान (टर्र टर्र ध्वनि से) करते रहते हैं।

३. सूर्याच्छादयसि ग्रहाननुकृतिर्दीपस्य वा प्राकृतं,
मन्ये कश्चन नास्ति ते प्रियसुहृद् यस्त्वां हिते योजयेत्।
जातिद्वेषपरम्परा विकसिता नीचेन तत्कर्मणा,
हस्यन्ते तिमिरेऽपि दृश्यतनुभिस्तेजांसि ते तारकैः॥

सूर्य! तुम दूसरे सब ग्रहों को आच्छादित कर देते हो। यह दीप का अनुकरण है या तुम्हारा स्वभाव? मैं मानता हूं कि तुम्हारा कोई प्रिय मित्र नहीं है, जो कि तुम्हें हितकारी कार्य में योजित कर सके। तुम्हारी इस नीच क्रिया से जातीय द्वेष की परम्परा विकसित हुई है। यही कारण है कि अंधकार में भी दीखने वाले ये तारे तुम्हारे तेज पर हंस रहे हैं।

१७. तटस्था सन्धिवेला

(जो सन्धि में रहता है, किसी एक पक्ष की ओर नहीं झुकता उसका अपना मूल्य है। सन्ध्या का मूल्य कम नहीं है।)

१. [1]आलोकं स्वस्य पूषा प्रथयति पृथुलं वासरे भास्वरात्मा,
रात्रौ गाढान्धकारं प्रसृमरकरणं गाहते भूमिमेताम्।
नालोको नान्धकारो भवति च समयः सन्धिवेलैव[2] तादृग्
दोषैर्मुक्ता यदि स्युर्न खलु गुणगणैश्चापि के ते तटस्थाः॥

सूर्य प्रकाशात्मा है। वह दिन में अपने विपुल आलोक को फैलाता है। रात्रि में चारों ओर फैलने वाला सघन अंधकार इस सारी भूमि को व्याप्त कर लेता है। एक संन्ध्याकाल ही वैसा समय है, जिसमें न अंधकार होता है और न प्रकाश। वे तटस्थ व्यक्ति कौन हैं, जो यदि दोषों से मुक्त हों और गुणसमूह से भरे हुए भी न हों।

---

१. स्रग्धरा। २. सन्धिवेला–सन्ध्या।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१८. शून्यम्

(आकाश इसलिए शून्य है कि उसमें ग्रहणशीलता नहीं है। वह न बुराई को ग्रहण करता है, न अच्छाई को। बुरा अच्छा हो सकता है, किन्तु जो ग्रहणशील नहीं है, उसे न बुरा कहा जा सकता है, न अच्छा। उसे शून्य ही कहा जा सकता है।)

१. [१]पूषाऽ[२]जस्रं गाहते व्योम घस्रे[३], रात्रावेते तारकाः सञ्चरन्ति।
लब्धा तेनैकापि नालोकरेखा, नूनं न स्याच्छून्यतायां स्वतेजः॥

दिन में सूर्य निरन्तर आकाश का अवगाहन करता है और रात में ये तारे नभ में विचरण करते हैं, फिर भी आकाश ने एक भी प्रकाश-रेखा प्राप्त नहीं की। यह निश्चित है कि शून्यता में अपना तेज नहीं होता।

२. [४]आलोकमालां क्षिपतेंऽशुमाली[५], व्याप्नोति रुद्रा रजनी तमिस्रम्।
तमोऽपि तेजोऽपि समावकाशं, करोति शून्यं[६] तत एव शून्यम्॥

दिन में सूर्य आकाश को आलोकपुंज से भरता है और रात्रि में डरावनी रात उसे अन्धकार से व्याप्त करती है। आकाश अन्धकार को भी और प्रकाश को भी दोनों को समान रूप से अवकाश देता है। इसीलिए वह शून्य है।

(वि. सं. २०१२, पौष कृष्णा (जनवरी, १९५६), रतलाम)

१९. निद्रा

(जीवन के लिए नींद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आहार और निद्रा दोनों की अनिवार्यता है। निद्रा आवश्यक भी है और समस्या भी है। प्रस्तुत प्रकरण में निद्रा के समस्यात्मक पक्ष का दर्शन है।)

१. [७]निद्रे! दरिद्रानपि पश्य किञ्चिद्, निर्वाससो ये निवसन्ति नित्यम्।
किं शीतभीता धनिनोऽनुयासि, न वेत्सि भीता हि जडा भवन्ति॥

नींद! तू उन दरिद्र मनुष्यों की ओर भी कुछ देख, जो निरन्तर बिना वस्त्र के रह रहे हैं। तू ठंड से भयभीत होकर धनिकों के पास क्यों जाती है? तू नहीं जानती कि डरने वाले जड़ होते हैं।

---

१. शालिनी।
२. पूषा–सूर्य।
३. घस्रः–दिन।
४. उपजाति।
५. अंशुमाली–सूर्य।
६. शून्यम्–आकाश।
७. इन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. [1]निमेषमाधाय समेति निद्रा, निमेषभाजामथवा भवेत् सा।
अप्यस्ति यत्रावरणं कनीयः[2], तत्रैव जाड्यं च तमः प्रवेशि॥

नींद पलकें बंद कर आती है अथवा जिनकी पलकें बंद होती हैं, तब भी नींद उनको आती है। यह ठीक भी है कि जहां थोड़ा सा आवरण है, वहीं जड़ता और अंधकार प्रवेश पाते हैं।

(वि. सं. २०१२, पौष कृष्णा (जनवरी, १९५६), रतलाम)

२०. स्नेहः

(स्नेह में शक्ति है। स्नेहिल स्पर्श मूक को भी प्रखर बना देता है। मनुष्य ही नहीं पत्र-पुष्प भी स्नेहिल स्पर्श से उत्पन्न सुखानुभूति को अभिव्यक्त कर प्रमुदित होते हैं।)

१. [3]वातस्पर्शं प्राप्य पत्राण्यपीषद्, शब्दं नृत्यं संसृजन्त्युच्छलन्ति।
पारस्पर्ये मौनभङ्गोऽपि न स्यात्, तत् किं स्नेहः साहचर्याद् बिभेति?॥

वायु का स्पर्श पाकर ये पत्ते भी कुछ शब्द कर रहे हैं, नाच रहे हैं और उछल रहे हैं। परस्परता होने पर भी यदि मौन भंग न हो तो वह स्नेह क्या, जो साहचर्य से भय खाए?

(वि. सं. २०१२, पौष कृष्णा (जनवरी, १९५६), रतलाम)

२१. जलस्य प्रकाशः

(प्रकाश जल से पैदा हो रहा है तब स्नेह का मूल्य कम कैसे नहीं होगा?)

१. स्नेहोद्भूताऽऽलोकलेखा पुराऽभूत्, नीरोद्भूता साम्प्रतं विद्युदेषा।
स्नेहश्चेतः चिक्कणत्वं[4] चिनोति, नीरं स्नेहक्षालि तत् स्नेहहानिः॥

प्राचीनकाल में प्रकाश की रेखा स्नेह से उत्पन्न होती थी और आज यह जल से उत्पन्न विद्युत् है। स्नेह चित्त को स्निग्धता से भरता है और जल स्नेह का प्रक्षालन करता है। इसीलिए आज स्नेह की हानि दीख रही है।

(वि. सं. २०१२, पौष कृष्णा (जनवरी, १९५६), रतलाम)

---

१. उपेन्द्रवज्रा।
२. कनीयः–थोड़ा।
३. शालिनी।
४. चिक्कणत्वम्–स्निग्धता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२२. छिद्रम्

(एक छोटा-सा छिद्र बांध के लिए समस्या बन जाता है। हम दूर क्यों जाएं? कान का छोटा-सा छिद्र क्या समस्या पैदा नहीं करता? उत्तर होगा-हरिणी का गतिरोध।)

१. [1]एणी[2] वीणानादनद्धा[3]त्मकर्णा, स्फाला[4]लीनाप्याशु रुद्धक्रमाऽभूत्।
सूक्ष्मं छिद्रं गामुकत्वं[5] रुणद्धि, निश्छिद्रत्वं तेन काम्यं प्रगत्याम्॥

वीणा बज रही थी। एक हरिणी जा रही थी। वीणा के स्वरों को सुनने में उसके कान आसक्त हो गए। ऊंची छलांग भरने वाले उसके पैर भी शीघ्र रुक गए। उसके कान के एक छोटे-से छिद्र ने उसकी गतिशीलता को रोक डाला। अतः प्रगति के लिए निश्छिद्रता काम्य है।

(वि. स. २०१२, पौष कृष्णा (जनवरी, १९५६), रतलाम)

२३. अपराजित:

(पराजित और अपराजित का व्यवहार समान नहीं होता है। पराजित तनाव पैदा करता है और अपराजित की सहिष्णुता से ताप पिघल जाता है।)

१. [6]पराजितानामियमेव रीतिर्गालिप्रदानं सततं सृजन्ति।
पराऽजितानामियमेव रीतिर्गालिप्रदानं सततं सहन्ते॥

जो पराजित हो जाते हैं, उनकी विधि यही है कि वे सतत गाली का प्रयोग करते हैं। जो अपराजित हैं, उनकी विधि है कि वे सतत दी हुई गालियों को सहते हैं।

(वि. सं. २०१२, पौष कृष्णा (जनवरी, १९५६), रतलाम)

२४. सरसता

(जीवनी शक्ति का नाम है-प्राण। सरसता उससे भी बड़ी शक्ति है। इसका उदाहरण है-इक्षु।)

१. [7]आत्मा जडत्वमापन्नो, गता सरसता क्वचित्।
इक्षूणां देहमात्मीयं, दह्यमानं प्रपश्यताम्॥

---

१. शालिनी।
२. एणी-हरिणी।
३. नद्धः-बद्धः।
४. स्फाला-छलांग।
५. गामुकत्वम् (गम्+उकण्+त्व)-गतिशीलता।
६. उपजाति।
७. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मा जड़ता को प्राप्त हो गई, सरसता दूसरी जगह चली गई, तब इक्षु का अपना शरीर जलने लगा। इसे तुम दखो और समझो।

२५. लक्ष्मीः

(लक्ष्मी धन की देवता है। इसके विषय में असंख्य कवियों ने असंख्य कल्पनाएं की हैं, फिर भी इसके यथार्थ स्वरूप को समझना सरल नहीं है।)

१. [१]स्वकीयाः परकीयाः स्युः, परकीया अपि स्वकाः।
विरहेऽविरहे पद्मे[२]!, तव केयं विचित्रता!॥

लक्ष्मी! तुम्हारे वियोग में 'अपने' 'पराए' हो जाते हैं और तुम्हारे संयोग में 'पराए' भी 'अपने' हो जाते हैं। तुम्हारी यह कैसी विचित्रता!

२. [३]पद्मे! कृथा मेति[४] वृथाभिमानं, मत्स्पर्शतो ही मनुजा मदान्धाः।
यत्राऽविवेकस्य भवेन्न सङ्गो[५], न तत्र शक्तिः सफला तवैका॥

लक्ष्मी! तुम यह व्यर्थ का अभिमान मत करो कि मेरे स्पर्श से ही मनुष्य मदान्ध हो जाते हैं। जहां अविवेक का स्पर्श नहीं होता, वहां तुम्हारी एक भी शक्ति सफल नहीं होती।

३. [६]क्षीरोदतनये[७]! त्वयि कटुताऽस्ति न वेति वेत्ति तव रसिकः।
व्यक्तं पश्याम्यस्मिन्, नो जाने तेऽस्य वा दोषः॥

लक्ष्मी! तुम्हारे में कटुता है या नहीं, यह तुम्हारा रसिक व्यक्ति ही जान सकता है। मैं स्पष्ट देखता हूं कि तुम्हारे रसिक में कटुता होती है। मुझे पता नहीं कि यह दोष तुम्हारा है या उसका?

२६. महतां कष्टम्

(महानता और कष्ट में कोई अकल्पित योग है। छोटा आदमी किसी बड़े लक्ष्य के साथ नहीं चल सकता, इसलिए उसे विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। महान् आदमी बड़ा लक्ष्य लेकर चलता है। बड़ा लक्ष्य कष्टसाध्य होता है।)

---

१. अनुष्टुप्।
२. पद्मा–लक्ष्मी।
३. उपजाति।
४. मेति (मा+इति)–निषेध।
५. सङ्गः–संगम।
६. आर्या।
७. क्षीरोदतनया–लक्ष्मी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. [1]लम्बन्ते तारकास्ते सुविशदरुचयः शून्यतायामिदानीं,
भ्राम्यन्त्यद्यापि नित्यं विकलवसतयो भास्करस्यापि धूर्व्याम्[2]।
ते के सन्तो जगत्यां परहितनिरता ये न जीवन्ति कष्टं,
सौख्यं दुष्टान् वृणोति प्रकृतिकलुषितान् यत्तमः शान्तिसर्गम्॥

अत्यन्त उज्ज्वल कान्ति वाले वे तारे आज भी शून्यता में लटक रहे हैं। गृहशून्य ग्रह अब भी सूर्य के अग्रभाग में निरन्तर घूम रहे हैं। जगत् में वे कौन व्यक्ति हैं, जो पर हित में लगे हुए हैं, किन्तु कष्ट का जीवन नहीं जीते? सुख उन दुष्ट व्यक्तियों का वरण करता है, जो प्रकृति से कलुषित हैं। यही कारण है कि अन्धकार शान्ति का सर्जन करता है।

□□□

१. स्रग्धरा। २. धूर्वी–अग्रभाग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीयः उच्छ्वासः

संवित्तिः

१. लाघवम्

(लघुता को निम्नदृष्टि से देखने वाले बहुत हैं। इस सचाई को देखने वाले बहुत कम हैं कि गुरुता लघुता की पृष्ठभूमि में ही रहती है। तुला का यह संदेश आंख को खोलने वाला है।)

१. [1]लघुं यदुच्चैर्नयसे गुरुञ्च, नीचैस्तुलेऽयं तव दोष उक्तः।
लघुत्वमुच्चैर्गमनस्य हेतु, किन्नेति शिक्षेत जनस्ततोऽपि॥

हे तुले! तुम लघु (हल्की) वस्तु को ऊपर और गुरु (भारी) वस्तु को नीचे ले जाती हो, यह तुम्हारा दोष कहा जाता है। तुला ने कहा—क्या लोग मेरे इस कार्य से नहीं सीख सकते कि लघुता (हल्कापन) ऊपर जाने का हेतु है।

२. जडता : अन्धकारः

(जड़ता आलोक की अपेक्षा अंधकार को अधिक सामीप्य देती है, इसलिए जड़ता और अंधकार दोनों को आसपास देखने में कोई दृष्टिभेद नहीं है।)

१. [2]द्वारि द्वारि प्राप्त आलोक एषः, स्नायं स्नायं सूर्यरश्मिप्रताने।
कुड्ये किञ्चिन्नावकाशं लभेत, प्रायो जाड्यं ह्यन्धकारानुयायि॥

सूर्य के रश्मिपुंज में नहा-नहा कर यह आलोक द्वार-द्वार पर आया है। इसको भित्ति में प्रवेश करने का जरा भी अवकाश नहीं मिल रहा है, क्योंकि जड़ता (अवरोध पैदा करने वाली) प्रायः अन्धकार का अनुगमन करने वाली होती है।

---

१. उपजाति। २. शालिनी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. कियान् प्रभेदः?

(मुक्त आकाश में क्रीड़ा करने वाला पक्षी जब धरती के किसी कोने पर बैठता है, वह दिन और रात का भेद जितना समझ सकता है उतना केवल भूमि पर रहने वाला नहीं समझ सकता।)

१. [1]अनन्तलीला प्रथमे क्षणे तु, छर्दौ[2] गृहाणां स्थितिरुत्तरेऽस्मिन्।
दिने च रात्रौ च कियान् प्रभेद, इदं कपोता हि विदन्ति नान्ये॥

पहले क्षण में अनन्त आकाश में उड़ने वाले ये कबूतर दूसरे क्षण में घरों के छज्जों पर आ बैठते हैं। दिन और रात में कितना अन्तर होता है—इसे कबूतर ही जान सकते हैं, दूसरे नहीं।

४. पौष-निशा

(केवल गति हो तो गति में वेग आ सकता है। यदि गति के साथ चिन्तन जुड़ जाए तो गति में शिथिलता स्वाभाविक है।)

१. [3]न दृष्टोऽध्वा ध्वान्ते वपुरिदमपि स्थूलमतुलं,
तुषार[4]स्पर्शेनावयवजडभावं गतवती।
प्रमीला-निद्राणे[5] सति जगति लब्धाभयपदा,
निशा मन्दं मन्दं व्रजति यदि पौषे किमधिकम्?॥

जिस महीने में रात्रि सघन अन्धकार में अपना मार्ग नहीं देख पाती और उसका यह शरीर भी स्थूल और अमित हो जाता है। शीत के स्पर्श से उसके सारे अवयव जड़ता को प्राप्त हो जाते हैं। जगत् के निद्रा में सुप्त हो जाने पर वह रात्रि भयमुक्त हो जाती है, तब उस पौष महीने में यदि रात्रि धीरे-धीरे चलती है, लम्बी होती है तो इससे अधिक आश्चर्य ही क्या?

५. अन्धकारः

(कमी होना समस्या नहीं है। जिसकी कमी दूसरों के लिए समस्या पैदा नहीं करती, वह कमी दुःखद नहीं होती।)

---

१. उपजाति।
२. छर्दिः—छज्जा।
३. शिखरिणी।
४. तुषारः—शीत, हिम।
५. प्रमीलानिद्राणः—निद्रा में सुप्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. [1]अन्धोऽसि तेन जगता न विगर्हणीय-
स्तेनैव विश्व[2]भुवनेऽसि यदन्धकार!।
दोषोऽपि नापरजनान् परिपीडयन् ही,
कारुण्यभाजनमलं सुजनाशयेषु॥

हे अन्धकार! तुम अन्धे हो, इसलिए जगत् के लिए निन्दनीय नहीं हो। इसी के कारण ही तुम सारे लोक में व्याप्त हो। जो दोष दूसरे लोगों को पीड़ित नहीं करता, वह सज्जन व्यक्तियों के हृदय में करुणा का पात्र होता है।

६. यथार्थम्

(दिन को जानने के लिए जरूरी है चक्षु और सत्य को जानने के लिए जरूरी है वीतराग चक्षु।)

१. [3]जानामि नाहं सरलं ब्रवीमि, किमन्धकारं क्व च तस्य सत्ता?।
न चास्ति दृष्टं क्व च नेति सूर्यः, तमोऽपवादं च निराचकार।।

अंधकार इन्द्र के पास आकर बोला–प्रभो! मेरी रक्षा करो।

इन्द्र–क्या समस्या है?

अंधकार–प्रभो! यह सूर्य मेरा पीछा कर रहा है। मुझे कहीं टिकने नहीं देता।

इन्द्र ने सूरज को बुलाकर कहा–तुम अंधकार का पीछा क्यों कर रहे हो? सबको अपने अस्तित्व की सुरक्षा का अधिकार है।

सूर्य बोला–स्वामिन्! मैं बहुत सरलता के साथ कह रहा हूं कि मैं जानता भी नहीं कि अंधकार कौन है और उसकी सत्ता कहां है? मैंने उसे कहीं देखा भी नहीं है। इस प्रकार सूर्य ने अंधकार की शिकायत को निरस्त कर दिया।

२. जानामि नाहं सरलं ब्रवीमि, को नाम मोहः क्व च तस्य सत्ता?।
न चास्ति दृष्टः क्व च नेति धर्मः, मोहापवादं च निराचकार।।

एक बार मोह त्रिकालदर्शी गुरु के पास जाकर बोला–गुरुदेव! आप वीतराग-धर्म पर अंकुश लगाएं और उसे बोध दें कि वह मेरे अस्तित्व पर प्रहार न करे। गुरु विद्यासम्पन्न थे। उन्होंने वीतरागधर्म से संवाद किया और कहा–तुम मोह के अस्तित्व पर प्रहार क्यों कर रहे हो?

---

१. वसन्ततिलका।
२. विश्वः–सारा।
३. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरु की यह बात सुनकर वीतरागधर्म बोला–गुरुदेव! मैं बहुत सरलता के साथ कह रहा हूं कि मैं जानता भी नहीं कि मोह कौन है और उसकी सत्ता कहां है? मैंने उसे कहीं देखा भी नहीं है। इस प्रकार वीतरागधर्म ने मोह की शिकायत को निरस्त कर दिया।

७. वाचालता

(मधुर-गंभीर शब्द आकर्षण पैदा करते हैं। मधुरभाषी को हम सुनना चाहते हैं। कटु-रूक्षभाषी का बोलना प्रिय नहीं लगता, इसलिए गर्दभ को न बोलने का संदेश देकर मैंने मौन का नया आयाम प्रस्तुत किया।)

१. [१]रे रे खर! तूष्णीं भव, दृष्टं तवककौशलम्।
दुर्लभा वाग्मिता चेत्ते, कर्णौ किं सुलभौ नृणाम्?॥

(सिसाय (हरियाणा) में मैं पंचमी समिति के लिए जा रहा था। रास्ते में सामने से गधा रेंकता हुआ आया, तब मैंने कहा–)

रे गधे! मौन हो जा। मैंने तेरे बोलने का कौशल देख लिया है। यदि तेरी यह वाचालता दुर्लभ है, तो क्या मनुष्यों के कान सुलभ हैं?

८. सज्जनो दुर्जनश्च

(सज्जन और दुर्जन का जीवन सर्वथा भिन्न नहीं होता। सज्जनता का स्वल्पांश लिए बिना दुर्जन जी नहीं सकता। हम सज्जन और दुर्जन को अनेकान्त दृष्टि से देखें, तभी सही अंकन होगा।)

१. [२]निन्दामर्हति सोऽर्थवादलुभितः श्लाघा न तं लिप्सते[३],
श्लाघ्यस्तत्र विरक्तिमानह कियत् कष्टा सतीनां गतिः!
निन्दां दुर्जनकामितां स्वविषयां ज्ञीप्सेद्[४] मुदा सज्जनो
दुष्टानां खलु जीवितं सुमहतामेकाङ्गिपक्षे स्थिरम्॥

जो प्रशंसा का लोभी है, वह निन्दा के योग्य है। श्लाघा उसके पास जाना नहीं चाहती। जो प्रशंसा के योग्य है वह प्रशंसा से विरक्त रहना चाहता है, किन्तु प्रशंसा उसी की होती है। आश्चर्य है! सतियों की गति कितनी कष्टप्रद होती है! (यहां श्लाघा सती के रूप में कल्पित है।)

सज्जन व्यक्ति दुर्जन व्यक्ति द्वारा अभिलषित अपने विषय की निन्दा को

---

१. अनुष्टुप्।
२. शार्दूलविक्रीडितम्।
३. लिप्सते (लब्धुमिच्छति)–प्राप्त करने की इच्छा।
४. ज्ञीप्सेत् (ज्ञातुमिच्छेत्)–जानने की इच्छा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसन्नता से जानना चाहता है, क्योंकि दुष्ट व्यक्तियों का जीवन महान् पुरुषों के एकांगी पक्ष पर ही स्थिर रहता है।

९. अभिमानः

(अज्ञान समस्या है, पर अभिमान उससे भी बड़ी समस्या है। अभिमान की वृत्ति जब व्यक्त होती है, तब उसके नानारूप हमारे सामने आते हैं।)

१. [1]गौरवं तु गुरोर्भावो लाघवं च निजात्मनः।
परवस्तुनि कः कुर्याद्, ममत्वं मतिमान् पुमान्॥

गौरव गुरु का भाव है। लघुता अपनी आत्मा की वस्तु है। तब कौन मतिमान् मनुष्य पर-वस्तु में ममत्व करे?

२. [2]गुरुत्वमन्तःकरणे प्रविष्टं, लघुत्वमापादयते जनानाम्।
लघुत्वमन्तःकरणे प्रविष्टं, गुरुत्वमापादयते जनेषु॥

मनुष्यों के अंतःकरण में जब गुरुत्व (बड़प्पन) प्रविष्ट होता है, तब वह उनको लघुता प्राप्त करा देता है और जब मनुष्यों के अन्तःकरण में लघुत्व (हल्कापन) का प्रवेश होता है, तब वह उनको गुरुता (महानता) की ओर ले जाता है।

३. [3]वीरोऽस्म्यहं विश्वजयीति बन्धो!, मुधाभिमानं कुरु मा स्वचित्ते।
जेतुं न शक्यः कुसुमायुधो[4]ऽपि, त्वया त्वनङ्गो[5]ऽपि घनेषुणा[6]पि॥

हे बंधो! मैं वीर हूं, मैं विश्वजयी हूं, ऐसा तुम अपने चित्त में व्यर्थ अभिमान मत करो, क्योंकि तुम लोहनिष्पन्न बाण युक्त होने पर भी फूलों का आयुध रखने वाले तथा अनंग (अंगरहित) कामदेव को भी नहीं जीत सके।

४. जानामि सोऽयं पुरुषो मनीषी, मन्ये न वात्माभ्यधिकं तथापि।
पूर्वस्य हेतुस्तदभिज्ञता च, परस्य हेतुश्च ममाभिमानः॥

मैं जानता हूं कि वह व्यक्ति मनीषी है, फिर भी मैं उसे अपने आपसे अधिक नहीं मानता। उसको मनीषी मानने का पहला हेतु है उसकी विद्वत्ता और उसे मुझसे अधिक मनीषी न मानने का दूसरा हेतु है मेरा अपना अभिमान।

---

१. अनुष्टुप्।
२. उपेन्द्रवज्रा।
३. उपजाति।
४. कुसुमायुधः—जिसके आयुध फूल ही हैं वह (कामदेव)।
५. अनङ्गः—अंगरहित (कामदेव)।
६. घनेषुः—लोहनिष्पन्न बाण वाला।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१०. तिरस्कारः

(सब लोग सम्मान चाहते हैं अपमान कोई नहीं। यह नियम वनस्पति जगत् पर भी लागू होता है।)

१. [१]अङ्गुल्यग्रेण निर्दिष्टे, कर्कारौ क्षीणता भवेत्।
क्षीणत्वं माननैयून्याद्, न केषां स्वाभिमानिनाम्।।

लोक कहावत है कि 'कुम्हडे' के फल को अंगुलि दिखाने पर वह नष्ट हो जाता है, उसका विकास नहीं होता। यह सत्य है कि सम्मान की न्यूनता होने पर किस स्वाभिमानी को ठेस नहीं पहुंचती।

११. असहनीयो हस्तक्षेपः

(मन कुछ और, वाणी कुछ और और आचरण कुछ और। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। जो स्वतन्त्र हैं, उन्हें एक रस्सी से बांधने का प्रयत्न कैसे सफल हो सकता है?)

१. [२]विचारशक्तिर्न च वाचि जाता, विचारणा नापि च जल्पनार्हा।
न प्रातिनिध्यं किल चेतनस्य, जडो विदध्यान्नियमः कृतोऽयम्॥

वाणी में विचार शक्ति नहीं होती और विचार भी बोलने में समर्थ नहीं होता। यह कृत नियम है कि जड़ चेतन का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता।

२. स्वतन्त्रतायां न करप्रसारः[३], परस्य सह्यो वपुषेत्यघोषि।
तेनैव मन्ये मननेऽभिधाने, तथा क्रियायां नहि साम्यमस्ति॥

अपनी स्वतंत्रता में दूसरों का हस्तक्षेप सह्य नहीं होता–शरीर ने यह घोषणा की, इसीलिए मैं मानता हूं कि मन, वाणी और क्रिया में कोई साम्य नहीं है।

३. [४]चेतोग्राह्यं कथमपि न वागीशता[५]मेति वक्तुं,
वाचां वाच्ये भवति मनसः सर्वथा स्वीकृतिर्न।
नान्यः कश्चित् प्रतिनिधिरपि प्रांशुभावो[६]ऽनयोश्च,
गम्यं भावं व्रजसि सुधिया[७] तत्सखे! याहि रम्यम्॥

चित्त के द्वारा ग्राह्य विषय को कहने के लिए वाणी किसी भी प्रकार से समर्थ नहीं है। वाणी के द्वारा जो वाच्य है उसमें मन की सर्वथा स्वीकृति नहीं है। इन दोनों से भी

---

१. अनुष्टुप्।
२. उपजाति।
३. करप्रसारः–हस्तक्षेप।
४. मन्दाक्रान्ता।
५. वागीशता (वाग्+ईशता)–वाणी, सामर्थ्य।
६. प्रांशुभावः–उच्चभाव वाला।
७. सुधीः–सुबुद्धि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई अन्य उच्चभाव वाला प्रतिनिधि नहीं है, इसलिए हे सखे! जो भाव लभ्य हैं उनको तू सुबुद्धि से स्वीकार कर और रम्यता की ओर प्रस्थान कर।

१२. अनतिक्रमः क्रमः

(परिवर्तन के चक्र में आश्चर्य के लिए कोई अवकाश नहीं है। प्रकाश और अप्रकाश, उदय और अस्त–इनका क्रम है। क्रम का अतिक्रमण नहीं होता।)

१. [1]अस्तंगते सवितरि प्रतिभाति चन्द्रश्चन्द्रेऽस्तमाव्रजति भाति सहस्रभानुः[2]।
चित्रं किमत्र जगतः खलु रीतिरेषा, कश्चिन्नयत्युदयमस्तमियर्त्ति कश्चित्॥

सूर्य के अस्त होने पर चन्द्रमा उदित होता है और चन्द्रमा के अस्त होने पर सूर्य उदित होता है। इसमें आश्चर्य क्या है? क्योंकि संसार की यह रीति है कि कोई उदित होता है और कोई अस्त।

२. [3]नायं चिन्त्यः शुक्तिगो[4] वारिबिन्दुः, कालं लब्ध्वा मौक्तिकं भावि रम्यम्।
दृष्ट्याऽलक्ष्ये विन्दमाने सदाभा[5], नाशा[6]शाखी[7] छिन्नमूलोऽवगम्यः॥

यह कभी चिन्तनीय नहीं होता कि सीप में गया हुआ जलबिन्दु समय पाकर सुन्दर मोती बनेगा। आभा का अस्तित्व जानने पर भी वह दृष्टि से अदृश्य होता है। उसमें आशा रूपी वृक्ष जड़ से कभी छिन्न नहीं होता, (वह कभी न कभी फलता है), ऐसा जानना चाहिए।

१३. कविदार्शनिकसङ्गमः

(कवि सत्य की अभिव्यक्ति के लिए शब्द और अर्थ की यात्रा करता है। दार्शनिक सत्य की खोज के लिए यात्रा करता है और कभी–कभी वह शब्दातीत होकर यात्रा करता है, इसलिए कवि और दार्शनिक कभी एक बिन्दु पर आकर मिल जाते हैं और कभी पृथक् हो जाते हैं।)

१. [8]आनन्दस्तव रोदनेऽपि सुकवे! मे नास्ति तद्व्याकृतौ[9],
दृष्टिर्दार्शनिकस्य संप्रवदतो जाता समस्यामयी।
किं सत्यं त्विति चिन्तया हृतमतेः क्वानन्दवार्ता तव,
तत् सत्यं मम यत्र नन्दति मनो नैका हि भू[10]रावयोः॥

---

१. वसन्ततिलका।
२. सहस्रभानुः–सूर्य।
३. शालिनी।
४. शुक्तिगः–सीपगत।
५. सदाभा (सत्+आभा)–आभा का अस्तित्व।
६. नाशा (न+आशा)।
७. शाखी–वृक्ष।
८. शार्दूलविक्रीडितम्।
९. व्याकृतिः–विश्लेषण, व्याख्या।
१०. भूः–भूमिका।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कवि से वार्तालाप करते हुए एक दार्शनिक ने कहा–'कविशेखर! तुम्हारे रोने में भी आनन्द है और मुझे आनन्द की व्याख्या करने में भी आनन्द नहीं आता। मैं जैसे-जैसे आनन्द को समझने और उसकी व्याख्या करने का प्रयास करता हूं, वैसे ही मेरी दृष्टि समस्याओं से भर जाती है।' कवि ने कहा–'हे भ्रान्तमते दार्शनिक! तुम इस बात में उलझ जाते हो कि सत्य क्या है? तुम्हारी बुद्धि उसी में लग जाती है। तुम्हारे लिए आनन्द की बात ही कहां? किन्तु मेरा अपना सूत्र यह है कि जिसमें मन आनन्दित हो जाए, वही सत्य है। इसलिए हे दार्शनिक! तुम्हारी और मेरी भूमिका एक नहीं है।'

१४. दुर्लभो विवेकः

(भविष्य को उज्ज्वल बनाने का हेतु है विवेक, पर छिछले ज्ञान की चकाचौंध में उसका मूल्यांकन नहीं हो रहा है।)

१. [1]पात्रशिष्यः पाठनीयोऽपात्रे विद्या भयंकरी।
पात्राऽपात्रविवेकोऽयं, साम्प्रतं नैव विद्यते।।

योग्य शिष्य को विद्या देनी चाहिए। अयोग्य को दी गई विद्या भय पैदा करती है। वर्तमान में योग्य और अयोग्य का विवेक दुर्लभ हो रहा है।

१५. विरलता

(भिन्न-भिन्न कर्म और उनके आधार पर होने वाली भिन्न-भिन्न प्रकार की शरीर-रचना। इसलिए सब मनुष्यों की योग्यता को एक तुला से नहीं तोला जा सकता।)

१. [2]आलोकशून्या अपि सन्ति केचिद् आलोकभीता अपि सन्ति केचित्।
आलोकमुग्धा अपि सन्ति केचिद् आलोकदक्षा विरला भवन्ति।।

कुछ लोग आलोक से शून्य होते हैं। कुछ लोग आलोक से डरे हुए होते हैं। कुछ लोग आलोक से मुग्ध-बेभान होते हैं। आलोकदक्ष-आलोक को जानने वाले और उसका सम्यग् उपयोग करने वाले लोग विरल होते हैं।

(वि. सं. २०२२ (सन् १९६५), हिन्दू महासभा, बिड़ला मन्दिर, दिल्ली)

२. जानन्ति केचिन्न च कर्तुमीशाः, कर्तुं क्षमा न च ते विदन्ति।
जानन्ति तत्त्वं प्रभवन्ति कर्तुं, ते केऽपि लोके विरला भवन्ति।।

कुछ लोग जानते हैं, किन्तु करने में समर्थ नहीं होते। कुछ लोग करने में समर्थ होते हैं, किन्तु जानते नहीं हैं। वे कौन-से विरल लोग इस लोक में हैं, जो तत्त्व को जानते भी हैं और उसका आचरण भी करते हैं।

---
१. अनुष्टुप्। २. इन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१६. स्वतन्त्रताया विवेकः

(स्वतंत्रता का अपना मूल्य है, किन्तु देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप दूसरे के अनुशासन में रहना भी बहुत अपेक्षित है।)

[1]आराधय रे आराधय, रे कुसुम! विटपिनं साधय।
स्वगतं परिपूर्णविकासं, मा दूरीभूय विराधय।।

रे कुसुम! तू वृक्ष की आराधना कर, आराधना कर। तू उसे साध! तेरे अपने भीतर परिपूर्ण विकास करने की क्षमता विद्यमान है, उसे वृक्ष से दूर होकर मत गंवा।

१. परिकर एवासि तरोरिति, सत्यं नासि स्वाधीनम्।
आलोचय परिहायैनं, किं भावीतरथा पीनम्।
शोभा त्वं भूमिरुहस्य[2], शोभा त्वं भूवलयस्य।
शोभा त्वं सद्हृदयस्य, शोभा त्वं सुरनिलयस्य।
त्वां प्राप्य कबर्यो[3] वर्याः, सुकवीनां प्रिय! सुमतिं नय॥

तू वृक्ष का ही एक अंग है, यह सत्य है। इसलिए तू स्वतंत्र नहीं है। तू चिन्तन कर, क्या तू वृक्ष को छोड़कर अन्य प्रकार से विकसित हो सकेगा? तू वृक्ष की शोभा है। तू भूमंडल की शोभा है। तू सहृदयालु व्यक्तियों की शोभा है। तू स्वर्ग की शोभा है। मुझे प्राप्त कर केशों की रचना (चोटी) सुन्दर हो जाती है। हे सुकवियों के प्रिय कुसुम! तू सुमति को प्राप्त कर।

२. मन्दं मन्दं पवनोऽयं, कर्णेजपतां[4] विदधाति।
यः सम्प्रति वारं वारं, शाखायां त्वामायाति।
किन्तु स्मर रे स्मर भावुक! दुर्गतिमेषोऽपि विधाता।
त्वां धूलिधूसरं कृत्वा, स्वयमाशु सुदूरं याता।
मौलावा'स्पदमर्हसि रे!, मा भूमिपातमभिवादय॥

मन्द-मन्द बहने वाला यह पवन चुगली कर रहा है-तेरे कानों में कुछ गुनगुना रहा है। यह अब बार-बार तेरी शाखा के पास आता है। किन्तु रे भावुक कुसुम! तू याद रख, याद रख, यह भी तेरी दुर्गति करने वाला है। तुझे यह धूलि-धूसरित करके स्वयं शीघ्र ही सुदूर चला जाएगा। रे कुसुम! तू सिर के स्थान पर धारण करने योग्य है। तू भूमि-पतन का अभिवादन मत कर।

---

१. इठलाना सब ही छोड़ो...।
२. भूमिरुहः—वृक्ष।
३. कबरी—चोटी, केशराशि।
४. कर्णेजपता-चुगली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. नायं खलु तरुरनुदारो, यो वृणुयादपराभ्युदयम्।
पूर्णावयवे त्वयि जाते, स्वयमेष विधातानुनयम्।
माली स्वाङ्गुलिमाधुन्वन्, स्वायत्तं त्वामिह कृत्वा।
मालापरिणतिमाधाय, महतामपि हृदयं नीत्वा।
अमृतत्वं नेष्यति नूनं, पन्थानममुञ्च सभाजय[1]॥

यह वृक्ष बहुत उदार नहीं है, जो दूसरे के अभ्युदय का वरण कर ले। तुम्हारा पूर्ण विकास हो जाने पर यह वृक्ष स्वयं मुझे स्वतंत्र कर देगा। माली अपनी अंगुलियों को चलाता हुआ तुझे (वृक्ष से) उतार कर, अपने अधीन कर माला के रूप में परिणत कर महान् व्यक्तियों के गले में पहनाकर तुझे निश्चय ही अमरता दे देगा। इसलिए हे कुसुम! तू इस मार्ग से प्रीति लगा, वृक्ष से नाता मत तोड़।

१७. स्वतन्त्रभारतभारती

(स्वतंत्रता का मूल्य है–गुणात्मक विकास। हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता के प्रथम वर्ष में आयोजित अखिल भारतीय संस्कृत काव्य प्रतियोगिता के लिए लिखा गया गीत। इसमें व्यक्ति और राष्ट्र दोनों के परस्पर संबंध की सहज और सरल व्याख्या है।)

१. [2]स्वस्य शासनमभूल्लुप्तपरशासने, भारते भारतीयैरभीष्टम्।
विस्मृतां तात्त्विकीं प्राणदां संस्कृतिं, लब्धुमपि केन चेतः प्रकृष्टम्॥

भारत में दूसरों का शासन लुप्त हुआ और भारतवासियों द्वारा अभिप्रेत स्वशासन प्राप्त हुआ। किन्तु विस्मृत, तात्त्विक और संजीवनी तुल्य भारतीय संस्कृति को पुनः प्राप्त करने के लिए किसने अपने मन को उत्साहित किया?

२. कोऽपि नेच्छतितमां शासनं स्वात्मनि, नात्मजयमिन्द्रियाण्यपि यतानि।
लालसापरवशाः स्वार्थसंयतदृशो नैव पश्यन्ति ऋषिभाषितानि॥

कोई भी अपने पर अनुशासन और आत्मविजय करना नहीं चाहता। इन्द्रियां भी संयत नहीं हैं। सब मनुष्य लालसा के वशीभूत हैं और सबकी दृष्टि स्वार्थपरक है। वे ऋषि-वाणी पर ध्यान ही नहीं देते।

३. वाचि गौरवकथा पूर्वजानां गुरुरगुरुरास्थापि नो कार्यकाले।
स्थितिरिदानीन्तनी हन्त! जटिलाऽखिला, शान्तिराम्नापि[3] संकल्पजाले॥

---

१. सभाजय (सभाजण्–प्रीतिसेवनयोः)–प्रीति करना, सेवन करना।
२. बुध्यतां बुध्यतां.....।
३. आम्ना–परम्परा से प्राप्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्यों की वाणी में अपने पूवजों की महान् गौरवगाथा है, किन्तु कार्यकाल में उस पर किंचित् भी आस्था नहीं है। खेद है! आज की सारी स्थिति जटिल है। संकल्प-जाल में शान्ति भी परम्परा से प्राप्त है।

४. नेतृतारङ्गभूर्दृष्टिमाकर्षति, चेतनाव्यापि मिथ्यामहत्त्वम्।
जीवनं भोगलिप्साशतव्याकुलं, स्मर्यते कैरहो! त्यागतत्त्वम्?॥

नेतृत्व की रंगभूमि सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रही है। झूठा बड़प्पन व्यक्ति की चेतना में व्याप्त है। जीवन सैकड़ों भोग लिप्साओं से व्यग्र बना हुआ है। आश्चर्य है कि ऐसी स्थिति में त्याग को कौन याद करे?

५. शुष्कतर्कैरलं ताडिता तर्जिता, लुप्तशीलाह विश्वासवीथिः।
रीतिराचारगा शस्यते न क्वचिद्, घुणजनव्याहता साधुनीतिः॥

विश्वास का मार्ग शुष्क तर्कों से ताड़ित और तर्जित होकर लुप्तशील वाला हो गया है। आचारयुक्त रीति कहीं प्रशंसित नहीं है। घुण की भांति लोग श्रेष्ठ नीति को नष्ट कर रहे हैं।

६. हन्त! मृगतृष्णया मोहितं जगदिदं, नापवादस्ततो भारतोऽपि।
कोऽपि नाध्यात्मिको गुरुरभूदीदृशः, किं न तत्त्वं विलोकेत सोऽपि॥

खेद है कि यह जगत् मृगतृष्णा से मोहित हो रहा है। इसका अपवाद भारतवर्ष भी नहीं है। किसी भी समय भारत जैसा आध्यात्मिक गुरु देश कोई नहीं हुआ। इस तत्त्व को मनुष्य क्यों नहीं देखता?

७. संग्रहः स्वल्पको वर्धतां संयमः, प्रोच्चजीवनमनेनैव भूयात्।
तत्स्वतन्त्रा स्थितिर्भाविनी वस्तुतो भद्रमध्यात्मवादस्य भूयात्॥

संग्रह कम हो और संयम बढ़े, इससे ही जीवन उन्नत हो सकता है। तब ही वस्तुतः स्वतन्त्रता की स्थिति होगी और अध्यात्मवाद फलेगा-फूलेगा।

१८. नैतिकताया मूल्यानि

(अच्छे समाज के लिए आवश्यक है-नैतिकता का अनुबंध। नैतिकताशून्य विकास अवनति के बीजों की उगाई करता रहता है।)

१. [१]विलासबहुला वृत्तिः, अल्पायश्च बहुव्ययः।
अपेक्षाः कृत्रिमा यत्र, तत्र नैतिकता कुतः?॥

१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वहां नैतिकता कैसे होगी–

१. जहां मनुष्य की वृत्ति विलासप्रधान है।
२. जहां आय अल्प है और व्यय अधिक है।
३. जहां कृत्रिम अपेक्षाओं की भरमार है।

२. सीमामासादितो भोगः, व्ययश्चायानुसारतः।
अपेक्षाः सीमिता यत्र, तत्राऽनैतिकता कुतः?॥

वहां अनैतिकता कैसे होगी–

१. जहां भोग सीमित है।
२. जहां आय के अनुसार व्यय होता है।
३. जहां अपेक्षाएं सीमित हैं।

३. कर्त्तव्यविमुखं यत्र, राज्यतन्त्रं प्रविद्यते।
वणिजश्छलसंयुक्ताः, तत्र नैतिकता कुतः?॥

वहां नैतिकता कैसे होगी–

१. जहां राज्यतंत्र अपने कर्तव्य से विमुख रहता है–कर्तव्य के प्रति जागरूक नहीं होता।

२. जहां व्यापारीवर्ग प्रवञ्चना के साथ व्यापार करता है–व्यापार में धोखाधड़ी करता है।

४. कर्त्तव्यप्रवणं यत्र, राज्यतन्त्रं प्रविद्यते।
वणिजो न्याय्यसंतुष्टाः, तत्राऽनैतिकता कुतः?॥

वहां अनैतिकता कैसे होगी–

१. जहां राज्यतन्त्र कर्तव्यप्रवण–कर्तव्य के प्रति जागरूक होता है।

२. जहां व्यापारीवर्ग न्याय से प्राप्त धन से संतुष्ट होता है।

(वि. सं. २०२१, सावन शुक्ला ६ (१३ अगस्त, १९६४), तीस हजारी कोर्ट, दिल्ली)

१९. नीतिमान् पुरुषः

(नैतिकता के तेरह सूत्रों का निर्देश है। इनका अनुशीलन करने वाला व्यक्ति ही चरित्रनिष्ठ हो सकता है।)

१. अभयं मृदुता सत्यमार्जवं करुणा धृतिः।
अनासक्तिः स्वावलम्बः स्वशासनं सहिष्णुता॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. कर्त्तव्यनिष्ठता व्यक्तिगतसंग्रहसंयमः।
प्रामाणिकत्वमस्मिन् स्युर्नीतिमानुच्यते नरः।।

अभय, मृदुता, सत्य, ऋजुता, करुणा, धृति, अनासक्ति, स्वावलम्बन, आत्मानुशासन, सहिष्णुता, कर्तव्यनिष्ठा, व्यक्तिगत संग्रह का संयम, प्रामाणिकता–ये गुण जिस पुरुष में होते हैं, वह नीतिमान् पुरुष कहलाता है।

२०. लोकतन्त्रस्य चिरजीवितायाः सूत्राणि

(लोकतंत्र शासन–प्रणालियों में सर्वश्रेष्ठ प्रणाली है। यदि उसके अन्तस् में छिपी हुई गुणात्मकता का अवमूल्यन न हो।)

१. [1]आत्मानुशासनं यत्र, प्रामाणिकत्वमाशये।
सापेक्षता सहिष्णुत्वं, व्यक्तेः स्वतन्त्रता स्फुटम्।।

२. तत्रोदयं व्रजत्याशु लोकतन्त्रश्च पुष्यति।
फलान्यस्योपजायन्ते, व्यवहारस्पृशामपि।।

वहां लोकतंत्र शीघ्र ही विकसित होता है, पुष्ट होता है, जहां प्रवर्तमान है–

१. आत्मानुशासन।

२. चिन्तन और व्यवहार में प्रामाणिकता।

३. सापेक्षता–अधिकारी वर्ग और धनी वर्ग गरीब लोगों की समस्या सुलझाने में निरपेक्ष नहीं होते।

४. सहिष्णुता।

५. व्यक्तिगत स्वतन्त्रता।

इन पांच सूत्रों के विकास से व्यवहार जगत् में काम करने वाले लोगों को लोकतन्त्र की सफलता का अनुभव होता है।

३. विधीनां पालनं यत्र, कर्त्तव्यस्य प्रपालनम्।
स्वयमुत्तरदायित्वं, विश्वासोऽपि परस्परम्।।

४. समानोऽवसरः पुंसां, लब्धो भवति सादरम्।
अन्यथा लोकतन्त्रस्य, विच्छेदो जायते ध्रुवम्।।

लोकतन्त्र की चिरजीविता के पांच सूत्र हैं–

१. विधि–कानून व्यवस्था का पालन।

---

१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. कर्त्तव्य का सम्यक् पालन।
३. स्वयं के उत्तरदायित्व का अनुभव।
४. परस्पर विश्वास।
५. सबको सम्मानपूर्वक विकास का समान अवसर।

इन पांच सूत्रों को विकसित किए बिना लोकतंत्र असफल हो जाता है।

(वि. सं. २०२१, आसोज कृष्णा १२ (२ अक्टूबर, १९६४), कान्स्टीट्यूशन क्लब, दिल्ली)

२१. कः कर्तुं नेतृत्वम्?

(नेतृत्व के लिए जरूरी है–अर्हता का विकास। उसके बिना नेतृत्व सफल और सार्थक नहीं हो सकता। प्रस्तुत श्लोक में नेतृत्व की अर्हता के कुछ मानक निर्दिष्ट हैं–)

१. [1]सम्यग्दृष्टिर्युगद्रष्टा, समन्वयविधायकः।
नियन्ता निजभावानां, नेतृत्वं कर्तुमर्हति।।

नेतृत्व वह व्यक्ति कर सकता है–

१. जो सम्यग्दृष्टि–सकारात्मक सोच रखता है।
२. जो युगद्रष्टा होता है।
३. जो समन्वय करने वाला होता है।
४. जो अपने आवेश को नियंत्रण में रखता है।

(वि. सं. २०६२ (सन् २००६), धुरी (पंजाब))

२२ः श्रद्धेयः पुरुषः

(केवल अपना हित साधने वाला अच्छा व्यक्ति हो सकता है, पर श्रद्धेय नहीं बन सकता। श्रद्धेय वही बनता है जो दूसरों का हित करने के लिए अपनी शक्ति का नियोजन करता है।)

१. यः समस्याः समाधत्ते, दुःखान्यन्तं नयत्यलम्।
सैकोऽपि पुरुषो मान्यः, किमन्यैः कोटिशो जनैः।।

जो समस्याओं का समाधान करता है और दुःखों का अन्त करता है, वह एक पुरुष भी मान्य है। उन दूसरे करोड़ों लोगों से क्या, जो न समस्या का समाधान करते हैं और न दुःखों का अंत।

२. चैतन्यं समभावश्च, यतो विकासमाश्रयेत्।
नोत्कर्षो नापि हीनत्वं, स वन्द्यो मानवो महान्।।

---

१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसमें चैतन्य और समभाव विकसित रहते हैं, जिसमें न उत्कर्ष होता है और न हीनता होती है, वह पुरुष वन्दनीय और महान् होता है।

३. आह्वानानि युगीनानि, प्रश्नानध्यात्मभूमिषु।
वृण्वन् चिनोति पन्थानं, स श्रद्धेयो जनो महान्॥

वही पुरुष श्रद्धेय और महान् होता है, जो युग की चुनौतियों तथा अध्यात्मभूमि में होने वाले प्रश्नों का वरण करता हुआ अपने पथ का चयन करता है।

२३. मनोबलपञ्चविंशिका

(जैन साधु-साध्वियां पादविहारी होते हैं। उनके लिए वाहनों से यात्रा करना निषिद्ध है, इसलिए विदेश यात्रा उनके लिए असंभव है। जैन धर्म के सिद्धांत और भगवान् महावीर की वाणी विश्व के सब अंचलों में पहुंचे, यह आचार्य तुलसी का एक स्वप्न था। उस स्वप्न की मानस प्रतिमा बनी समण-श्रेणी। समणश्रेणी की स्थापना के लगभग दो वर्ष पश्चात् समणियों की विदेश यात्रा का प्रारंभ हुआ।

सर्वप्रथम विदेश यात्रा के लिए समणी नियोजिका स्मितप्रज्ञा (वर्तमान में मुख्यनियोजिका साध्वी विश्रुतविभा) और समणी मधुरप्रज्ञा का चयन किया गया। दोनों की आचारनिष्ठा, संघनिष्ठा, गंभीरता, दायित्वनिर्वाह की क्षमता पर विश्वास था।

विदेश यात्रा से पूर्व आचार्य तुलसी ने उनको प्रशिक्षित किया। मैंने (उस समय के युवाचार्य महाप्रज्ञ) भी यात्रा के लिए कुछ उपयोगी सूत्र बतलाए।

वि. सं. २०४० (सन् १९८३) का चतुर्मास बालोतरा। समणियों की विदेश यात्रा की तैयारी। इस नए अभिक्रम के लिए दृढ़ संकल्प, मंगलभावना और शुभ भविष्य की संकल्पना के लिए आचार्यवर और मैंने लगभग एक घंटा ध्यान किया। दोनों समणियां भी ध्यान की मुद्रा में हमारे सामने उपस्थित थीं। मंगल मुहूर्त, मंगल वातावरण और मंगल आशीर्वाद के साथ दोनों समणियों ने मंगल पाठ सुनकर संघबल और परम उल्लास के साथ वहां से प्रस्थान किया। दोनों समणियां विदेश पहुंच गईं। कार्यक्रम का शुभारम्भ हो गया। एक दिन मैं आचार्यवर के उपपात में बैठा था। चिन्तन चल रहा था कि समणियां सुदूर प्रदेश में गई हैं, विदेश यात्रा का प्रथम अवसर है। वहां का वातावरण पदार्थवादी और सुविधावादी है। दोनों समणियां संयमनिष्ठ हैं, फिर भी वे उस छाया से मुक्त रह सकें, उनका मनोबल बढ़ता रहे, इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक सप्ताह उन्हें कुछ संबल मिलता रहे। चिन्तन की इस पृष्ठभूमि पर 'मनोबल पञ्चविंशिका' का निर्माण हुआ। प्रति सप्ताह तीन-तीन श्लोक प्रेषित किए जाते रहे। यह उनके लिए शक्तिशाली सुरक्षा कवच बना। प्रस्तुत हैं वे श्लोक-)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. [1]रागद्वेषौ विजेतव्यौ, अस्मिन्नेव हि जन्मनि।
सुदृढं धारणां धेहि, लक्ष्यं सुनिश्चितं कुरु॥

निश्चय करो–इस जन्म में ही राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करनी है। लक्ष्य को सुनिश्चित करो और उसकी पूर्ति के लिए धारणा को मजबूत बनाओ।

हमारे सामने दो मार्ग हैं–

१. लौकिक मार्ग–सामाजिक जीवन-यात्रा का मार्ग।

२. लोकोत्तर मार्ग–आध्यात्मिक विकास-यात्रा का मार्ग।

लौकिक मार्ग में साथ जुड़े हुए हैं–राग और द्वेष तथा लोकोत्तर मार्ग का पथदर्शन कर रही है–वीतरागता। तुम वीतरागता की साधना में संलग्न हो, इसलिए सबसे पहले राग-द्वेष को उपशान्त करने का प्रयत्न करो।

धार्मिक व्यक्ति परलोक में जितना विश्वास करते हैं, उतना वर्तमान जीवन में नहीं करते। स्वर्ग की जितनी चिन्ता है, उतनी वर्तमान जीवन को स्वर्गीय बनाने की नहीं।

राग-द्वेष पर विजय पाना है, अगले जन्म में नहीं, इसी जन्म में पाना है।

राग-द्वेष जीतना, यह एक लक्ष्य है, ध्येय के प्रति चित्त का स्थिर-बन्ध होना धारणा है। राग-द्वेष विजय के लिए दृढ़ निश्चय करना संकल्प है। लक्ष्य, धारणा और संकल्प–इन तीनों का समन्वय सफलता का राजपथ है।

२. आत्मज्ञानमिदं पुण्यमात्मा लब्धोऽस्ति तैर्जनैः।
रागद्वेषौ जितौ यैश्च, तेन तत्रोद्यमं कुरु॥

आत्मा का यह ज्ञान पुण्यस्वरूप है। आत्मा की उपलब्धि उन व्यक्तियों को होती है, जिन्होंने राग-द्वेष को जीता है, उन पर अपना अनुशासन स्थापित किया है। इसलिए राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करने का उद्यम करो।

राग-द्वेष पर विजय पाना पवित्र आत्मज्ञान है। जिसका मन राग और द्वेष की तरंग से तरंगित नहीं होता, वही आत्म-तत्त्व का द्रष्टा होता है। दूसरा व्यक्ति, जो राग-द्वेषजयी नहीं है, वह उस तत्त्व का साक्षात्कार नहीं करता। इसलिए कहा गया है–

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम्।
सः पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं, तत् तत्त्वं नेतरो जनः[2]॥

पदार्थ-ज्ञान से जुड़ी हुई समस्या है–आसक्ति। आत्म-ज्ञान अनासक्ति से जुड़ा हुआ है, इसलिए यह पवित्र है।

आत्मज्ञान के द्वारा आत्मा उपलब्ध हो सकती है। आत्मज्ञान उसी व्यक्ति को उपलब्ध होता है, जो राग-द्वेष पर विजय पा लेता है। अतः राग-द्वेष पर विजय पाने के लिए प्रयत्न करो।

---

१. अनुष्टुप्।
२. समाधिशतक, श्लो. ३५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. इदमेव महत् सत्यमिदमेव महत् तपः।
रागद्वेषजयेनाशु, मनोबलं प्रवर्धते॥

राग-द्वेष पर विजय पाना ही महान् सत्य है, राग-द्वेष पर विजय पाना ही महान् तप है। जो व्यक्ति राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करता है, उसका मनोबल त्वरित बढता है।

राग और द्वेष मन को कमजोर बनाते हैं। राग-द्वेष युक्त मानसिक चिन्तन यथार्थ नहीं होता तथा राग-द्वेष युक्त संकल्प सुदृढ़ नहीं होता। मनोबल उस व्यक्ति का बढता है, जिसका चिन्तन यथार्थ हो और जिसका संकल्प सुदृढ हो।

४. रागद्वेषौ कर्मबीजमिति गीतं महात्मभिः।
वीतरागपदं पूतमकर्मेति प्रकीर्तितम्॥

राग और द्वेष कर्म के बीज हैं-'रागो य दोसो वि य कम्मबीयं'[१]-यह महान् आत्माओं की अनुभूत वाणी है। वीतराग का पद पवित्र है। उसे अकर्म कहा गया है। वीतरागता के क्षण में कर्म का बंध नहीं होता।

वीतराग मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है-उत्तराध्ययन में इसका उल्लेख मिलता है-'स वीयरागो कयसव्वकिच्चो......।'[२] वह केवल शरीर धारण के लिए अपेक्षित कर्म करता है। आकांक्षा प्रेरित कोई कर्म नहीं करता, इसलिए वह अकर्म है।

५. 'वीतरागा' भवामीति, पौनःपुन्यं मनः कुरु।
'वीतरागा' भवामीति, भावनां सततं सृज॥

'मैं वीतराग बनूं'-बार-बार इस प्रकार के मानस का निर्माण करो। 'मैं वीतराग बनूं'-ऐसी भावना करो, निरन्तर ऐसा अभ्यास करो।

राग-द्वेष पर विजय पाने का लक्ष्य वीतराग बनने का लक्ष्य है। वीतराग की भूमिका पर आरोहण करने के लिए आवश्यक है तदनुकूल मानसिकता का निर्माण।

इसका दूसरा चरण है-भावना का प्रयोग। जो साधक रागात्मक और द्वेषात्मक परिस्थिति के क्षणों में वीतराग चेतना में रहने का अभ्यास करता है, बार-बार उसकी अनुभूति करता है, वह राग-द्वेष के बंधन से मुक्त होकर वीतराग जगत् में प्रविष्ट हो जाता है।

६. यथा यथा वीतरागभावो मनसि वर्तते।
तथा तथा स्वभावेन, मनोबलं प्रवर्धते॥

जैसे-जैसे वीतरागभाव मन को प्रभावित करता है, वैसे-वैसे सहज ही मनोबल बढता है।

---

१. उत्तराध्ययन ३२/७। २. उत्तराध्ययन ३२/१०८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग की अपनी समस्याएं हैं और द्वेष की अपनी समस्याएं हैं। ये सब भावनात्मक और मानसिक तनाव पैदा करती हैं। उससे मनोबल कमजोर हो जाता है। जो साधक रागात्मक और द्वेषात्मक समस्याओं का समाधान पा लेता है, उसका मनोबल बढता है।

७. इन्द्रियाणां प्रमत्तानां, यावान् यावानसंयमः।
तावती मनसो हानिः, सत्यमेतत् सनातनम्॥

प्रमाद से आसक्त बनी हुई इन्द्रियों का जितना-जितना असंयम होता है, उतनी-उतनी मन की हानि होती है, मन की चंचलता बढती है, मनोबल कमजोर होता है, यह शाश्वत सत्य है।

अंतर् जगत् में राग और द्वेष सक्रिय रहते हैं। इस अवस्था में इन्द्रियों का बाह्य जगत् के साथ सम्पर्क स्थापित होता है और आसक्ति का चक्र बन जाता है। वह चक्र मांग पैदा करता है। जैसे-जैसे मांग बढती है, वैसे-वैसे मन की चंचलता बढती जाती है और वह चंचलता मन को कमजोर बना देती है।

८. इन्द्रियैर्मथिताः केचित्, सद्वीर्यविकला जनाः।
निराशाश्च निरानन्दा जीवन्ति विपदाकुलाः॥

कुछ लोग इन्द्रियों से मथित होते हैं, इन्द्रियों के वशवर्ती होते हैं, इसलिए वे पराक्रम से शून्य हो जाते हैं। वे जीवन से निराश, आनन्दरहित और विपत्ति से आकुल बने हुए जीते हैं।

जिन व्यक्तियों में वीतराग चेतना का विकास नहीं होता, वे इन्द्रियों से पराजित हो जाते हैं। जब इन्द्रियों के विषय विकार बन जाते हैं, तब व्यक्ति अनेक समस्याओं से संक्रान्त हो जाता है। जैसे वीर्य-शक्ति की कमी हो जाती है, आशा, जो विकास के लिए ज्योतिपथ का काम करती है, वह मंद पड़ जाती है। प्राकृतिक आनन्द पर्दे के पीछे चला जाता है। जिस जीवन में शक्ति नहीं है, आशा का संचार नहीं है, आनन्द नहीं है, वह विपदा से आक्रान्त हो जाता है, इसलिए आवश्यक है इन्द्रिय-विजय।

९. वारं वारं ततो ध्यानं, स्थापयेन्द्रियसंयमे।
इन्द्रियेषु विरक्तेषु, मनोबलं प्रवर्धते॥

इसलिए इन्द्रियसंयम में बार-बार ध्यान को स्थापित करो। इन्द्रियों के विरक्त हो जाने पर मनोबल बढ़ता है।

इन्द्रिय की दो अवस्थाएं हैं-१. अनुरक्ति २. विरक्ति।

राग और द्वेष का आवेश+इन्द्रियां+पदार्थ=इन्द्रियों की अनुरक्त अवस्था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग और द्वेष का अनावेश+इन्द्रियां+पदार्थ=इन्द्रियों की विरक्त अवस्था।

आंख का संयम इसलिए करो कि खुली (असंयत) आंख रूप का ग्रहण कर उसकी प्रतिक्रिया राग-द्वेष तक ले जाती है, इससे उनका अनावेश आवेश में बदल जाता है, अनुरक्ति बढ़ जाती है। संयम की अवस्था में सारी क्रिया विपरीत हो जाती है।

१०. इच्छा काचन नान्यास्ति, वाञ्छामीन्द्रियसंयमम्।
प्रभो! तव प्रसादेन, सफलोऽस्तु मनोरथः।।

तुम प्रार्थना करो, अपना आत्मनिवेदन करो-मैं इन्द्रिय-संयम की इच्छा करती हूं। इसके अतिरिक्त मेरी कोई इच्छा नहीं है। हे प्रभो! तुम्हारे प्रसाद से मेरा मनोरथ सफल हो।

प्रार्थना के अनेक स्वर हैं-कुछ नए, कुछ पुराने। वे बहुत मूल्यवान् हैं। मूल्यों का ह्रास हो रहा है, इसलिए आज नए मूल्यों को स्थापित करना जरूरी है। इन्द्रियों की उच्छृंखलता के युग में इन्द्रियसंयम का मूल्य सबसे ज्यादा है। इसलिए प्रार्थना अमूल्य है-मैं इन्द्रियसंयम में सफल बनूं।

११. इच्छा काचन नान्यास्ति, परिष्कारं च प्रार्थये।
प्रभो! तव प्रसादेन, वृत्तयः स्युः परिष्कृताः।।

मैं वृत्तिपरिष्कार की इच्छा करती हूं, इसके अतिरिक्त मेरी कोई इच्छा नहीं है। तुम्हारे प्रसाद से मेरी वृत्तियां परिष्कृत हों।

वृत्ति का पोषण और वृत्ति का परिष्कार-ये दो आयाम हैं। राग-द्वेष की तीव्र अवस्था में व्यक्ति वृत्तियों को पोषण देता है, इन्द्रियों द्वारा विषयों का ग्रहण कर उन्हें विकार की कक्षा में ले जाता है।

दूसरा आयाम है वृत्ति का परिष्कार। जिस व्यक्ति के मन में पदार्थातीत सुखानुभूति की भावना है, वह इन्द्रियसंयम के द्वारा वृत्तियों का परिष्कार करना चाहता है।' तुम समणी हो, तुम्हारी वृत्ति-परिष्कार की इच्छा रहे, दूसरी कोई इच्छा न रहे।

१२. वृत्तीनां च परिष्कारप्रयोगः सफलो भवेत्।
भावनायां भावितायां, मनोबलं प्रवर्धते॥

भावना करो-'मेरी वृत्तियों के परिष्कार का प्रयोग सफल हो'-इस भावना से भावित होने पर मनोबल बढता है।

दृढ निश्चय के बिना परिष्कार का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इसलिए परिष्कार के प्रयोग की सफलता चाहने वाले व्यक्ति को 'मेरी वृत्तियों का परिष्कार अथवा रूपान्तरण हो' यह संकल्प अंतर्मन (Sub-consicious mind) तक पहुंचा देना चाहिए। संकल्प जब वहां पहुंचता है तो परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावना से मनोबल बढता है–पुनरावृत्ति और अभ्यास से मनोबल बढता है। इस रहस्य को जानने वाला सचमुच लक्ष्य की पूर्ति में सफल हो जाता है।

१३. गृहीते सुतरां श्वासे, क्षणं हि श्वाससंयमः।
तथैव मुक्ते प्रश्वासे, क्षणं हि श्वाससंयमः॥

पहले विधिपूर्वक लम्बा श्वास लो। कुछ क्षणों के लिए श्वास का संयम (अन्तःकुंभक) करो। फिर उसी प्रकार विधिपूर्वक श्वास का लम्बा रेचन करो। रेचन के पश्चात् कुछ क्षणों के लिए श्वास का संयम (बाह्यकुंभक) करो।

१४. श्वासप्रश्वासयोरेवमन्तराले कृते सति।
इन्द्रियाणि स्थिराणि स्युः, चाञ्चल्यं न्यूनतां व्रजेत्॥

श्वास और प्रश्वास के अन्तराल में जो श्वास का संयम किया जाता है, उससे इन्द्रियां स्थिर होती हैं और चंचलता कम होती है।

प्रस्तुत श्लोक में इन्द्रियों की आसक्ति और मन की चंचलता को कम करने का उपाय बतलाया गया है।

१५. श्वाससंयम एषोऽस्ति, सहजश्चिरकालिकः।
एवमभ्यस्यतो नित्यं, मनोबलं प्रवर्धते॥

कुछ क्षणों तक सुविधापूर्वक–जितने क्षणों तक श्वास का संयम कर सको, उतने क्षणों तक श्वास का संयम करो, यह श्वाससंयम की सहज पद्धति है। इस पद्धति के अनुसार लम्बे समय तक श्वास का संयम किया जा सकता है। इस प्रकार प्रतिदिन श्वाससंयम का अभ्यास करने वाले व्यक्ति का मनोबल बढता है।

१६. विषयग्रहणाभ्यासः, सहजः खलु वर्तते।
किञ्चित् किञ्चिन्निरोधेन, प्रत्याहारः प्रजायते॥

इन्द्रियां अपने-अपने विषयों को ग्रहण करती हैं। यह अभ्यास सहज है। कुछ समय के लिए विषय-ग्रहण का बार-बार निरोध किया जाए–अश्रवण, अदर्शन और अनाहार अथवा आहार के प्रति अनासक्ति का प्रयोग किया जाए तो प्रत्याहार होता है अथवा प्रतिसंलीनता होती है। इससे विषयासक्ति का चक्र टूटने लग जाता है।

१७. इष्टे लीनं यदा चित्तं, प्राणायामे प्रसाधिते।
भावना भाविता सम्यग्, अनुभवः प्रकाशते॥

जब चित्त इष्ट में लीन होता है तो प्राणायाम सिद्ध होता है। भावना का सम्यक् प्रयोग किया जाता है, उस अवस्था में अनुभव प्रकट होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्यात्म के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण होता है–अनुभव का प्रकाश। प्रकाश की तीन शर्तें हैं–

१. जब चित्त इष्ट में लीन होता है।
२. जब प्राणायाम सिद्ध हो जाता है।
३. जब भावना का स्थिर अभ्यास हो जाता है।

१८. इन्द्रियाण्यभिगच्छन्ति, चित्तमब्धिमिवापगाः।
ज्ञाते चित्तबले सम्यग्, मनोबलं प्रवर्धते॥

इन्द्रियां चित्त की ओर वैसे ही जाती हैं, जैसे नदियां समुद्र की ओर। चित्त की शक्ति को सम्यक् जान लेने पर मनोबल बढता है।

हम इन्द्रियों की शक्ति से परिचित हैं, किन्तु चित्त की शक्ति से परिचित नहीं हैं। चित्त इन्द्रियों पर नियंत्रण करने वाला है। हम उसकी शक्ति का अध्ययन कर इन्द्रियों की आसक्ति से होने वाली समस्या का समाधान खोज सकते हैं।

१९. आनन्दं सततं यस्य, चित्तं स्पृशति निर्मलम्।
न भयस्य विकल्पो हि, बाधते तद्वरेण्यताम्॥

जिसका निर्मल चित्त आनन्द का सतत स्पर्श करता है, उस चित्त की रमणीयता को भय का विकल्प बाधित नहीं करता।

तात्पर्यार्थ यह है कि भोगासक्ति से मलिन बना हुआ चित्त सहज आनन्द को सोख लेता है। त्याग की चेतना से निर्मल बना हुआ चित्त उस आनन्द की अनुभूति कराता है, जिसकी अनुभूति भोगासक्त चित्त कभी नहीं कर सकता।

२०. विषयेष्वनुरक्तो यः, स शोकमभिगच्छति।
विषयेषु विरक्तो हि, शोकं तरति मानवः॥

जो व्यक्ति विषयों में अनुरक्त होता है, वह शोक का अनुभव करता है। जो व्यक्ति विषयों से विरक्त होता है, वह शोक का पार पा जाता है।

शोक भावनात्मक तनाव है। व्यक्ति या वस्तु के वियोग में शोक का भाव होता है। इससे मन उदास, खिन्न और बेचैन हो जाता है। इस समस्या का समाधान है विरक्ति अथवा अनासक्ति।

२१. अशोकमभयं पश्यच्चित्तं भवति तादृशम्।
अमन्दानन्दचित्तस्य, मनोबलं प्रवर्धते॥

अशोक को देखता हुआ चित्त शोकरहित और अभय को देखता हुआ चित्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भयमुक्त हो जाता है। इससे चित्त अमंद (प्रबल) आनन्द की अनुभूति करता है। अमंद आनन्द की अवस्था में मनोबल बढता है।

२२. सुखासनसमासीना, कायोत्सर्गपरायणा।
प्रत्याहारविधिं ज्ञात्वा, कुर्यादात्मनिरीक्षणम्॥

सर्वप्रथम सुखासन में बैठो–जिस आसन में लम्बे समय तक सुखपूर्वक बैठ सको, उस आसन का चुनाव करो।

सुखासन की मुद्रा में कायोत्सर्ग–शरीर के प्रत्येक अवयव को शिथिल करो।

कायोत्सर्ग की मुद्रा में प्रत्याहार का प्रयोग करो। उसकी विधि यह है–पांचों इन्द्रियों के पांचों विषयों से इन्द्रिय–चेतना को हटाकर उसे निर्विषय बनाओ।

चेतना की स्थिर, शांत और स्वच्छ अवस्था में आत्मनिरीक्षण का अभ्यास करो।

२३. ये ये भावा: समायान्ति, शोभनाश्चाप्यशोभना:।
द्रष्टव्या: समभावेन, विचारा अपि तद्विधा:॥

चेतना के स्तर पर जो जो भाव आते हैं, उन्हें देखने का अभ्यास करो। वे अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी हो सकते हैं–दोनों के प्रति समभाव रखें। अच्छे भाव विनम्रता बढ़ा देते हैं और बुरे भाव अच्छाई की दिशा में प्रस्थान करा देते हैं।

इसी प्रकार पवित्र और मलिन–दोनों प्रकार के विचारों को भी समभाव से देखने का अभ्यास करो।

२४. एवमात्मनिरीक्षासौ, परिचाययति स्वकम्।
अस्याभ्यासस्य योगेन, मनोबलं प्रवर्धते॥

उपर्युक्त श्लोक में जो द्रष्टा–भाव की पद्धति बतलाई है, उसके आधार पर आत्मनिरीक्षण करने वाला अपने आप से परिचित हो जाता है। (किसी भी कार्य की सफलता आकस्मिक नहीं होती। सफ़लता के लिए आवश्यक है अभ्यास।) जो अपने आप से परिचित होने का अभ्यास करता है, उसका मनोबल बढ़ता है।

२५. समणी स्मितप्रज्ञाऽसौ, मधुरप्रज्ञया सह।
गता विदेशयात्रायां, सुस्थिता लंदने वरे॥

समणी स्मितप्रज्ञा (वर्तमान में मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभा) और साथ में समणी मधुरप्रज्ञा ने विदेश यात्रा के लिए प्रस्थान किया और लंदन में अपना सुखद प्रवास किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२६. आचार्यस्येङ्गितं प्राप्य, मनोबलविवृद्धये।
महाप्रज्ञेन संदृब्धा, पुण्यासौ पञ्चविंशिका॥

'दो समणियां प्रथम बार विदेश यात्रा के लिए गई हैं। वहां का वातावरण बड़ा मोहक और लुभावना है। इस स्थिति में उनका मनोबल बढ़ता रहे, इसलिए तुम उन्हें प्रेरक संदेश देते रहो'–आचार्य तुलसी के इस इङ्गित को ध्यान में रखकर मैंने (उस समय के युवाचार्य महाप्रज्ञ ने) पवित्र पञ्चविंशिका की रचना की। (इसके तीन-तीन श्लोक प्रति सप्ताह लंदन पहुंचते रहे।)

(वि. सं. २०४० (सन् १९८३), बालोतरा चतुर्मास)

□ □ □

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीयः उच्छ्वासः

अध्यात्मम्

१. अनुभवसप्तकम्

(अनुभव पढ़ा नहीं जाता और पढ़ाया भी नहीं जाता। वह ज्ञान का ऐसा बीज है, जो जल का सिंचन प्राप्त करते-करते फसल में बदल जाता है।)

१. [१]अस्मिन् दीर्घे पथि विहरता यत्र लब्धं तमिस्रं,
तत्रालोकः प्रसृतिमगमन्नाभिचक्रेऽनुदृष्टे।
चित्ते स्थैर्यं गतवति ममाऽनाहते चक्रदेशे,
सर्वे प्राच्या जटिलगतयो ग्रन्थयो मोक्षमापुः।।

जीवन के इस दीर्घ पथ पर चलते हुए मुझे जहां अन्धकार मिला, वहीं नाभिचक्र को देखने के पश्चात् आलोक मिला। अनाहत चक्र के भाग पर चित्त की स्थिरता होने पर मेरी सारी पुरानी और जटिल स्थिति वाली ग्रन्थियां खुल गईं।

२. द्रष्टुं यत्नो न खलु विहितो दर्पणेऽस्मिन् स्थितीना-
मेतद् दृश्याकृतिषु बहुषु भ्रान्तिमध्यात्म[२]मेति।
आत्मादर्शे स्फुरति मनसश्चेष्टितं पुद्गलानां,
कर्तृत्वे हि प्रतिपलमसौ भ्रान्तिरेवानुभूता।।

स्थितियों के इस दर्पण में मैंने देखने का यत्न नहीं किया, किन्तु बहुत सारे इन दृश्यरूपों को देखकर आत्मा में भ्रांति हो गई। मन की चेष्टा आत्मा के दर्पण में स्फुरित होती है और पुद्गलों के कर्तृत्व में प्रतिपल भ्रांति होती है, ऐसा मैंने अनुभव किया है।

३. श्रद्धा बालाऽभवदनुगता यैश्च कैश्चापि तर्कै-
स्तारुण्ये सा नयनपथगा दूरतः शङ्कितानाम्।
वृद्धा जाता प्रवरयुवभिर्नेक्षितोपेक्षयेव,
लोकैः सर्वैः पटुपटुतरैर्व्यत्ययस्तैरकारि।।

---

१. मन्दाक्रान्ता।
२. अध्यात्मम्-आत्मा में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रद्धा जब बालिका थी, तब वह जिन किन्हीं तर्कों के पीछे चलती थी। जब वह तरुणी हुई, तब आशंकित तर्क उसे दूर से देखने लगे। जब वह वृद्धा हो गई, तब प्रवर तर्क-युवकों ने उसे देखा ही नहीं, उपेक्षा से टाल दिया। इस प्रकार पटु, पटुतर और पटुतम मनुष्य का तर्क के साथ उससे विपरीत व्यवहार होता है–पटु मनुष्य का तर्क वृद्ध, पटुतर का युवा और पटुतम का बाल होता है।

४. उप्तं येन भ्रमवृतधिया बीजमुच्चैर्घृणाया-
स्तस्यच्छाया परिणतविषा प्राक् तमेवादुनोति।
प्रेम्णो बीजं प्रकृतिपुलकं पार्श्वगेषूप्यमानं,
स्वस्मै दत्तेऽमृतमयफलं तादृगेवाऽपरस्मै॥

भ्रम से आवृत मति वाले जिस व्यक्ति ने घृणा के अधिक बीज बोए, उनसे उगने वाले वृक्षों की विषैली छाया पहले उसी ही व्यक्ति को पीडित करती है। अपने पास रहने वाले व्यक्तियों में, जिसने प्रकृति-पुलक प्रेम का बीज बोया, वह स्वयं को भी अमृत का फल देता है तो दूसरों को भी वैसा ही फल देता है।

५. यो वा वृद्धानवगणयति प्राप्तकार्यावरोधान्,
सोऽवज्ञातं सृजति निजकं वार्धकं दृष्टपार्श्वः।
आज्ञावज्ञां सृजति सुगुरोर्योऽनुजानां पुरस्तात्,
सोऽज्ञानेन स्ववचनमहो! मूल्यहीनं करोति॥

जो व्यक्ति कार्य करने में अक्षम वृद्धजनों की अवगणना करता है, वह एक ही पार्श्व को देखने वाला है। ऐसा कर वह अपने ही वृद्धत्व की अवगणना करता है। जो अपने ही अनुजों के समक्ष सुगुरुजनों की आज्ञा की अवज्ञा करता है, आश्चर्य है कि वह अपने अज्ञान से अपने वचनों को मूल्यहीन बनाता है।

६. संघे तिष्ठन्नपि वसति यश्चैककः सोऽस्ति तुष्टः,
एकस्तिष्ठन्नपि परिवृतः कल्पनाभिः स रुष्टः।
व्यापिप्रेम्णा क्वचिदपि वसन्नेककः संघगोऽपि,
प्रेम्णोऽभावे विजनवसतिश्चापि नैकत्वमेति॥

जो संघ में रहता हुआ भी अकेला रहता है, वह प्रसन्न रहता है। किन्तु जो अकेला रहता हुआ भी कल्पनाओं से चारों ओर घिरा रहता है, वह सदा रुष्ट रहता है। व्यापक प्रेम से रहने वाला अकेला व्यक्ति, चाहे कहीं भी रहे, वह समूह में ही है और प्रेम के अभाव में एकान्त में रहने वाला व्यक्ति भी अकेला नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७. आत्मा तत्र प्रणिहितधिया स्याद् बुधेनार्पणीयो,
यस्मिन् भावो भवति सुतरां नैव प्रत्यर्पणस्य।
भावाभावे भवति मनसोऽपि प्रसादो विषादो,
वृक्षं कुर्वन् क्वचन हसितं नार्पणार्हो वसन्तः।।

जहां कभी प्रत्यर्पण का भाव ही उत्पन्न न हो वहीं समर्पित बुद्धि वाले विद्वान् को अपनी आत्मा का समर्पण करना चाहिए। क्योंकि प्रत्यर्पण की प्राप्ति में मन की प्रसन्नता और उसके अभाव में मन का विषाद होता है। वसन्त वृक्ष को प्रफुल्लित करता हुआ कभी अर्पणार्ह नहीं होता।

(वि. सं. २०१९, पौष शुक्ला ३ (२९ दिसम्बर, १९६२), रींछेड़ (मेवाड़)

२. अध्यात्मम्

(हम जिसे एक मानते हैं वह वास्तव में दो है–एक बाहर का जगत् और एक भीतर का जगत्। भीतर के जगत् की यात्रा करने वाला एक नई दुनिया का अनुभव करता है।)

१. [1]ज्ञानेन सद्ध्यानमुपासनीयं, ध्यानेन सज्ज्ञानमुपासनीयम्।
सज्ज्ञानसद्ध्यानबलं च लब्ध्वा, प्रामाण्यमाप्तः पुरुषो जगत्याम्।।

ज्ञान के द्वारा प्रशस्त ध्यान की उपासना करनी चाहिए और ध्यान के द्वारा प्रशस्त ज्ञान की उपासना करनी चाहिए। जो पुरुष प्रशस्त ज्ञान और प्रशस्त ध्यान के बल को प्राप्त कर लेता है, वह इस संसार में प्रमाण पुरुष बन जाता है।

२. [2]बुद्धेर्बलं यद्यपि नास्ति हेयं, ज्ञेयप्रसिद्ध्यै प्रकृतं बलिष्ठम्।
तथापि नैवास्ति सुखोपलब्ध्यै, नात्मानुभूतेर्यदि तत्र योगः॥

यद्यपि बुद्धि का बल हेय–छोड़ने योग्य नहीं है। वह ज्ञेय वस्तु को जानने और उसकी व्याख्या करने के लिए प्रसिद्ध है और वह स्वाभाविक रूप से बलशाली है। फिर भी यदि उसके साथ आत्मानुभूति का योग नहीं बनता तो वह बुद्धिबल सुख की उपलब्धि का हेतु नहीं हो सकता।

३. नानास्थितिर्योगवियोगजन्या, संसारचक्रे समुपस्थिता स्यात्।
अध्यात्मचित्तं तदिदं सहेत, न सोढुमन्यत् प्रभविष्णु किञ्चित्।।

संसारचक्र में संयोग और वियोग से होने वाली नाना स्थितियां समुपस्थित होती

---

१. इन्द्रवज्रा। २. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। उसे अध्यात्म से अनुप्राणित चित्त सहन कर लेता है, दूसरा (पदार्थ से अनुप्राणित चित्त) उसे किञ्चित् भी सहन नहीं कर सकता।

४. यस्यान्तरङ्गं विमलं विभाति, नान्यायभावोऽस्ति परेषु कोऽपि।
स एव धन्यः स च धर्मसेवी, ज्ञानी स एवेति न संशयोऽत्र।।

जिसकी अन्तश्चेतना पवित्र होती है, जिसके मन में दूसरों के प्रति किसी भी प्रकार का अन्याय का भाव नहीं होता, वही व्यक्ति धन्य है, वही धर्म की आराधना करने वाला है, वही ज्ञानी है, इसमें कोई संशय नहीं है।

(वि. सं. २०३६, चैत्र सुदी ६ (२ अप्रैल, १९७९), दिल्ली)

३. ध्यानम्

(वस्तु को देखने के लिए दो आंखों की जरूरत है। एक ज्ञान की आंख और एक ध्यान की आंख। जो ज्ञान की आंख से नहीं देखा जाता, वह ध्यान की आंख से नहीं देखा जा सकता।)

पदे पदे निधानानि, योजने रसकूपिकाः।
भाग्यहीना न पश्यन्ति, बहुरत्ना वसुन्धरा।।

१. [1]पदे पदे सदानन्दः, शक्तिस्रोतः पदे पदे।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, बहुरत्नं शरीरकम्।।

संस्कृत का एक सूक्त है—पग-पग पर निधान है। योजन-योजन पर रसकूपिका है। यह पृथ्वी बहुरत्ना है, किन्तु भाग्यहीन व्यक्ति उसे देख नहीं पाते।

इस सूक्त का अनुसरण कर कहा जा सकता है—पग-पग पर सदा आनन्द है, पग-पग पर शक्तिस्रोत है, यह शरीर बहुरत्न वाला है, किन्तु ध्यानहीन व्यक्ति उसे देख नहीं पाते।

२. मार्गं यत्र गतो गच्छेत्, मनःशान्तिं मनोबलम्।
ऐकाग्र्यं कौशलं कार्ये, प्रसादं चेतसस्तथा।।

ध्यान मुझे क्या देगा? ध्यान से मिलता है मार्ग, जिस पर चलने वाला लक्ष्य तक पहुंच जाता है। ध्यान से मिलते हैं—मन की शान्ति, मनोबल, एकाग्रता, कार्य में कौशल और चित्त की प्रसन्नता।

---

१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. चंचलता : स्थिरता

(वातावरण की नीरवता मन को प्रभावित करती है। वातावरण शांत मन शांत, वातावरण अशांत मन अशांत।)

१. [१]सति कोलाहले पुंसामाकुलं जायते मनः।
तदऽभावे स्थिरं सापि, चिन्तने स्तिमिता भवेत्।।

कोलाहल के वातावरण में मनुष्यों का मन विक्षुब्ध हो जाता है, एकाग्र नहीं हो पाता। उसके अभाव में अर्थात् शान्त वातावरण में वह स्थिर–एकाग्र हो जाता है और चिन्तन में भी वह स्थिरता हो जाती है।

५. सुखदुःखम्

(मान्यता की सचाई है कि कोई दूसरा सुख या दुःख देता है। वास्तविक सचाई यह है कि सुख और दुःख का संवेदन अपने भीतर है।)

१. सुखदो दुःखदश्चेति, व्यवंहारो हि देहिनाम्।
वास्तवे सुखःदुःखानां, दाता कोऽपि न विद्यते।।

व्यवहार जगत् में मनुष्य अनुभव करता है कि अमुक व्यक्ति सुख देने वाला है, अमुक दुःख देने वाला है। किन्तु वास्तव में सुख–दुःख देने वाला कोई भी नहीं होता। (अपनी आत्मा ही सुख और दुःख की देने वाली है।)

६. कायसिद्धिः

(काया से सब लोग काम लेते हैं, पर काया के रहस्य को वे ही जान सकते हैं जो इसे सिद्ध कर लेते हैं।)

१. प्राणे संसाधिते सम्यक्, कायसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्।
श्वासे संसाधिते सम्यक् ,कायसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्॥

कायसिद्धि के दो साधन हैं। पहला साधन है प्राण। जो साधक विधिवत् प्राण की साधना करता है, उसके कायसिद्धि हो जाती है। दूसरा साधन है श्वास। जो साधक विधिवत् श्वास की साधना करता है, उसके कायसिद्धि हो जाती है।

---

१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७. समस्या समाधानञ्च

(वर्तमान युग समस्याबहुल युग है। सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दृष्टिकोण के द्वारा समस्याओं को समाहित किया जा सकता है।)

१. [1]समस्यापि समाधानं, सज्ज्ञानं दर्शनं यदि।
समाधानं समस्या स्याद्, यद्यज्ञानमदर्शनम्।।

यदि सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन होता है, तो समस्या भी समाधान बन जाती है। यदि सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन का अभाव होता है तो समाधान भी समस्या बन जाता है।

० शारीरिकसमस्या

१. अनित्यं रोगमापन्नं, वार्धक्यं कष्टमाध्यमम्।
बुभुक्षा च पिपासा च, शैत्यं ग्रैष्म्यं च बाधते।।

शरीर अनित्य है, रोगग्रस्त होता है, बुढापा कष्ट का माध्यम है। कभी भूख, कभी प्यास, कभी सर्दी और कभी गर्मी–ये सब बाधाएं हैं।

० मानसिकसमस्या

१. चञ्चलं च प्रभावाप्तं, प्रतिक्रियासमन्वितम्।
आवेगाक्रान्तमारक्तं, प्रियाप्रियविभावितम्।।

मन चंचल है। वह वातावरण और परिस्थिति से प्रभावित होता है तथा उसमें प्रतिक्रिया होती रहती है। वह क्रोध आदि आवेगों से आक्रान्त होता रहता है। वह पदार्थों के रंग में रंग जाता है, प्रियता और अप्रियता की भावना से भावित होता रहता है।

० वैचारिकसमस्या

१. नाना वादा विवादाश्च, एकाङ्गिधारणाग्रहाः।
स्मृतेश्च प्रतिबद्धत्वं, दर्शनावरणं तथा।।

समाज में अनेक प्रकार के वाद-विवाद चल रहे हैं, इसका कारण है–एकांगी धारणा का आग्रह। दूसरा कारण है–स्मृति की प्रतिबद्धता और तीसरा कारण है–दर्शनावरण कर्म का विपाक।

---

१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

० पारिवारिकसमस्या

१. नानारुचिश्च संघर्षः, स्वत्वसीमा तथादृता।
अनाश्वासो हितानैक्यं, समस्या पारिवारिकी।।

परिवार के सदस्यों की रुचि में नानात्व है—वह भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है, संघर्ष है, मेरेपन की सीमा मान्य हो रही है, जीवन की सुरक्षा का आश्वासन नहीं है, हित भी एक प्रकार का नहीं है—ये परिवार की समस्याएं हैं।

० आर्थिकसमस्या

१. इच्छानन्त्यं तथा भोगोपभोगासंयमो भवेत्।
संग्रहः कर्मणोऽभावः समस्या सम्मतार्थिकी।।

इच्छाओं की अनन्तता, भोगोपभोग का असंयम, असीम संग्रह और अकर्मण्यता—ये आर्थिक समस्याएं हैं।

८. वर्तमानस्य शोधनम्

(अतीत का भी मूल्य है और भविष्य का भी मूल्य है। किन्तु सर्वाधिक मूल्य वर्तमान का है। इसका हेतु यह है कि वर्तमान ही अतीत बनता है और वर्तमान ही भविष्य।)

१. [1]धर्मस्याधार आस्तिक्यं, तत्कालत्रयसंगतिः।
अतीतशोधनं भाविनिर्माणं वर्तमानतः॥

धर्म का आधार है—आस्तिकता। वह त्रैकालिक है, तीनों कालों में उपयोगी है। वर्तमान से अतीत का शोधन और भविष्य का निर्माण होता है।

२. कषोपलो वर्तमानं, भविष्यस्य यतो भवेत्।
तेन शोध्यं वर्तमानं, शुद्धे सर्वं हि शुद्ध्यति॥

वर्तमान भविष्य के लिए कसौटी बनता है, इसलिए वर्तमान की शुद्धि के लिए प्रयत्न होना चाहिए। वर्तमान की शुद्धि होने पर सब कुछ शुद्ध हो जाता है।

९. धर्मस्य साफल्यम्

(सफलता का अंतिम सूत्र है—त्याग। उसकी शक्ति अंतिम शक्ति है।)

१. राज्यशक्तिरर्थशक्तिः, द्वे अपि व्यर्थतां गते।
तत्र धर्मस्य साफल्यं, त्यागो धर्मं समाश्रितः॥

---

१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन प्रमुख शक्तियां हैं–१. राज्य की शक्ति, २. अर्थ की शक्ति, ३. धर्म की शक्ति। जहां राज्य-शक्ति और अर्थ-शक्ति–ये दोनों विफल हो जाती हैं, वहां धर्म की शक्ति सफल होती है, क्योंकि धर्म का आधार है त्याग। (त्याग की शक्ति सबसे बड़ी है।)

२. धर्मस्य ऋजुता सारं, प्रकाशं तमसो नयेत्।
अधर्मे गोपनीयत्वं, प्रकाशान्नयते तमः॥

धर्म का सार है–ऋजुता। वह मनुष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाती है। अधर्म में गोपनीयता होती है। वह प्रकाश से अंधकार की ओर ले जाती है।

१०. कलहस्य कारणं निवारणञ्च

(नानात्व या विविधता स्वाभाविक है। जिसे उसका बोध नहीं होता वह भेद के क्षण को कलह का क्षण बना देता है। जिसे उसका बोध होता है वह कलह के क्षण को शांति के क्षण में बदल देता है।)

१. [1]चिन्ताभेदः रुचिभेद, आग्रहः स्वार्थभावना।
अज्ञानं वस्तुवृत्तीनां, कलहस्य च हेतवः॥

कलह के पांच हेतु हैं–१. चिन्तन-भेद, २. रुचि-भेद , ३. आग्रह, ४. स्वार्थभावना, ५. वास्तविकता का अज्ञान।

२. चिन्तात्यागः रुचित्याग आग्रहस्वार्थयोस्तथा।
प्रयत्नो वस्तुबोधाय, उपायास्तन्निवारणे॥

कलह-निवारण के पांच उपाय हैं–
१. अपने चिन्तन को सर्वोपरि न मानना।
२. अपनी रुचि को प्रधानता न देना।
३. अपने आग्रह को छोड़ना।
४. अपने स्वार्थ को छोड़ना।
५. वास्तविकता को जानने का यत्न करना।

११. विनाशहेतवः

(इस दुनिया में विनाश और निर्माण की प्रक्रिया चलती रहती है। विनाश के हेतुओं का ज्ञान करने वाला निर्माण की दिशा में आगे बढ सकता है।)

---
१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. केचिदज्ञानता नष्टाः, केचिन्नष्टाः प्रमादतः।
केचिज्ज्ञानावलेपेन, केचिन्नष्टैश्च नाशिताः॥

विनाश के चार हेतु हैं–
१. कुछ लोग अज्ञान से नष्ट होते हैं।
२. कुछ लोग प्रमाद से नष्ट होते हैं।
३. कुछ लोग ज्ञान के अहंकार से नष्ट होते हैं।
४. कुछ लोग नष्ट लोगों के द्वारा नष्ट किए जाते हैं।

१२. सुखिजीवनम्

(सुख और दुःख का एक चक्र है। जो व्यक्ति सुख के रहस्य को जान लेता है वह सुख से जीता है और दुःख को सुख में बदल देता है।)

१. [1]अशुद्धाः स्मृतयो नष्टाः, शुद्धसंकल्पवानहम्।
चिन्तनं निर्मलं भाति, सुखं जीवाम्यहं ततः॥

मेरी अशुद्ध स्मृतियां नष्ट हो गई हैं, मेरा संकल्प शुद्ध है, मेरा चिन्तन निर्मल है, इसलिए मैं सुख से जीता हूं।

२. अतीतं शोधितं सम्यग्, भविष्यं सुप्रकाशितम्।
निर्मलं वर्तमानं मे, सुखं जीवाम्यहं ततः॥

मैंने अतीत का भलीभांति शोधन कर लिया है, मेरा भविष्य प्रकाशमय है, मेरा वर्तमान पवित्र है, इसलिए मैं सुख से जीता हूं।

३. तिष्ठामि वर्तमानेऽहं, वर्तमाने व्रजाम्यहम्।
जीवामि वर्तमानेऽहं सुखं जीवाम्यहं ततः॥

मैं वर्तमान में रहता हूं, मेरी गति वर्तमान में होती है, मैं वर्तमान में जीता हूं, इसलिए मैं सुख से जीता हूं।

(वि. सं. २०३६, आसोज कृष्णा ११ (१६ सितम्बर, १९७९), लुधियाना)

१३. दीक्षा

(अर्हत् धर्म की दीक्षा अर्हता को बढा देती है। उसके द्वारा अव्यक्त को व्यक्त करने में व्यक्ति सफल हो जाता है।)

१. अज्ञातं ज्ञातुमिच्छामि, गूढं कर्तुमनावृतम्।
अभूतो हि बुभूषामि, दीक्षा सेयं ममार्हती॥

---

१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरी दीक्षा आर्हती दीक्षा (अर्हत् परम्परा की दीक्षा) है, इसलिए मैं अज्ञात को जानना चाहता हूं, गूढ रहस्य अथवा आवृत को अनावृत करना चाहता हूं। मैं जो नहीं हूं, वह होना चाहता हूं।

१४. विश्वासः

(विश्वास करना चाहिए, पर उस पर जो विश्वास के लिए योग्य हो। चंचल व्यक्ति या वस्तु विश्वास के योग्य नहीं होती।)

१. [1]विश्वासं कुरुषे कुरुष्व चिदि[2] तं बाढं न वा विद्युति,
विश्वासं कुरुषे कुरुष्व मनसः शान्तौ न वा वार्दले।
विश्वासं कुरुषे कुरुष्व सुतरां हस्ते न वा वैभवे,
स्थैर्ये विश्वसनं हितं स्थिरतरं तच्चञ्चले चञ्चलम्॥

यदि तू विश्वास करता है तो चैतन्य में गहरा विश्वास कर, विद्युत् में नहीं।
यदि तू विश्वास करता है तो मानसिक शांति में विश्वास कर, बादल में नहीं।
यदि तू विश्वास करता है तो सदा हाथ–श्रम में विश्वास कर, वैभव में नहीं।
स्थैर्य में विश्वास करना हितकर और स्थिरतर होता है, चंचल में किया गया विश्वास भी चंचल होता है।

(वि. सं. २०२२ (स. १९६५), हिन्दू महासभा, बिडला मन्दिर, दिल्ली)

१५. आत्मान्वेषणम्

(हमारे दो जगत हैं–बाह्य जगत् और अन्तर् जगत्। बाह्य जगत् में यात्रा करने वाले का चिन्तन अलग प्रकार का होता है और अन्तर् जगत् की यात्रा करने वाले का अलग। बाह्य जगत् में यात्रा करने वाला व्यक्ति उसे प्राप्त नहीं कर सकता, जो भीतर की यात्रा करने वाले को प्राप्त होता है।)

१. [3]त्वामन्वेषयितुं गतो बहिरहं त्वं नागमो दृश्यता-
मन्तःस्थोऽभवमाशु मामुपगतः प्राप्तश्चिरं विस्मयम्।
स्थूलोऽहं त्वमभूर्लघुर्लघुरहं त्वं स्थूलतामाश्रितो
देवेत्थं शिशुना शिशुत्वमुपयन्[4] स्वस्थाविरं[5] नावसि[6]॥

---

१. शार्दूलविक्रीडितम्।
२. चित्–चैतन्य।
३. शार्दूलविक्रीडितम्।
४. उपयन्–प्राप्त करता हुआ।
५. स्थाविरम्–स्थविरता।
६. अवसि (अव–रक्षणगति..वृद्धिषु)–रक्षा करना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देव! मैं तुम्हें ढूंढने के लिए बाहर गया, किन्तु तुम वहां नहीं मिले। मैंने जब अन्तःस्थ को झांका और तुम मुझे शीघ्र ही प्राप्त हो गए। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मैं स्थूल हुआ तो तुम सूक्ष्म हो गए और जब मैं सूक्ष्म हुआ तो तुम स्थूल हो गए। देव! तुम बच्चे के साथ इस प्रकार बचपन करते हुए अपने स्थविरत्व की रक्षा नहीं कर सकोगे?

२. प्राप्तो नो परमेश्वरः कथमिदं लब्धो न मार्गो मया,
लब्धः किन्न गुरुर्न लब्ध उचितं मार्गं दिशेद् यः शुभम्।
लब्धः किन्न मयैषणा नहि कृता किं नो कृता भावना,
नोत्पन्ना न कथं न चोत्तमजनैः सम्पर्कमायातवान्॥

'मुझे परमेश्वर नहीं मिला।'
'क्यों, यह कैसे?'
'क्योंकि मुझे मार्ग प्राप्त नहीं हुआ।'
'मार्ग क्यों नहीं मिला?'
'ऐसा गुरु नहीं मिला, जो मुझे उपयुक्त और कल्याणकारी मार्ग दिखा सके।'
'गुरु क्यों नहीं मिला?'
'मैंने उसकी खोज ही नहीं की।'
'खोज क्यों नहीं की?'
'मेरे में ऐसी भावना ही उत्पन्न नहीं हुई।'
'भावना उत्पन्न क्यों नहीं हुई।'
'क्योंकि मैं कभी उत्तम व्यक्तियों के सम्पर्क में आया ही नहीं।'

१६. आत्मतुला

(द्वन्द्वात्मक जगत् में समस्याएं अनन्त हैं। मैं एक हूं, मेरी आत्मा एक है। इस एकत्व की अनुभूति के जगत् में समस्याएं सान्त हैं। यदि मनुष्य आत्मानुभूति के क्रीडांगन में क्रीड़ा करे तो उसे वह सुखानुभूति हो सकती है, जिसकी तुलना किसी क्रीडाप्रांगण से नहीं हो सकती।)

१. [1]कषायाद् दैहिका दोषा, जायन्ते बहवो नृणाम्।
रक्तचापश्च हृद्रोग, उदरव्रणकादयः॥

प्राणियों के रक्तचाप, हृदयरोग, उदरव्रण आदि अनेक शारीरिक रोग कषायों के कारण उत्पन्न होते हैं।

१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. तोलयत स्वतुलया, मिमीध्वं[१] निजमानतः।
मा भवथ क्रीडनकं, परहस्तप्रताडितम्॥

तुम अपने आपको अपनी तुला से तोलो और अपने माप से मापो। तुम दूसरों के हाथ से प्रताड़ित होने वाले खिलौने मत बनो।

३. शठे शाठ्यं समाचर्य, स्वयं दुःखं समर्जितम्।
न दुःखी जायते शत्रुर्दुःखं प्राप्नोति स स्वयम्॥

धूर्त्त के प्रति धूर्तता का आचरण कर व्यक्ति स्वयं दुःख का अर्जन करता है। उसका प्रतिपक्षी दुःखी नहीं होता, किन्तु वह स्वयं दुःख पाता है।

१७. कोऽयं सत्सङ्गः?

(संगति के दो पक्ष होते हैं–शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष। प्रस्तुत कृति में संगति के कृष्णपक्ष पर व्यंग्यात्मक टिप्पणियां की गई हैं। उपकार पर अपकार की रेखाएं इसी दिशा की ओर इंगित करती हैं।)

१. [२]सा संगतिर्याऽधमता वियुक्ता, स सज्जनो यश्च गुणी गुणज्ञः।
स एव लाभश्च तयोर्यतः स्यादात्मोन्नतिः संततवृद्धिशीला॥

संगति वही है, जो अधमता से रहित हो। सज्जन वही है, जो गुणी और गुणज्ञ हो। दोनों (संगति और सज्जन) की प्राप्ति का लाभ यही है कि जिससे आत्मा निरन्तर उन्नति की ओर बढे।

२. यद्यप्यमुष्मिन् भुवने भवन्ति, धाराधराद्याः सुजनोपमार्हाः।
तथापि तत्पाश्चिम[३]मेक्ष्य कार्यं, वयं प्रशंसां न विदध्महेऽत्र॥

यद्यपि इस लोक में बादल आदि सज्जन की उपमा पाने के योग्य हैं, फिर भी उनके अंतिम कार्य (अमृततुल्य पानी को ऊषर भूमि में बरसाना) को देखकर हम उनकी प्रशंसा नहीं कर सकते।

३. संगृह्य पानीयममान[४]मब्धेः, क्षारं पयोमुग्[५] मधुरं विधाय।
यदूषरे तत्सलिलं सुधाभं, क्षिपेत् किमौचित्यमिहाम्बुदस्य?॥

---

१. मिमीध्वम् (माङ्क्–मानशब्दयोः, तुबादि मध्यमपुरुष, बहुवचन)–मापना, शब्द करना।
२. उपजाति।
३. पाश्चिमम् (पश्चिमे भवम्)–अन्त में होने वाला।
४. अमानम्–अपरिमित।
५. पयोमुक्–बादल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेघ समुद्र के खारे पानी को अपरिमित मात्रा में ग्रहण कर उसको मीठा करता है और उस अमृततुल्य पानी को ऊषर भूमि पर बरसाता है, तो क्या वह बादल के लिए उचित है?

४. यत्कज्जलानां सुषमां तनोति, चक्षुः समीपं समुपागतानाम्।
तत्कालिमानं न हि हर्त्तुमीशं, किमत्र गेया विदुषास्य कीर्त्तिः?॥

आंख अपने पास आए हुए कज्जल की भी शोभा बढ़ा देती है, किन्तु उसकी कालिमा को नहीं मिटा सकती। क्या विद्वान् व्यक्ति के लिए उसकी कीर्ति गेय है?

५. गले विलग्नं फणिनं गिरीश[1]श्चकार पक्षिप्रभु[2]णाप्यजेयम्।
परं विषं नापजहार तस्य, सत्सङ्गतेजो हि किमेतदेव?॥

शंकर ने अपने गले में लिपटे सर्प को इतना बलशाली बना दिया कि वह गरुड़ से भी अजेय हो गया, किन्तु उसके विष का अपहरण नहीं किया। क्या सत्संग का यही तेज है?

६. तुच्छं पयोदच्युतमम्बुबिन्दुं, शुक्तिर्महार्घ्यां कुरुते सुमुक्ताम्।
तां त्रोटयित्वा लभतेऽर्घ्यतां सा, हा! हाऽधमानां किमियं प्रवृत्तिः?॥

सीपी बादल से बरसी हुई पानी की छोटी-सी बूंद को धारण कर उसे मूल्यवान् मोती बना देती है। किन्तु मोती बनी हुई वह बूंद उस सीपी को तोड़कर ही मूल्य पाती है। हा! हा! अधम (तुच्छ) व्यक्तियों की यह कैसी प्रवृत्ति?

७. प्रफुल्लितं पद्ममहर्मणे[3]रुचा[4], प्रादुष्करोत्येव रवेः प्रभावम्।
जन्मास्पदं शोषयते हि तस्य, प्रशंसनीया किमियं प्रवृत्तिः?॥

सूर्य की किरणों से विकसित कमल सूर्य के प्रभाव का ख्यापन करता है, किन्तु सूर्य कमल को जन्म देने वाले कीचड़ का शोषण करता है। क्या यह प्रवृत्ति प्रशंसनीय है?

८. तुच्छोऽपि तन्तुः किल पुष्पयुक्तस्तिष्ठेद् वराङ्गे[5] वसुधाधवानाम्[6]।
मणीवके[7] निष्क्रियतां प्रयाते, भ्राम्येत् स नूनं चरणे जनानाम्॥

फूलों में पिरोया हुआ तुच्छ धागा भी राजाओं के मस्तक पर शोभित होता है,

---

१. गिरीशः-शंकर।
२. पक्षिप्रभुः-गरुड़।
३. अहर्मणिः-सूर्य।
४. रुक्-किरण।
५. वराङ्गम्-मस्तक।
६. वसुधाधवः-राजा।
७. मणीवकम्-फूल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु जब फूल मुरझा जाते हैं, तब वही धागा (कुम्हलाए हुए फूलों के साथ) लोगों के पैरों में ठोकरें खाता रहता है।

९. **वनस्थली चन्दनशाखियुक्ता, तुच्छातितुच्छापि सुगंधिता स्यात्।**
श्रीखण्डवृक्षे[1] सहसा विनष्टे, न गन्धलेशोऽपि विभाति तस्याम्॥

जिस वनस्थली में चन्दन के वृक्ष हैं, वह चाहे अत्यन्त छोटी भी क्यों न हो, सुगंधित होगी। चन्दन के वृक्षों के सहसा नष्ट होने पर उस वनस्थली में गंध का नामोनिशान भी नहीं मिलता।

(वि. सं. २००२, पौष (जनवरी, १९४६), मोमासर)

१८. प्रवृत्तिः निवृत्तिश्च

(व्यक्ति प्रवृत्ति का मूल्य जानता है, निवृत्ति का मूल्य नहीं जानता। इस प्रवृत्तिबहुल युग में जरूरी है निवृत्ति का मूल्यांकन।)

१. **[2]रागद्वेषौ प्रवृत्तिः स्यात्, निवृत्तिस्तन्निषेधनम्।**
तौ च बाह्यार्थसम्बद्धौ, तस्मात्तांश्च परित्यजेत्॥

राग-द्वेष ही प्रवृत्ति है। उनका निषेध करना निवृत्ति है। राग-द्वेष-दोनों बाहरी-पदार्थ से संबद्ध है। अतः उनका परित्याग करना चाहिए।

१९. सत्सङ्गाष्टकम्

(प्रकृति की विचित्रता के कारण दो कोटि के लोग होते हैं-कल्याण प्रकृति वाले और क्षुद्र प्रकृति वाले। कल्याण प्रकृति वाले मनुष्य प्रियता को गौण और हित को प्रधान मानते हैं। क्षुद्र प्रकृति वाले मनुष्य प्रियता को मुख्य और हित को गौण मानते हैं। भारतीय संस्कृति, चिन्तन और जीवनप्रणाली में सत्संग का बहुत मूल्य रहा है।)

१. **श्रीमत्तुलसीरामाणां, यशसः सङ्गमादऽहो!।**
सद्यो धवलितैर्जिग्ये, [3]हस्तिमल्लो हि दिग्गजैः॥

आश्चर्य है कि श्रीसम्पन्न तुलसीराम के यश के संयोग से सभी दिग्गज इतने सफेद हो गए कि उन्होंने अपनी धवलिमा से ऐरावत हाथी को भी जीत लिया।

---

१. श्रीखण्डवृक्षः-चन्दनवृक्ष।
२. अनुष्टुप्।
३. हस्तिमल्लः-ऐरावत हाथी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. [1]घासोऽपि गोः सङ्गमतः पयः स्याद्, घृतं क्रमात्तच्च पुरातनं तु।
हर्तुं रुजः प्रत्नतमाः[2] प्रभूष्णु[3], किं स्तौमि सत्सङ्गमहाप्रभावम् ?॥

गाय के संग से घास भी दूध बन जाता है और फिर वह क्रम से घी के रूप में परिवर्तित हो जाता है। घी जितना पुराना होता है, उतना ही वह जीर्ण रोगों को नष्ट करने में समर्थ होता है। सत्संग के महान् प्रभाव की मैं क्या स्तुति करूं?

३. गुञ्जा नृणामंह्नितले भ्रमन्त्यस्तुलाप्रसंगात् तुलनां सृजन्ति।
चामीकरस्या[4]तनुमूल्यभाजः, किं स्तौमि सत्सङ्गमहाप्रभावम्?॥

घुंघचियां मनुष्यों के पैरों के नीचे पड़ी रुलती रहती हैं, किन्तु वे ही तराजू के प्रसंग को पाकर बहुमूल्य सोने को तोलने में प्रयुक्त होती हैं। सत्संग के महान् प्रभाव की मैं क्या स्तुति करूं?

४. [5]अगण्य एवैक उदस्य बिन्दुः, [6]सरस्वतः सङ्गमुपेत्य सद्यः।
नयेत रम्यामह सिन्धुसंज्ञां, किं स्तौमि सत्सङ्गमहाप्रभावम् ?॥

पानी की एक नगण्य बून्द समुद्र का संयोग पाकर तत्काल सिन्धु की रम्य संज्ञा को प्राप्त हो जाती है। सत्संग के महान् प्रभाव की मैं क्या स्तुति करूं?

५. [7]भूधातुरास्ते ननु वर्तनायां, प्रस्योपसर्गस्य सुयोजनेन।
अर्थं प्रभुत्वस्य सलील[8]मेति, किं स्तौमि सत्सङ्गमहाप्रभावम् ?॥

भू धातु का अर्थ है–होना। 'प्र' उपसर्ग के योग से सहज ही वह 'प्रभुत्व' के अर्थ को प्रकट करता है। सत्संग के महान् प्रभाव की मैं क्या स्तुति करूं?

६. [9]दशार्णभद्रो वसुधाधिराजो[10], जिनेशितु[11]र्वीरविभोः कृपातः।
न्यपातयत् शक्रमपि स्वपादे, किं स्तौमि सत्सङ्गमहाप्रभावम् ?॥

दशार्णभद्र दशार्ण देश का राजा था। उसने तीर्थंकर महावीर प्रभु की कृपा से इन्द्र को भी अपने पैरों में झुका लिया। सत्संग के महान् प्रभाव की मैं क्या स्तुति करूं?

---

१. उपजाति।
२. प्रत्नतमः–अत्यंत पुराना, जीर्ण।
३. प्रभूष्णु–समर्थ।
४. चामीकरम्–सोना।
५. अगण्यः–नगण्य।
६. सरस्वान्–समुद्र।
७. इन्द्रवज्रा।
८. सलीलम्–सहज।
९. उपजाति।
१०. वसुधाधिराजः–पृथ्वीपति।
११. जिनेशिता–तीर्थंकर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७. न काचिमं[1] चापि पुनाति किञ्चिद् यदुत्तमाङ्गं तदपि क्षणेन।
पुनाति पांशु[2]र्गुरुपादसंस्था[3], किं स्तौमि सत्सङ्गमहाप्रभावम् ?॥

जिस मस्तक को अतिस्वच्छ जल भी पवित्र नहीं करता, उसे गुरु की चरणधूलि भी क्षणभर में पवित्र बना देती है। सत्संग के महान् प्रभाव की मैं क्या स्तुति करूं?

८. घनाघनस्याश्रयतो हि विद्युत्, संप्रोज्ज्वलद्दावशिखि[4]क्षयार्हैः।
बभूव तोयप्रकरैरजेया, किं स्तौमि सत्सङ्गमहाप्रभावम्?॥

विद्युत् मेघ के आश्रय में रहती है, अतः वह धधकती हुई दवाग्नि को शांत करने वाली प्रचुर पानी की धाराओं से भी अजेय हो जाती है। सत्संग के महान् प्रभाव की मैं क्या स्तुति करूं?

९. प्रभावतः श्रीतुलसीप्रभूणां, मत्सन्निभस्तुच्छधियान्वितोऽपि।
करोति सत्सङ्गविवेचनं च, किं स्तौमि सत्सङ्गमहाप्रभावम्?॥

मेरे जैसा तुच्छ बुद्धिवाला व्यक्ति भी सत्संग के माहात्म्य का विवेचन करता है, यह श्रीतुलसीस्वामी का ही प्रभाव है। सत्संग के महान् प्रभाव की मैं क्या स्तुति करूं?

(वि. सं. १९९९, पौषमास (जनवरी, १९४३), मोमासर)

२०. संवादः

(सफलता के लिए जरूरी है संवाद। उसके द्वारा सफल व्यक्ति के अनुभवों का संक्रमण होता है और सफलता का पथ प्रशस्त होता है।)

१. [5]सर्वे सम्मिलिता जाताः, पुण्ये विद्यालयाङ्गणे।
विद्यार्थिनः शिक्षकाश्च, तत्रैकः पृष्टवानिदम्॥

विद्यालय के पवित्र प्रांगण में सभी शिक्षक और विद्यार्थी एकत्रित हुए। उस समय एक विद्यार्थी ने पूछा–

२. कथमध्यापकश्रेष्ठ! भवामः सफला वयम्?।
जिज्ञासामो वयं सर्वे, करोतु पथदर्शनम्॥

---

१. काचिमम्–('तोयमतिस्वच्छं तु काचिमम्'–शे. नाम. पृ. २६३, पं. ५)–अतिस्वच्छ जल।
२. पांशुः–धूलि।
३. संस्थः–लगी हुई।
४. दावशिखी–दावानल।
५. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्यापकप्रवर! हम जीवन में सफल कैसे हो सकते हैं? यह हम सबकी जिज्ञासा है। आप हमारा मार्गदर्शन कीजिए।

३. अध्यापको मृदु प्राह, यूयं शृणुत सादरम्।
भवेत सफला यूयं, तानुपायान् वदाम्यहम्॥

अध्यापक ने कोमल स्वर में कहा–विद्यार्थियो! तुम आदरपूर्वक सुनो। मैं तुम्हें उन उपायों का शिक्षण दूंगा, जिन्हें सीखकर तुम सफल हो सकते हो।

४. उपायं प्रथमं तत्र, स्वावलम्बं वदाम्यहम्।
स्वावलम्बी जनो नित्यं, जीवने सफलो भवेत्॥

अध्यापक ने कहा–जीवन में सफल होने का पहला उपाय स्वावलम्बन है। स्वावलम्बी मनुष्य सदा सफल होता है।

५. जिज्ञासा शिक्षकश्रेष्ठ! स्वावलम्बनमस्ति किम्?।
स्वावलम्बी कथं भूयो जीवने सफलो भवेत्?॥

विद्यार्थी ने पूछा–शिक्षकप्रवर! मेरी जिज्ञासा है कि स्वावलम्बन किसे कहा जाता है और स्वावलम्बी जीवन में और अधिक कैसे सफल सकता है?

६. स्वहस्ते स्वस्य पादे च, विश्वासो विद्यते दृढः।
स्वावलम्बनमेतत् स्याद्, आत्मनिर्भरताप्यसौ॥

अध्यापक ने कहा–अपने हाथों और अपने पैरों पर जो दृढ विश्वास है–अपने पुरुषार्थ पर जो भरोसा है, उसका नाम स्वावलम्बन है। इसे आत्मनिर्भरता भी कहा जाता है।

७. परावलम्बनग्रस्तो निजं विस्मरति ध्रुवम्।
विफलो जायते तेन, जीवनेऽस्मिन् पदे पदे॥

जो मनुष्य परावलम्बन की बीमारी से ग्रस्त होता है, वह अपने आपको भूल जाता है, इसलिए वह इस जीवन में पग-पग पर विफल होता है।

८. स्वावलम्बनसंलीनः, सततं स्मरति स्वकम्।
सफलो जायते तेन, जीवनेऽस्मिन् पदे पदे॥

जो मनुष्य स्वावलम्बन में अच्छी प्रकार से लीन रहता है, वह अपने आपको सदा स्मृति में रखता है, इसलिए वह इस जीवन में पग-पग पर सफल होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९. वार्तां प्रकथयाम्येकां, टालस्टायस्य धीमतः।
स्वावलम्बनसाफल्यं, स्फुटं ज्ञातं भवेद् यतः॥

मैं तुम्हें मतिमान् टालस्टाय की एक घटना सुनाता हूं। उसे सुनकर स्वावलम्बन की सफलता स्पष्टतया ज्ञात हो जाएगी।

१०. स्वावलम्बाः कथं स्याम? वयं स्मो धनिनां सुताः।
कार्यं कुर्याम हस्तेन, भवामो लघवस्तदा॥

कुछ विद्यार्थी खड़े हुए और बोले–अध्यापकप्रवर! हम धनिकों के पुत्र हैं। हम स्वावलम्बी कैसे बनें? यदि हम अपने हाथ से काम करें तो छोटे हो जाएं–हमारे बड़प्पन की मर्यादा टूट जाए।

११. धनस्य पुरुषार्थेन, विरोधो नास्ति कश्चन।
वर्धते पुरुषार्थेन, धनमित्याह शिक्षकः॥

शिक्षक ने कहा–पुरुषार्थ के साथ धन का कोई विरोध नहीं है। वह पुरुषार्थ से बढता है।

१२. पुण्यवन्तो जना अत्र, सुखभोगं प्रकुर्वताम्।
पुण्यहीना जना अत्र, कार्यं कुर्वन्तु सन्ततम्॥

१३. विधेर्विधानमेतत्तु, न निवार्यं कथञ्चन।
अनेन नियमेनैव, शासितं विद्यते जगत्॥

विद्यार्थी बोले–अध्यापकप्रवर! इस दुनिया में जो भाग्यशाली हैं, वे सुखों का भोग करें और जो पुण्यहीन हैं, वे सदा काम करें। यह विधि का विधान है, इसे कोई टाल नहीं सकता। इसी विधि-विधान से ही सारा जगत् शासित हो रहा है।

१४. अधुना श्रमिकैः राज्यं, क्रियते जगतीतले।
पुण्यापुण्यस्य चर्चैषा, पुराणाभूद् गतादरा॥

अध्यापक ने कहा–आज दुनिया के अंचलों में श्रमिक लोग राज्य कर रहे हैं। अब इस प्रकार के पुण्य और पाप की चर्चा बहुत पुरानी पड़ गई है। उसके प्रति अब वह आदर-भावना नहीं रही, जो पहले थी।

१५. नास्ति किं वस्तुतः पुण्यं, पापञ्चापि किमस्ति नो।
यदि स्तस्ते तदा किं न, फलं भावि तयोरिह?॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्यार्थी बोले–क्या वास्तव में पुण्य और पाप कुछ भी नहीं हैं और यदि वे हैं तो उनका फल कैसे नहीं होगा?

१६. नाहं वच्मि न वा पुण्यं, न पापं विद्यते भुवि।
पुण्यपापे मतिर्यास्ति, समीचीना न चास्ति सा॥

अध्यापक ने कहा–मैं यह नहीं कहता कि इस भूमि पर पुण्य और पाप नहीं हैं। मैं यह कहना चाहता हूं कि उनके बारे में जो धारणा है, वह सही नहीं है।

□□□

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थः उच्छ्वासः

प्रज्ञालोकः

(आचार्यश्री तुलसी क पचहत्तरवें जन्मदिवस के उपलक्ष में योगक्षेम वर्ष की आयोजना। प्रज्ञा-जागरण और व्यक्तित्व-निर्माण का महान् लक्ष्य। आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व के निर्माण की विलक्षण संकल्पना। बहुआयामी शिक्षण, प्रशिक्षण और प्रयोग का अभिनव संकल्प। शिक्षण-प्रशिक्षण की दृष्टि से निर्धारित विषयों पर प्रवचन। एक ओर प्रबुद्ध प्रशिक्षणार्थी, दूसरी ओर श्रद्धालु सामान्यजन। दोनों को केन्द्र में रखकर प्रवचन की नई शैली का प्रवर्तन। वह शैली विद्वानों और सामान्य श्रद्धालुओं-दोनों के लिए सहजगम्य बनी। प्रवचन से पूर्व प्रायः प्रतिदिन संस्कृत श्लोक की रचना और फिर उसके आधार पर प्रवचन। प्रवचन-सार संरक्षण के इस उपक्रम की निष्पत्ति है प्रज्ञा का आलोक।)

१. मंगलम्

१. [१]अहिंसा मंगलं श्रेष्ठं, संयमो मंगलं वरम्।
तपस्या मंगलं वर्यं, वीरेण प्रतिपादितम्॥

भंते! श्रेष्ठ मंगल क्या है?

भगवान् महावीर ने कहा-वत्स! अहिंसा, संयम और तप-ये तीनों श्रेष्ठ मंगल हैं।

२. धर्मस्य लक्षणम्

२. अहिंसा लक्षणो धर्मो धर्मः संयमलक्षणः।
तपस्या लक्षणो धर्मो वीरेण प्रतिपादितः॥

भंते! धर्म का लक्षण क्या है?

भगवान् ने कहा-वत्स! अहिंसा, संयम और तपस्या-ये तीन धर्म के लक्षण हैं।

३. कथं शृणुयात् ?

३. श्रवणमिन्द्रियेण स्याद् मनसाऽर्थोऽवगम्यते।
बुद्ध्या विविच्यत तावत्, सर्वाङ्गं श्रवणं भवेत्॥

१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रवण–सुनना तभी परिपूर्ण होता है, जिसमें इन्द्रियां, मन और बुद्धि–इन तीनों का उपयोग होता है। कान अपने विषय–शब्द को ग्रहण करता है, मन उसके अर्थ की अवधारणा करता है और बुद्धि हेय और आदेय का विवेक करती है।

४. अनुशासनम् : एको विमर्शः

४. किं स्रोतः किं स्वरूपं च, किं फलं चानुशासनम्।
स्वतन्त्रता भवेत् स्रोतः, परस्वातन्त्र्यरक्षिका॥
५. इच्छारोधः स्वरूपं स्यात्, प्रसादः समताफलम्।
सुस्थिरो जायते लोको विद्यमानेऽनुशासने॥

भंते! अनुशासन का स्रोत क्या है? उसका स्वरूप और फल क्या है?

वत्स! अनुशासन का स्रोत वह स्वतन्त्रता है, जो दूसरे की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रख सके। इच्छा का निरोध करना उसका स्वरूप है, उसका फल है समता और चित्त की प्रसन्नता। अनुशासन के फलित होने पर व्यक्ति अपने आप में सुस्थिर हो जाता है।

५. गुरुशिष्ययोः सम्बन्धः

६. आज्ञानिर्देशकारित्वं, संबध्नाति गुरोर्मतिम्।
प्रीतिर्विनम्रता सेवा, कृतज्ञभावविश्रुतिः॥

गुरु और शिष्य का गहरा संबंध होता है। गुरु से तादात्म्य स्थापित करने के पांच गुर हैं–१. आज्ञा और निर्देश का पालन, २. प्रीति, ३. विनम्रता, ४. सेवा, ५. कृतज्ञता का भाव।

७. निष्पत्तिकारकत्वं च, बध्नाति शिष्यचेतनाम्।
वात्सल्यं च सहिष्णुत्वं, ममता समता तथा॥

शिष्य की चेतना को बांधने के पांच गुर हैं–१. निष्पत्तिकारकत्व–शिष्य को दीक्षित कर उसे निष्पत्ति तक पहुंचाना, परिपक्व बनाना, २. वात्सल्य, ३. सहिष्णुता, ४. ममता, ५. समता।

६. तितिक्षायाः निकषोपलानि

८. वर्धतां शक्तिरन्तस्था, वर्धतां च मनोबलम्।
वर्धतामन्तरानन्दः, तत्सोढव्याः परीषहाः॥

आन्तरिक शक्ति बढे, मनोबल बढे और आन्तरिक आनन्द बढे, इसलिए परीषहों को सहना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९. न कष्टं नाम कष्टाय, कष्टापोहाय तन्मतम्।
अस्मिन् कष्टाकुले लोके, कष्टमुक्तेरसौ पथः॥

कष्ट को सहना कष्ट के लिए नहीं है। वह कष्ट को दूर करने का उपाय है। इस कष्टाकुल जगत् में कष्ट को सहना ही कष्टमुक्ति का उपाय है।

७. दुर्लभः संयोगः

१०. यावदारम्भबाहुल्यं, यावत् परिग्रहग्रहः।
चतुष्कं दुर्लभं तावत्, इति संज्ञापि दुर्लभा॥

जब तक मनुष्य आरम्भ की बहुलता और परिग्रह की पकड़ में रहता है, तब तक उसके लिए मनुष्य-जन्म की सार्थकता, धर्म की श्रुति, धर्म के प्रति श्रद्धा और संयम में पराक्रम-यह चतुष्क दुर्लभ है, इसका संज्ञान होना भी दुर्लभ है।

८. स्वतन्त्रतायाः सीमा

११. ज्ञानात्मा नाम संबुद्धः, कषायात्मा नियन्त्रितः।
स्वतन्त्रतायाः सीमैषा, स्वयं निर्धारिता भवेत्॥

भंते! स्वतन्त्रता की सीमा क्या है?

वत्स! ज्ञान-आत्मा जाग जाए और कषाय-आत्मा का नियंत्रण हो जाए, यही स्वयं निर्धारित स्वतन्त्रता की सीमा है।

१२. भयः प्रलोभनं द्वेष, आवेशो हीनभावना।
अहंकारो लोकवाद, एतैः स्यादप्रभाविता॥

भंते! संकल्प की स्वतन्त्रता कब होती है?

वत्स! जब स्वतन्त्रता भय, प्रलोभन, द्वेष, आवेश, हीनभावना, अहंकार और लोकवाद से अप्रभावित रहती है, तब संकल्प की स्वतन्त्रता फलित होती है।

९. धर्मस्य आदिबिन्दुः

१३. धर्मस्यादिपदं किं स्याद्, जिज्ञासा मम वर्तते।
इन्द्रियातीतविज्ञानं, धर्मस्यादिपदं मतम्॥

गुरुदेव! मैं जानना चाहता हूं कि धर्म का आदि-बिन्दु क्या है?

वत्स! धर्म का आदि-बिन्दु है-इन्द्रियातीत चेतना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain; Digitizagtion by eGangotri

१०. किं ज्ञानम्?

१४. निमन्त्रितं स्याद् वार्धक्यं, रोगा अपि निमन्त्रिताः।
अनिमन्त्रणविज्ञानं, ज्ञानं प्राहुर्बुधा इदम्॥

बुढापा बुलाया हुआ आता है, रोग भी बुलाए हुए आते हैं। उन्हें निमन्त्रण न देने का जो विज्ञान है, उसी को ज्ञानी पुरुष ज्ञान कहते हैं।

११. सत्यस्यानुभूतिः-१

१५. समानो वर्तते जीवो नानात्वं कथमिष्यते।
मनुष्यो वर्तते कश्चित्, कश्चित् पक्षी पशुस्तरुः॥

शिष्य के मन में संसार की विविधता को देखकर एक प्रश्न उभरा। उसने गुरु से पूछा—भंते! सब जीव (आत्माएं) समान हैं, फिर कोई मनुष्य है तो कोई पक्षी। कोई पशु है तो कोई वृक्ष। यह नानात्व क्यों?

१६. अस्त्यात्मा शाश्वतस्तेन, गतिचक्रं प्रवर्तते।
अस्ति पुण्यं च पापं च, नानात्वं च गतेस्ततः॥

आचार्य ने कहा—वत्स! आत्मा शाश्वत है। वह एक भव से दूसरे भव में जाती है, उसका गतिचक्र चलता रहता है। वह कभी मनुष्य, कभी देव और कभी पशु-पक्षी के रूप में उत्पन्न होती है। इस नानात्व का मूल कारण है—पुण्य और पाप।

१२. सत्यस्यानुभूतिः-२

१७. इन्द्रियेणैव जानामि, बाह्यं जगदिदं स्फुटम्।
तानि सन्ति च वैरीणि, श्रद्धेयं स्यादिदं कथम्॥

भंते! मैंने एक बात सुनी है कि इन्द्रियां हमारी शत्रु हैं। पर मैं इस बात को कैसे मानूं, क्योंकि इन्द्रियों के द्वारा ही मैं इस बाह्य जगत् को स्पष्टतया जानता हूं, फिर वे हमारी शत्रु कैसे?

१८. आविष्टानि यदा तानि, रागद्वेषप्रभावतः।
तदा तानि विपक्षाणि, नेतराणि महामते!॥

महामते! तुझे इन्द्रियों को सापेक्षता से समझना होगा। वे अपने आपमें शत्रु नहीं हैं। जब वे राग-द्वेष से आविष्ट होती हैं, तब वे हमारी शत्रु बन जाती हैं। जब उनमें वह आवेश नहीं होता, तब वे हमारी मित्र होती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१३. योगक्षेमप्रस्थाने का बाधा ?

१९. पुद्गलेनावृतं ज्ञानं, दर्शनं पुद्गलावृतम्।
आनन्दः पुद्गलाच्छन्नश्चास्ति पौद्गलिकं वपुः॥

गुरुदेव! हमारा योगक्षेम की ओर प्रस्थान क्यों नहीं हो रहा है? इसमें कौनसी बाधा है?

वत्स! पुद्गल इसमें सबसे बड़ी बाधा है। वही हमारे ज्ञान और दर्शन पर आवरण डाल रहा है, वही आनन्द को आच्छन्न कर रहा है। और तो क्या, यह हमारा शरीर भी पुद्गलमय है।

२०. अस्ति पुद्गलसाम्राज्यमेकच्छत्रमितस्ततः।
एषाऽस्ति महती बाधा, योगक्षेमस्य[१] संविदः[२]॥

हमारे जीवन के चारों ओर पुद्गल का एकछत्र साम्राज्य है। बोलना, खाना, सुनना और श्वास लेना–सब पुद्गल ही पुद्गल है। वह विजातीय है। योगक्षेम की प्राप्ति में यह सबसे बड़ी बाधा है।

२१. योगक्षेमस्य संवित्तेः[३], उपायोऽसौ निदर्शितः।
न पुद्गलोऽस्मि चिद्रूप, इति भेदस्य साधना॥

गुरुदेव! क्या योगक्षेम की प्राप्ति का कोई उपाय है?

वत्स! हां, उपाय है। वह है तीव्र अभीप्सा। उसकी प्रक्रिया है–'मैं पुद्गल नहीं हूं, चिद्रूप हूं'–इस भेदविज्ञान की साधना।

१४. कपिलस्य सम्बोधिः

२२. प्रश्नः प्रश्नः पुनः प्रश्नः, स्वं प्रति प्रतिपद्यताम्।
उत्तरे परिवर्तेत, स्वयं प्रश्नः समाहितः॥

भंते! प्रश्न का समाधान कैसे हो सकता है?

वत्स! जिस प्रकार कपिल ने स्वयं से प्रश्न पूछा था, उसी प्रकार तुम भी प्रश्न पूछो। पुनः पुनः प्रश्न पूछो। अपने आप से पूछो। प्रश्न उत्तर में बदल जाएगा। वह अपने आप समाहित हो जाएगा।

---

१. योगक्षेमः– 'अलभ्यलाभो योगःस्यात्,
क्षेमो लब्धस्य पालनम्।।'
अप्राप्त की प्राप्ति, प्राप्त की सुरक्षा।

२. संविद्–प्राप्ति, ज्ञान।

३. संवित्तिः–प्राप्ति, ज्ञान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२३. पृष्टवान् कपिलः प्रश्नमन्तः शान्तमना अमुम्।
कोट्या तृप्तो भविष्यामि, स्वयं संबुद्धतां गतः॥

राजपुरोहित का पुत्र कपिल राजा द्वारा मुंहमांगा धन दिए जाने की लालसा में उलझ गया। तृष्णा इतनी विशाल हो गई कि वह दो माशा सोने से करोड़ों तक पहुंच गया। उसने शान्तमना होकर अपने आप से प्रश्न पूछा–'क्या मैं करोड़ों की सम्पदा पाकर तृप्त हो जाऊंगा?' उसे सही समाधान मिल गया और वह स्वयं संबुद्ध बन गया।

१५. रूपान्तरणं कथं सम्भवेत्?

२४. शनैः शनैः अन्तरिच्छाकृतं क्वचित् प्रभावतः।
स्वतः परोपदेशाद् वा, व्यक्तित्वे परिवर्तनम्॥

मनोविज्ञान की भाषा में व्यक्ति धीरे-धीरे परिवर्तित होता है। कहीं वह परिवर्तन आन्तरिक इच्छा से होता है तो कहीं किसी के प्रभाव से। कहीं वह अपने आप होता है तो कहीं परोपदेश से।

१६. एकोऽनेकः

२५. एकः समूहमध्यस्थः, समूह एकमाश्रितः।
एकानेकविभेदोऽयं, व्यवहारे प्रवर्तते॥

एक व्यक्ति भीड़ में रहता हुआ एकाकी है और एक एकाकी होता हुआ भी भीड़ में है। यह एक और अनेक का भेद व्यवहारनय की दृष्टि से है।

२६. निश्चयं नयमाश्रित्य, सर्वोऽप्येकत्वमागतः।
रागद्वेषविमुक्तोऽसौ, एक एव भवेज्जनः॥

निश्चयनय की दृष्टि में सभी एकाकी हैं। जो राग-द्वेष मुक्त जीवन जीता है, वह भीड़ में रहता हुआ भी अकेला होता है।

१७. शाश्वताऽशाश्वतयोर्विवेकः

२७. शाश्वते लब्धबुद्धीनां, नो काम्यः स्यादऽशाश्वतः।
अशाश्वते प्रलुब्धो यः, स किं जानाति शाश्वतम्?॥

भंते! शाश्वत क्या है? अशाश्वत क्या है?
वत्स! अध्यात्म शाश्वत है और भोग अशाश्वत है।
जिन व्यक्तियों की बुद्धि शाश्वत में रमण करती है, उनके लिए अशाश्वत कभी काम्य नहीं होता और जो अशाश्वत में प्रलुब्ध है, वह शाश्वत को क्या जानेगा?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१८. अपराधस्तन्निवारणञ्च

२८. अपराधान्निवर्तेत, लोकः प्रायो न चिन्त्यते।
दण्डः कथं प्रवर्तेत, चित्रं चिन्तेति वर्तते॥

भंते! आज समाज में अपराध बढ़ रहे हैं। मनुष्य क्यों नहीं बदल रहा है? इसका क्या कारण है?

वत्स! मनुष्य अपराध से बचे–प्रायः इसका चिन्तन नहीं किया जाता। चिन्तन होता है कि दण्ड कैसे चालू रहे? यह एक आश्चर्य है। तब समाज में अपराध कैसे कम होंगे? मनुष्य कैसे बदलेगा?

२९. विश्वासो वर्तते दण्डे, न्याये तावान्न विद्यते।
यदि न्यायः प्रवृत्तः स्याद्, दण्डः किं चिरमुच्छ्वसेत्?॥

भंते! समाज से अपराध को कैसे मिटाया जा सकता है?

वत्स! आज के मनुष्य का जितना विश्वास दण्ड में है, उतना न्याय में नहीं है। यदि समाज में न्याय प्रवृत्त हो जाए तो दण्ड क्या चिरकाल तक उच्छ्वास ले सकेगा? वह अपने आप समाप्त हो जाएगा।

१९. आत्मना युध्यस्व

३०. संकल्पः शमन ज्ञातृद्रष्टृभावविभावनम्।
स्मरणं प्रतिक्रमणं, युद्धं पञ्चविधं स्मृतम्॥

भंते! भगवान् महावीर ने कहा–अपने आप से लड़ो–आत्मा से युद्ध करो। उसके वे कौन से उपाय हैं?

वत्स! संकल्प, शमन, ज्ञाता-द्रष्टाभाव, स्मरण और प्रतिक्रमण–ये पांच प्रकार आत्मयुद्ध के उपाय हैं।

२०. कथमाकर्षणम्?

३१. इन्द्रियाणि प्रधानानि, मानसं चापि चञ्चलम्।
कषायरञ्जिता भावाः, तावदाकर्षणं गृहे॥

भंते! मनुष्यों का गृहजीवन के प्रति आकर्षण क्यों है?

वत्स! जब तक मनुष्य में इन्द्रियविषयों की प्रधानता है, मन चंचल है, भाव कषायों से अनुरंजित हैं, तब तक घर क प्रति उसका आकर्षण बना रहेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२१. इच्छा : व्यक्ता अव्यक्ता च

३२. अव्यक्तो वर्तते कश्चित्, व्यवहारप्रवर्तकः।
व्यक्तस्य निग्रहः कार्योऽव्यक्तः प्रतनुतां व्रजेत्॥

भंते! व्यक्त इच्छा के निग्रह से अव्यक्त इच्छा का निरोध कैसे होगा?

वत्स! जैन दर्शन की भाषा में व्यक्त और अव्यक्त–ये दो इच्छाएं हैं। अव्यक्त इच्छा से हमारे व्यवहार का प्रवर्तन होता है। व्यक्त इच्छा भी उसी से प्रेरित है। जब व्यक्त इच्छा का निग्रह होगा तो अव्यक्त अपने आप प्रतनु (दुर्बल) हो जाएगी।

२२. प्रमत्तोऽप्रमत्तश्च

३३. जयस्य सूत्रं निर्देष्टुं, नाहमस्मि क्षमस्तथा।
पराजयस्य सूत्रं तु, प्रमादात् परमस्ति नो॥

भंते! विजय का सूत्र क्या है?

वत्स! विजय का सूत्र बताने में मैं असमर्थ हूं। पराजय का सूत्र बता सकता हूं। उसका सबसे बड़ा सूत्र है–प्रमाद।

३४. आयुर्बन्धक्षणो नास्ति, निश्चितस्तेन संततम्।
भाव्यमेवाऽप्रमत्तेन, प्रतिक्षणं प्रतिक्षणम्॥

भंते! अप्रमत्त जीवन क्यों जीना चाहिए?

वत्स! आयुष्यबन्ध का क्षण निश्चित नहीं होता, इसलिए मनुष्य को प्रतिक्षण अप्रमत्त–जागरूक रहना चाहिए।

२३. अतीतं वर्तमानञ्च

३५. अतीतं स्मर्यते भूयो वर्तमानमुपेक्ष्यते।
निसर्गोऽयं मनुष्याणां, सन्मते! परिवर्त्यताम्॥

३६. अनुभूतिर्वर्तमानेऽतीते तर्कः स्मृतिर्भवेत्।
तर्काद् गतिः प्रवर्तेत, साऽनुभूतौ विरम्यते॥

भगवान् महावीर ने गौतम को संबोधित करते हुए कहा–हे सन्मते! मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अतीत को बार–बार याद करता है और वर्तमान को उपेक्षित कर देता है। तुम इसे बदलो।

वर्तमान का क्षण अनुभूति का क्षण होता है। अतीत का क्षण स्मृति और तर्क का क्षण होता है। तर्क से जो गति प्रवृत्त होती है, वह अनुभूति में विराम पा जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२४. परोक्षज्ञानं समाधिश्च

३७. परोक्षे संप्रजायन्ते, बाधास्तत्र विपर्ययः।
निराशा विचिकित्सा च, शंका क्वचिच्च संशयः॥

परोक्षज्ञान कई बाधाओं को उत्पन्न करता है। वे बाधाएं हैं–विपर्यय, निराशा, विचिकित्सा, शंका और संशय।

३८. परोक्षं विद्यतेऽस्पष्टं, बाह्यान्तरविभेदकृत्।
सानुमानं च प्रत्यक्षं, स्पष्टं तेन समाधिकृत्॥

परोक्षज्ञान में अस्पष्टता होती है। वहां अनुमान होता है, बाहर और भीतर का भेद बना रहता है। जब प्रत्यक्षज्ञान होता है, तब स्पष्टता की स्थिति बनती है। उसी अवस्था में समाधि या समाधान प्राप्त होता है।

३९. अस्पष्टता भवेद् यत्राऽसमाधिस्तत्र जायते।
स्पष्टतायां समाधिः स्याद्, ज्ञानजो व्यवहारजः॥

जहां अस्पष्टता होती है, वहां असमाधि होती है। समाधि स्पष्टता की स्थिति में होती है। इसके आधार पर उसके दो भेद बन जाते हैं–ज्ञानजनित समाधि और व्यवहारजनित समाधि।

२५. भावक्रिया द्रव्यक्रिया च

४०. साफल्यस्य रहस्यं किं, ज्ञातुमिच्छामि सम्प्रति।
भावः साफल्यसूत्रं स्याद् द्रव्यं वैफल्यकारणम्॥

भंते! मैं जानना चाहता हूं कि सफलता का रहस्य क्या है?

वत्स! भावक्रिया सफलता का सूत्र है और द्रव्यक्रिया असफलता का सूत्र है।

४१. जानन् करोमि भावोऽयमजानन् द्रव्यमुच्यते।
तन्मना इति भावोऽयं, द्रव्यमन्यमना भवेत्॥

गुरुदेव! द्रव्य और भाव से आपका तात्पर्य क्या है?

वत्स! जानते हुए यह मैं कर रहा हूं–यह भावक्रिया है। अनजान में कोई क्रिया करना–यह द्रव्यक्रिया है। अथवा जो क्रिया करे उसी में मन लगा रहे, यह भावक्रिया है। क्रिया कुछ करे और मन अन्य प्रवृत्ति में रहे, यह द्रव्यक्रिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२६. किमर्थं प्रतिक्रिया ?

४२. कषायाकुलचित्तस्य, प्रतिक्रिया प्रतिक्रिया।
उपशान्तकषायस्य, प्रतिक्रियाऽप्रतिक्रिया॥

गुरुदेव! प्रतिक्रिया क्यों होती है? उससे विरति कैसे हो सकती है?

वत्स! जिसका चित्त कषाय से आकुल होता है, उसके बार-बार प्रतिक्रिया होती रहती है। जिसका कषाय उपशान्त हो जाता है, उसके कोई प्रतिक्रिया नहीं होती।

२७. मिताहारो मौनञ्च

४३. शक्तेर्वृद्धिः क्षतेः पूर्तिः, विजातीयस्य निर्गमः।
लाघवञ्च प्रसादश्च, भोजने परिवीक्ष्यताम्॥

आचार्य के सान्निध्य में संगोष्ठी का आयोजन था। प्रसंग चला कि भोजन को किस दृष्टि से देखा जाए? आचार्य ने कहा-भोजन को पांच दृष्टियों से देखना आवश्यक है-१. जिससे शरीर की शक्ति बनी रहे, २. काम करने से शरीर की जिन कोशिकाओं की क्षति होती है, उनकी पूर्ति होती रहे, ३. समय पर विजातीय मलों का निर्गमन होता रहे, ४. शरीर में हल्कापन बना रहे, ५. मन की प्रसन्नता भंग न हो।

४४. अजल्पनं भवेन्मौनं, मौनं स्यादल्पजल्पनम्।
अविकल्पनमेवाऽपि, मौनमन्तरुदाहृतम्॥

किसी साधक ने पूछा-गुरुदेव! मैं मौन की साधना करना चाहता हूं, उसका स्वरूप क्या है?

आचार्य ने कहा-कुछ न बोलना मौन है। कम बोलना भी मौन है। ये दोनों वाचिक मौन हैं। निर्विकल्प अवस्था में जाना-स्वरयन्त्र को निष्क्रिय बनाना अन्तर्मौन है।

२८. सर्वाङ्गीणशिक्षाप्रणाली

४५. विकासो बौद्धिको युक्तः, तथ्यानां ग्रहणे भवेत्।
विकासो मानसो युक्तः, समस्या जेतुमुत्कटाः॥

४६. विकासो भावनानां च, युक्तो दायित्वपालने।
शरीरसिद्धिरेतेषामाधार इति विश्रुतम्॥

४७. प्रशिक्षणं विना नैते, संभवन्ति कदाचन।
ततः स्वाध्याययोगोऽयं, विद्यार्थिनां प्रवर्तते॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिक्षा के क्षेत्र में बहुधा पूछा जाता है–शिक्षा का उद्देश्य क्या है? समाधान की भाषा में शिक्षा का पहला उद्देश्य है–बौद्धिक विकास। इससे व्यक्ति तथ्यों को ग्रहण करने में सक्षम होता है। शिक्षा का दूसरा उद्देश्य है–मानसिक विकास। इससे मनुष्य अनुकूल-प्रतिकूल सभी उत्कट समस्याओं को झेलने में समर्थ बनता है। शिक्षा का तीसरा उद्देश्य है–भावात्मक विकास। इसकी फलश्रुति है–दायित्व-पालन का अवबोध। इन सबका आधार है–शरीरसिद्धि–शारीरिक विकास।

ये चारों विकास प्रशिक्षण के बिना संभव नहीं हैं। उसके पश्चात् विद्यार्थी स्वाध्याययोग में प्रवृत्त हो सकते हैं।

२९. पूजनीयो बहुश्रुतः

४८. स्वच्छता शौर्यमाशा च, धैर्यमौदार्यमात्मगम्।
उच्चता सुगभीरत्वं, बहुश्रुते श्रुता अमी॥

४९. यः करोति स्वयत्नेन, साक्षात्कारं निजात्मनः।
चिदानन्दमयश्चात्मा, तन्मयः पूज्यते जनैः॥

भंते! बहुश्रुत में ऐसे कौन से गुण होते हैं, जिनके कारण वे लोगों के द्वारा पूजनीय बनते हैं?

वत्स! बहुश्रुत में निर्मलता, पराक्रम, आशा, धैर्य, उदारता, उच्चत्व और गाम्भीर्य–ये सभी गुण आत्मगत होते हैं।

जो अपने प्रयत्न से अपने आपका साक्षात्कार करता है, वह चिदानन्दमय-आत्ममय हो जाता है और वह जन-जन के द्वारा पूजा जाता है।

३०. जातीयघृणा

५०. यथा यथा विवर्धतेऽभिमन्यता निरंकुशा।
तथा तथा प्रवर्धते, घृणा च जातिसंभवा॥

जैसे-जैसे अहंकार निरंकुश होकर बढता है, वैसे-वैसे जातीय घृणा बढती है।

५१. यथा यथा प्रवर्धते, समत्वभावसंस्तवः।
तथा तथा विलीयतेऽभिमानभावना स्वतः॥

जैसे-जैसे समत्वभाव का परिचय विकसित होता हैं, वैसे-वैसे अहंकार की भावना स्वतः विलीन हो जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३१. कर्मणा जातिः

५२. समाजो व्यक्तिसापेक्षः, जना विविधशक्तयः।
कर्म शक्त्यनुरूपं स्यात्, तेन जातिः स्वकर्मणा॥

समाज व्यक्तिसापेक्ष होता है। व्यक्ति-व्यक्ति में अलग-अलग शक्तियां पाई जाती हैं। किसी में बुद्धि-कौशल, किसी में पराक्रम, किसी में सेवा और किसी में व्यावसायिक दक्षता होती है। उन शक्तियों-योग्यताओं के अनुरूप ही कर्म होता है। इसलिए जाति कर्मणा होती है, जन्मना नहीं।

३२. यज्ञादेः आध्यात्मिकीकरणम्

५३. इष्टसिद्धिरनिष्टस्य, निवारणमभीप्सितम्।
तदर्थं कर्म धर्मोऽपि, तदर्थं विद्यते नृणाम्॥

५४. इष्टं नैकविधं तेषामनिष्टं चापि नैकधा।
तेषामाध्यात्मिकं रूपं, निर्दोषं सम्मतं बुधैः॥

गुरुदेव! भारतीय परम्परा में यज्ञ, तीर्थस्नान आदि को महत्त्व क्यों मिला?

वत्स! मनुष्य के लिए अभीप्सित है-इष्ट की सिद्धि और अनिष्ट का निवारण। उसके लिए वह कर्म करता है और धर्म भी उसी के लिए करता है।

मनुष्य के लिए इष्ट एक प्रकार का नहीं है और अनिष्ट भी एक प्रकार का नहीं है। उसका भौतिक स्वरूप निर्दोष नहीं होता। आध्यात्मिक स्वरूप ही विज्ञजनों द्वारा सम्मत हो सकता है। भगवान् महावीर ने यज्ञ, तीर्थ आदि का आध्यात्मिकीकरण किया था।

३३. जन्मास्ति कर्माधीनम्

५५. कर्माधीनं भवेज्जन्म, सुखदं दुःखदं तथा।
सातसंवेदनं तद्वद्, असातस्यापि वेदनम्॥

किसी का जन्म लेना स्वतन्त्र नहीं है, वह कर्म के अधीन है। कोई जन्म सुख देने वाला होता है, कोई जन्म दुःख देने वाला होता है। वैसे ही सुख और दुःख का संवेदन भी कर्म के अधीन है।

३४. सत्यमुत भावविप्लवः

५६. सत्यं बलयुतं यद्वा, बलवान् भावविप्लवः?
ज्ञानोपयोगे सत्यं स्यादन्यो मोहचिदः[१] क्षणे॥

१. मोहचित्-मोह की चेतना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भंते! सत्य बलवान् है अथवा भाव का विप्लव?

वत्स! जिस क्षण ज्ञान का उपयोग होता है, उस समय सत्य बलवान् होता है। जिस क्षण मोह की चेतना जागृत होती है, उस समय भावविप्लव–क्रोध, मान आदि का भाव बलवान् होता है।

३५. इच्छाभेदः कथम्?

५७. कामार्थी वर्तते कश्चित्, मोक्षार्थी कोऽपि वर्तते।
अर्थित्वस्य विभेदोऽयं, केनास्ति संप्रवर्तितः॥

शिष्य ने पूछा–कोई कामार्थी है–कामभोग को चाहता है। कोई मोक्षार्थी है–मोक्ष को चाहता है। यह इच्छाभेद किसके द्वारा प्रवर्तित होता है?

५८. मोहप्रवर्तितः कामो मोक्षः स्वभाववर्तितः।
हेतुभेदेन चार्थित्वभेदो लोके प्रविद्यते॥

आचार्य ने कहा–कामभोग मोह के द्वारा प्रवर्तित है, मोक्ष स्वभाव के द्वारा प्रवर्तित है। लोक में यह इच्छाभेद हेतुभेद–कारणों की विभिन्नता से होता है।

३६. अध्यात्मस्यावतरणम्

५९. ग्रन्थिभेदो न वा तावद् अध्यात्मं खलु कल्पना।
भिन्ने ग्रन्थौ पुद्गलानां, साम्राज्यं खलु कल्पना॥

गुरुदेव! जीवन में अध्यात्म का अवतरण कब होता है?

वत्स! जब तक ग्रन्थिभेद नहीं होता, तब तक अध्यात्म कोरी कल्पना है। जब ग्रन्थिभेद हो जाता है, तब पुद्गलों का साम्राज्य भी कोरी कल्पना है।

३७. मान्यता धारणा च

६०. मान्यता धारणा यास्ति, चिरकालेन पोषिता।
सद्यः सा विलयं गच्छेन्नेति चिन्त्यं विचक्षणैः॥

६१. अभीप्साऽन्वेषणं मार्गः, सहायो भावना तथा।
दृढनिश्चय इत्येते, हेतवः परिवर्तने॥

भंते! प्रत्येक व्यक्ति मान्यताओं और धारणाओं के आधार पर जीता है। उनका विलय कैसे हो सकता है?

वत्स! यह सत्य है कि मनुष्य चिरकाल से मान्यताओं और धारणाओं को पालता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ रहा है। वे जल्दी ही विलीन हो जाएं, ऐसा विचक्षण पुरुषों को नहीं सोचना चाहिए। उनके परिवर्तन में हेतु बनते हैं–अभीप्सा–बदलने की इच्छा, अन्वेषण–खोज, मार्ग, सहायक, भावना–अभ्यास और दृढनिश्चय।

३८. तुलनात्मकाध्ययनस्य रहस्यम्

६२. अहिंसादीनि तत्त्वानि, समानीति न विस्मयः।
विशेषो विस्मयस्थानं, सोऽन्वेष्टव्यो मनीषिणा॥

आर्यवर! किसी धर्म का तुलनात्मक अध्ययन कैसे होना चाहिए?

वत्स! किसी धर्म का अध्ययन समानता से ही नहीं, विशेषता या भेदपूर्वक भी होना चाहिए। अहिंसा आदि तत्त्व सभी धर्मों में समान हैं, यह आश्चर्य का विषय नहीं है। अहिंसा के विषय में जो भेद है, वह विस्मय का स्थान है। मनीषी व्यक्ति को उसका अन्वेषण करना चाहिए।

३९. महदाश्चर्यम्

६३. स्वीकारो वा न वा प्रश्नः, स्वस्य बुद्धौ प्रतिष्ठितः।
धर्मक्षेत्रेऽपि हिंसेयं, किमाश्चर्यमतः परम्?॥

कौन व्यक्ति अहिंसा को स्वीकार करता है और कौन नहीं करता, यह प्रश्न अपनी-अपनी बुद्धि पर निर्भर करता है। किन्तु धर्म के क्षेत्र में भी हिंसा चलती है अर्थात् धर्म के लिए भी हिंसा मान्य है, इससे अधिक आश्चर्य क्या होगा?

४०. मौलिकमनोवृत्तिः

६४. एका वृत्तिर्भवेन्मूलं, लोभो रागः परिग्रहः।
अधिकारोऽथवा वाच्यः, परास्तेनोपजीविताः॥

कर्मशास्त्र या अध्यात्मशास्त्र के अनुसार मौलिक मनोवृत्ति एक है–लोभ। उसे राग अथवा परिग्रह भी कहा जा सकता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अधिकार को मौलिक मनोवृत्ति माना है। शेष सारी वृत्तियां उसकी उपजीवी हैं।

४१. क्वास्मि?

६५. प्रश्नः कोऽहमिति ख्यातः, क्वाहमित्यस्ति नो श्रुतः।
तैजसं समतिक्रम्य, चैतन्यं साधुतां व्रजेत्॥

'मैं कौन हूं'–आज यह प्रश्न विश्रुत है। पर 'मैं कहां हूं'–यह स्वर कभी नहीं सुना जाता। साधुता जीवन में तभी आती है, जब चेतना तैजसकेन्द्र का अतिक्रमण कर ऊर्ध्वारोहण करती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४२. ब्रह्मचर्यस्य सिद्धिः

६६. केवलं न निमित्तानि, साधनानि न केवलम्।
सापेक्षता भवेदेषां, ब्रह्मचर्यस्य सिद्धये॥

ब्रह्मचर्य की साधना के लिए केवल निमित्तों से बचना, केवल साधनों को अपनाना–दोनों अपूर्ण हैं। उसकी सिद्धि के लिए दोनों की सापेक्षता अनिवार्य है।

४३. प्रेक्षा : अपरा परा च

६७. अपरा तोषमायाति, प्रेक्षा संप्राप्य लौकिकम्।
परा तु दूरदर्शित्वादऽलौकिकपदं व्रजेत्॥

भंते! साधुता कहां सार्थक होती है?

वत्स! जब मुनि परा प्रेक्षा में जीता है, तब उसकी साधुता सार्थक होती है।

भंते! वह कैसे?

वत्स! प्रेक्षा के दो प्रकार हैं–अपरा और परा। अपरा प्रेक्षा लौकिक है, वर्तमानदर्शी है। वह लौकिक वस्तुओं की संप्राप्ति में तोष मानती है। परा प्रेक्षा अलौकिक है, दूरदर्शी है। वह अलौकिक पद तक चली जाती है।

४४. गुरुतायाः सूत्रम्

६८. यदिच्छसि गुरोर्भावं, विवादं त्यज दूरतः।
आग्रहेण विवादेन, लघुतां मानवो व्रजेत्॥

शिष्य आचार्य के पास आया और बोला–गुरुदेव! महान् बनने का उपाय क्या है?

आचार्य ने कहा–वत्स! यदि तुम महान् बनने की इच्छा करते हो तो आग्रह और विवाद से दूर रहो, क्योंकि व्यक्ति आग्रह और विवाद के कारण लघुता–तुच्छता को प्राप्त होता है।

४५. कोऽभयः ?

६९. मूढो नित्यं भयग्रस्तो, मूर्खो भाति भयद्रुतः।
मनसा दुर्बलो भीतो, भयभीतमिदं जगत्॥

इस संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं–मूढ, मूर्ख और मन से दुर्बल। मूढ व्यक्ति नित्य भय से ग्रस्त रहता है, मूर्ख व्यक्ति डरपोक–कायर होता है और मन से दुर्बल व्यक्ति सदा डरता रहता है। इन तीनों के लिए यह जगत् भय से आक्रान्त बना रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७०. जडो भयास्पदं सम्यग्, न गृह्णाति न चाभयः।
य एवास्त्यभयो लोके, यो न मूढो न वा जडः॥

जड़ व्यक्ति भय-स्थान (मूल कारण) को ठीक प्रकार से पकड़ नहीं पाता, इसलिए वह अभय नहीं होता। इस संसार में वही अभय है, जो न मूढ है और न जड़।

४६. कः कलाविज्ञः?

७१. जीवनं च कला पूर्णा, मृत्युः साप्यतिशायिनी।
स कलां सकलां वेत्ति, रहस्यमनयोरपि॥

जीवन जीना एक पूर्ण कला है। मृत्यु उससे भी अधिक पूर्ण कला है। जो व्यक्ति जीवन और मृत्यु-इन दोनों के रहस्य को जान लेता है, वह समस्त कलाओं को जान लेता है।

४७. धारणायाः पुष्टिः

७२. विषयेषु शरीरे च, मनश्चाञ्चल्यमश्नुते।
ताभ्यां विरतिमापन्ने, धारणा स्थिरतां व्रजेत्॥

गुरुदेव! धारणा के बिना स्मृति प्रखर नहीं होती। धारणा कैसे पुष्ट हो सकती है?

वत्स! कभी यह मन विषयों में चंचल होता है तो कभी शरीर के प्रति। जब इन दोनों से मन की विरति होती है, तब धारणा स्थिर या पुष्ट होती है।

४८. देहस्थः आत्मस्थश्च

७३. देहस्था मानवाः केचित्, केचिदात्मस्थिता जनाः।
आचारे व्यवहारे च, भेदस्तेषामतो भवेत्॥

भंते! कुछ लोग आचार और व्यवहार में बड़े कुशल होते हैं तो कुछ उनमें कुशल नहीं होते। यह भेद क्यों?

वत्स! कुछ लोग देहस्थ होते हैं-वे शरीर के स्तर पर जीते हैं। कुछ लोग आत्मस्थ होते हैं-वे आत्मा के स्तर पर जीते हैं। देह के स्तर पर जीने वालों से आत्मा के स्तर पर जीने वालों का आचार और व्यवहार भिन्न प्रकार का होगा।

४९. आत्मना आत्मदर्शनम्

७४. ज्ञानं ममेन्द्रियाधीनं, जीवनं सामुदायिकम्।
तत्रात्मनात्मनो दर्शः, कथं स्यात् सार्थकं प्रभो!?॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी शिविरार्थी ने अपने प्रेक्षाध्यानी गुरु से पूछा–प्रभो! आप प्रतिदिन हमें 'संपिक्खए अप्पगमप्पएणं'–अपने द्वारा अपने आपको देखने का निर्देश देते हैं। सचाई यह है कि मेरा ज्ञान इन्द्रियों के अधीन है। जीवन सामुदायिक है। उस स्थिति में अपने आपको देखने का सूत्र कैसे सार्थक हो सकता है? वहां तो दूसरों को देखने का सूत्र ही सार्थक होता है।

७५. प्रज्ञा नास्ति समुद्बुद्धा, तावत्परस्य दर्शनम्।
इन्द्रियाणां स्वभावोऽयं, तत्र स्वार्थः प्रवर्तते॥

गुरु ने कहा–वत्स! जब तक प्रज्ञा नहीं जागती, तब तक व्यक्ति दूसरों को देखता रहता है। यह इन्द्रियों का स्वभाव है। वहां स्वार्थ प्रवर्तित होता है।

५०. कायोत्सर्गः

७६. जीवनं मंगलं भूयात्, प्रत्येकं मंगलं दिनम्।
कायोत्सर्गं यतो वेद्मि[1], सर्वदा मंगलं ततः॥

देव! आप दिन में बार-बार कायोत्सर्ग करते हैं, उसका उद्देश्य क्या है?

वत्स! प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि मेरा जीवन मंगलमय हो, मेरा प्रत्येक दिन मंगल में बीते। मैं इसलिए कायोत्सर्ग करता हूं कि जिससे सदा मंगल ही मंगल हो।

५१. क्वास्ति भेदरेखा?

७७. जीवने मरणे क्वास्ति, भेदरेखा समन्ततः।
न लब्धेयं मया स्वामिन्!, ततो जिज्ञासितं मम॥

भंते! मेरी एक जिज्ञासा है। जीवन और मृत्यु दो हैं। दोनों में भेदरेखा होनी चाहिए, वह कहां है? अभी तक वह मुझे मिली नहीं है।

७८. समाधिर्जीवनं भूयोऽसमाधिर्मरणं भवेत्।
जन्ममृत्युविभेदोऽयं, सम्मतोऽध्यात्मदर्शने॥

शिष्य! जन्म और मरण के बीच भेदरेखा है–समाधि। समाधि जीवन है और असमाधि मृत्यु। यह अध्यात्मदर्शन की सम्मति है।

---

१. वेद्मि (विद्‌–ज्ञाने, उत्तमपुरुष, एक वचन)–जानना, अनुभव करना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५२. को धीरः?

७९. लक्ष्याद् विचलितं कर्तुं, भयं दर्शयते जनः।
हीनभावं च निर्माति, तत्र धीरो न कम्पते॥

मनोविज्ञान के अनुसार किसी को लक्ष्य से विचलित करने के लिए लोग उसे भय दिखाते हैं, फिर उसमें हीनभावना उत्पन्न करते हैं। किन्तु धीर पुरुष उनसे–भय और हीनभावना से कभी विचलित नहीं होता।

५३. संघर्षस्य बीजानि

८०. अदृश्यो वर्तते भावो भाषा दृश्या ततः स्फुटम्।
संघर्षबीजमाकीर्णं, प्रकृतौ किं सृजेज्जनः॥

आर्यवर! इस दुनिया में हमेशा संघर्ष चलता है, इसका क्या कारण है?

विनेय! हमारी दुनिया में भाव अदृश्य हैं, वे कभी दिखाई नहीं देते। भाषा दृश्य है, वह सदा दिखाई देती है। इससे स्पष्ट है कि प्रकृति में संघर्ष के बीज बिखरे हुए हैं, तब वेचारा व्यक्ति क्या करे? वहां संवर्ष तो होगा ही।

५४. उपादानं निमित्तं च

८१. सापेक्षे सत्युपादाने, निमित्तं सहकारकम्।
निरपेक्षे ह्युपादाने, तदकिञ्चित्करं भवेत्॥

भंते! उपादान और निमित्त दोनों कारण विद्यमान हैं। उस स्थिति में निमित्त उपादान को प्रभावित करता रहेगा, फिर उपादान का विशेष मूल्य क्या है?

वत्स! उपादान सापेक्ष होता है, तभी निमित्त सहकारी बनता है। यदि उपादान निरपेक्ष हो तो निमित्त अकिञ्चित्कर बन जाता है।

५५. संघबद्धसाधनार्हः

८२. अहंकारो भवेत् शान्तः, कुर्यादात्मनिरीक्षणम्।
अपूर्णतामनुभवेत्, पारस्पर्यमपेक्षितम्॥

भगवन्! कौन व्यक्ति संघबद्ध साधना कर सकता है?

वत्स! वही व्यक्ति संघबद्ध साधना कर सकता है–

१. जिसका अहंकार शान्त हो जाता है।

२. जो आत्मनिरीक्षण करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. जो अपनी अपूर्णता का अनुभव करता है।
४. जो पारस्परिक सहयोग की अपेक्षा रखता है।

५६. धर्मस्य सत्यम्

८३. सत्यं धर्मस्य किं नाम, जिज्ञासितमिदं मम।
अशुभेन शुभस्याऽयं, संघर्षो धर्म उच्यते॥

गुरुवर! धर्म का सत्य क्या है? यह मेरी जिज्ञासा है।
भद्र! अशुभ के साथ शुभ का संघर्ष ही धर्म कहलाता है।

५७. अनुभवो जागृयात् कथम्?

८४. अकरणस्य संकल्पः, भावो मनोऽपि तद्गतम्।
परात्मना च तादात्म्यं, प्रस्फुटोऽनुभवस्तदा॥

किसी साधक ने पूछा—गुरुदेव! अभी तक अनुभव नहीं जागा है। उसे जगाने का उपक्रम क्या हो सकता है?

आचार्य ने कहा—शिष्य! उसके लिए तीन बातें आवश्यक हैं—१. अकरणीय कार्य न करने का संकल्प, २. संकल्प के अनुरूप भाव और मन का निर्माण, ३. परात्मा—अर्हत् के साथ तादात्म्य। जब ये तीनों बातें फलित होती हैं, तब अनुभव प्रकट होता है।

५८. को मनसः संचालकः?

८५. विपाकः कर्मणो यादृग्, यादृग् भावस्तमाश्रितः।
मनः प्रवर्तते तादृग्, भावाधीनं मनो यतः॥

भंते! लोकव्यवहार में कहा जाता है—'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।' क्या मन ही सबको चला रहा है?

वत्स! जो सुना जा रहा है, वह पूरा सत्य नहीं है। मन भी दूसरों के चलाए चलता है। कर्मशास्त्र के अनुसार कर्मों का जैसा विपाक होता है, वैसा भाव बनता है, जैसा भाव होता है, उसी के अनुरूप मन प्रवर्तित होता है, क्योंकि मन भाव के अधीन है। वह स्वतन्त्र नहीं है।

५९. योगी भोगी च

८६. यस्य जागर्त्ति लोकस्य, प्रत्याख्यानस्य चेतना।
स योगी स च भोगी यः, प्रत्याख्यानविवर्जितः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आर्यवर! क्या योगी और भोगी में कोई भेदरेखा खींची जा सकती है?

वत्स! हां, खींची जा सकती है। योगी वह होता है, जिसकी प्रत्याख्यान की चेतना जागृत रहती है और भोगी वह होता है, जो प्रत्याख्यान से शून्य होता है।

६०. कः समर्थः ?

८७. स समर्थोऽस्ति यस्मिन् स्यात्, प्रत्याख्यानस्य चेतना।
सोऽसमर्थो जनो योऽस्ति, प्रत्याख्यानविवर्जितः॥

देव! समर्थ कौन होता है और असमर्थ कौन होता है?

भद्र! जिस व्यक्ति में प्रत्याख्यान की–त्याग की चेतना होती है, वह समर्थ होता है और जो प्रत्याख्यान से रहित होता है, वह असमर्थ होता है।

६१. सहिष्णुताया अनुप्रेक्षा

८८. शरीरे मानसे भावे, सापेक्षेयं सहिष्णुता।
नाप्रियं सहते किञ्चित्, तपस्वी सहते क्षुधाम्॥

सहिष्णुता तीन प्रकार की होती है–शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक। ये तीनों सापेक्ष हैं। एक तपस्वी भूख को सह सकता है, किन्तु अप्रिय बात को किञ्चित् भी नहीं सह सकता। यह उसकी शारीरिक सहनशीलता अवश्य है, पर मानसिक और भावनात्मक सहनशीलता नहीं है।

६२. इदमपि चिन्तनीयम्

८९. किं शक्यं किमशक्यं मे, विकल्पे मा श्रमं कुरु।
यच्छक्यं तद्विकासाय, किं करोष्युचितं श्रमम्?॥

गुरुदेव! सफलता की कुञ्जी क्या है?

वत्स! सफलता की कुञ्जी है–उचित श्रम। मैं क्या कर सकता हूं और क्या नहीं कर सकता–इस चिन्तन में श्रम मत लगाओ। जो तुम्हारे लिए शक्य है, उसके विकास में क्या तुम उचित श्रम करते हो? यह सोचो।

६३. चारित्रस्य स्रोतः

९०. कुतश्चारित्रमायाति, विचारादथवा मतेः।
चारित्रस्रोतसो ज्ञानं, कर्तुमिच्छामि सम्प्रति॥

देव! मैं चारित्र के स्रोत का ज्ञान करना चाहता हूं। वह कहां से आता है–विचार से अथवा बुद्धि से?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९१. नो मतिर्नो विचारश्च, चारित्रस्रोत इष्यते।
विशुद्धा चेतनाऽन्तःस्था, चारित्रं जनयत्यसौ॥

वत्स! चारित्र का स्रोत न बुद्धि है और न विचार। उसका स्रोत है–आन्तरिक चेतना की निर्मलता। वह जितनी निर्मल होती है, उतना ही चारित्र प्रस्फुटित होता है।

६४. रसनायाः संयमः

९२. संयमो दमिता वृत्तिः, असंयमो बलक्षयः।
द्वयोरपि समाधानं, जिह्वासंयम इष्यते॥

भगवन्! मनोविज्ञान के अनुसार का दमन करना अच्छा नहीं है। यदि कामवासना का संयम किया जाए तो अच्छा नहीं है और यदि संयम न किया जाए तो बल क्षीण होता है। यह दोहरी समस्या है। इसका समाधान क्या हो सकता है?

वत्स! इन दोनों का समाधान है–जीभ का संयम। जीभ का संयम होने पर वासना का संयम सहज ही निष्पन्न हो जाता है।

६५. आचारशास्त्रम्

९३. अशस्त्रं काम[1]माचारः, शस्त्रं भावो विमोहितः।
शस्त्रं चाऽविरतिस्तस्माद्, दूरमाचारवान् मतः॥

आचार का तात्पर्य शस्त्ररहित होना अनुमत है। शस्त्र केवल तलवार, बन्दूक आदि ही नहीं है। भाव शस्त्र हैं और अविरति भी शस्त्र है, क्योंकि वे चेतना को विमोहित–मूढग्रस्त करते हैं। अतः जो व्यक्ति भावशस्त्र और अविरतिशस्त्र से दूर रहता है, वह आचारवान् होता है, ऐसा अभिप्रेत है।

९४. परमश्रेयसः प्राप्तिः, उद्देश्यं तस्य सम्मतम्।
आत्मैव परमं श्रेयः, आचारेण स लभ्यते॥

किसी ने महान् दार्शनिक सुकरात से पूछा–नीतिशास्त्र का उद्देश्य क्या है? सुकरात ने कहा–परम शुभ को पाना उसका उद्देश्य मान्य है। आत्मा ही परम शुभ है। वह प्राप्त होती है आचार से।

---

१. कामम्–अनुमत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६६. को नियामकः?

९५. आदर्शो वीतरागोऽस्ति, संयमस्तस्य साधनम्।
संयमस्य प्रवक्तारः, सन्ति विश्वनियामकाः॥

भंते! विश्व का नियामक कौन होता है?

वत्स! जैन धर्म का आदर्श है वीतराग। उस दिशा में बढ़ने का साधन है-संयम। जो व्यक्ति संयम के प्रवक्ता होते हैं, वे विश्व क नियामक होते हैं।

६७. हिंसा : प्रमादो वधो वा?

९६. सर्वे प्राणा न हन्तव्या अहिंसाऽसौ प्रकीर्तिता।
किं हिंसा वध एवास्ति, प्रमादो वा भवेदसौ?॥

९७. वधः कार्यं प्रमादश्च, कारणं नाम विद्यते।
अप्रमत्तो वधार्थं नो, नो सन्तापाय चेष्टते॥

भगवन्! मैंने आचारांग सूत्र के 'शस्त्रपरिज्ञा' अध्ययन को पढ़ा है। वहां षट्काय के वध को हिंसा कहा गया है। क्या किसी का वध करना ही हिंसा है अथवा प्रमाद भी हिंसा है?

वत्स! भगवान् महावीर की वाणी में किसी प्राणी का वध मत करो, यह व्यक्त अहिंसा है। प्रमाद हिंसा है और अप्रमाद अहिंसा है, यह इसकी पृष्ठभूमि में रहा हुआ है।

प्रमाद कारण है। वध या हिंसा उसका कार्य है। जो अप्रमत्त होता है, वह किसी का वध करने और किसी को संतप्त करने की चेष्टा नहीं करता।

६८. इच्छायाः रूपद्वयम्

९८. आत्मरक्षा चात्मतृप्तिः, मुख्यमिच्छाद्वयं भवेत्।
इच्छाकुले जगत्यस्मिन्, तदर्थं यतते जनः॥

यह जगत् इच्छाओं से व्याप्त है। समाजविज्ञान के अनुसार उसमें दो इच्छाएं प्रमुख हैं-आत्मरक्षा की इच्छा और आत्मतृप्ति-अधिकतम सुख पाने की इच्छा। मनुष्य इन दोनों के लिए सर्वाधिक प्रयत्न करता है।

६९. भोगस्य आसक्तिर्मात्रा च

९९. आसक्तेः कियती मात्रा, मात्रा भोगस्य कीदृशी?।
दृष्टिकोणः किंप्रकारः, भोगे चिन्त्यमिदं मुहुः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भंते! आज के भोगवादी युग में भोग के प्रति कैसा दृष्टिकोण होना चाहिए?

वत्स! इस विषय में दो बातों का बार-बार चिन्तन करना चाहिए-भोग के प्रति आसक्ति की मात्रा कितनी है और भोग की मात्रा कैसी है?

७०. कर्मणा को बध्यते?

१००. बद्धं कर्माणि बध्नन्ति, रोगो गच्छति रोगिणाम्।
अबद्धो न भवेद् बद्धो विरोगो नामयास्पदम्॥

गुरुदेव! कर्मपरमाणु कर्मबद्ध व्यक्ति को ही बांधते हैं और रोग रुग्ण व्यक्तियों को ही होते हैं। ऐसा क्यों?

वत्स! कर्म कर्म को खींचते हैं। जो कर्म से अबद्ध-मुक्त है, वह फिर कभी कर्म से बद्ध नहीं होता। इसी प्रकार रोग-रहित व्यक्ति में प्रतिरोधात्मक शक्ति प्रबल होती है। वह सहज स्वस्थ होता है। इसलिए उस पर रोग आक्रमण नहीं करता।

७१. को लभते सुखदुःखम्?

१०१. सुखं वाञ्छति सर्वोऽपि, दुःखं कोऽपि न वाञ्छति।
सुखार्थं यतते लोको दुःखं तथापि जायते॥

सभी सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता। मनुष्य सुख के लिए प्रयत्न करता है, फिर उसे दुःख क्यों प्राप्त होता है?

१०२. दुःखं मूर्च्छा मनुष्याणाम्, अमूर्च्छा वर्तते सुखम्।
मूढो दुःखमवाप्नोति, अमूढः सुखमेधते॥

मनुष्यों के लिए मूर्च्छा दुःख है, अमूर्च्छा सुख है। जो मूढ है, उसे दुःख प्राप्त होता है। जो अमूढ है, उसे सुख उपलब्ध होता है।

७२. दुःखस्य चक्रम्

१०३. लोकानां देहजं दुःखं, प्रधानं दृश्यते मतम्।
दुःखमात्मविदां मुख्यं, क्रोधादीनां समुद्भवः॥

सांसारिक लोग शारीरिक दुःख को ही प्रधान मानते हैं, ऐसा देखा जाता है। आत्मविद् व्यक्तियों की दृष्टि में मुख्य दुःख है-क्रोध आदि कषायों के आवेगों का उत्पन्न होना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७३. अस्तित्वस्य सनातनत्वं कदा ?

१०४. सत्ये यस्य धृतिः सिद्धा, मित्रमात्मा निजो ध्रुवम्।
निग्रहः स्वात्मना स्वस्य, तस्याऽस्तित्वं सनातनम्॥

जिसकी धृति सत्य में निहित है, उसकी अपनी आत्मा ही अपना मित्र है। जो अपने द्वारा अपने आपका निग्रह करता है, उसका अस्तित्व सनातन बना रहता है।

७४. परं सुखम्

१०५. असन्तोषः बहिःकांक्षा, सन्तोषः प्रीतिरात्मनि।
सन्तोषः परमं सौख्यं, असन्तोषोऽसुखं परम्॥

गुरुदेव! मैंने सुना है कि सन्तोष परम सुख है और असन्तोष परम दुःख है। ऐसा क्यों?

शिष्य! असन्तोष बाह्य की आकांक्षा है, सन्तोष आत्मा में प्रीति है। इसलिए सन्तोष परम सुख है और असंतोष परम दुःख है।

७५. समाधेर्मूल्यम्

१०६. दुःखगर्भं मोहगर्भं, ज्ञानगर्भमनुत्तरम्।
वैराग्यं त्रिविधं प्रोक्तं, ज्ञानिभिः परमर्षिभिः॥

भंते! मैं समाधि चाहता हूं। वह कैसे प्राप्त हो सकती है?

भद्र! वह प्राप्त हो सकती है वैराग्य से। परम ऋषियों तथा ज्ञानियों ने उसके तीन प्रकार बतलाए हैं–दुःख से होने वाला वैराग्य, मोह से होने वाला वैराग्य और ज्ञान से होने वाला वैराग्य। तीनों में ज्ञानगर्भ वैराग्य अनुत्तर है।

७६. अन्तर्बहिश्च कः ?

१०७. प्रमत्तो वञ्चको दृष्टासक्तः प्रज्वलिताशयः।
दुःखं परकृतं जानन्, बहिस्तिष्ठति मानवः॥

भंते! भीतर कौन है और बाहर कौन है?

वत्स! जो प्रमत्त है, वंचना करता है, दृष्ट (इन्द्रिय-विषय) में आसक्त रहता है, जिसके कषाय प्रज्वलित रहते हैं और जो दुःख को परकृत मानता है, वह बाहर है।

१०८. अप्रमत्तोऽवञ्चकश्च, दृष्टाऽसक्तः शमं गतः।
दुःखमारम्भजं जानन्, अन्तस्तिष्ठति मानवः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो अप्रमत्त है, अवंचक है, दृष्ट (इन्द्रिय-विषय) के प्रति अनासक्त है, जिसके कषाय उपशान्त हैं और जो दुःख को आरम्भज-हिंसामूलक मानता है, वह भीतर है।

७७. संविभागस्य सिद्धिः

१०९. संविभागो निर्ममत्वं, मुक्त्वा क्वापि न सिद्ध्यति।
ममत्वचेतना तेन, परिष्कार्या मुमुक्षुभिः॥

भंते! भगवान् ने संविभाग को बहुत महत्त्व दिया है। उसकी सिद्धि किस प्रकार हो सकती है?

वत्स! निर्ममत्व की सिद्धि के बिना संविभाग कहीं भी सिद्ध नहीं होता। अतः मुमुक्षु को ममत्व-चेतना का परिष्कार करना चाहिए।

११०. निर्ममत्वस्य संसिद्ध्यै, व्यवहारोऽपि तादृशः।
कार्यो व्यवहारशून्यस्य, सिद्धान्तो नार्थवान् भवेत्॥

निर्ममत्व की संसिद्धि के लिए व्यवहार भी निर्ममत्व के अनुरूप होना चाहिए। व्यवहारशून्य व्यक्ति का सिद्धान्त सार्थक नहीं होता।

७८. श्रेयः प्रेयश्च

१११. कषोपला विवर्तन्ते, श्रेयः प्रेयोऽभिबाधते।
देहस्थाने स्थितश्चात्मा, जाते सम्यक्त्वदर्शने॥

देव! सम्यक्त्व की प्राप्ति से जीवन में क्या रूपान्तरण होता है?

विनेय! उससे जीवन की कसौटियां बदल जाती हैं। मिथ्यादर्शन के समय प्रेय श्रेय को तिरोहित करता है, आत्मा देह से आवृत रहती है। सम्यक्त्व की प्राप्ति से प्रेय श्रेय के द्वारा तिरोहित हो जाता है और कर्तव्य की कसौटी श्रेय और आत्मा बन जाती है।

७९. अन्तरात्मा बहिरात्मा च

११२. बहिरात्मा तु सर्वत्र, शरीरमनुवर्तते।
अन्तरात्मा शरीरञ्च, पुष्णात्यात्मानमीक्षते॥

गुरुदेव! बहिरात्मा और अन्तरात्मा में क्या अन्तर है?

शिष्य! बहिरात्मा सर्वत्र शरीर का अनुवर्तन करता है, अन्तरात्मा शरीर को पोषण देता है, किन्तु उसकी दृष्टि आत्मा पर लगी रहती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८०. रागो विरागश्च

११३. समाजस्य परं तत्त्वं, राग इत्यभिधीयते।
समाजं समतिक्रान्तः, विरागो व्यक्तिमाश्रितः॥

भंते! समाज का परम तत्त्व क्या है?

शिष्य! समाज का परम तत्त्व है–राग। जब व्यक्ति समाज-चेतना से हटकर अपनी ओर मुड़ता है, तब उसके लिए विराग परम तत्त्व बन जाता है।

११४. विरागेण विना रागो विकारान् वितनोत्यलम्।
तेनादर्शो विरागः स्याद्, रागिणामपि देहिनाम्॥

विरागशून्य राग विकार को बढाता है। अतः रागी व्यक्तियों के लिए भी विराग आदर्श होता है।

८१. श्रुतं समाधिश्च

११५. तज्ज्ञानं न मतं ज्ञानं, समाधिर्नैव विद्यते।
समाधिश्च कथं प्राप्यः[१], विना ज्ञानमनाविलम्॥

शिष्य ने जिज्ञासा की–देव! क्या समाधि के लिए ज्ञान आवश्यक है?

आचार्य ने कहा–भद्र! हां, आवश्यक है। उस ज्ञान को ज्ञान नहीं माना जाता, जिसमें समाधि न हो। विशुद्ध ज्ञान के बिना समाधि कैसे प्राप्त हो सकती है? तात्पर्य की भाषा में विशुद्ध ज्ञान ही समाधि है, मूर्च्छा या ज्ञानशून्यता समाधि नहीं है।

८२. ज्ञानं क्रिया च

११६. अवशेन्द्रियचित्तानां, हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरणप्रायो, ज्ञानं भारः क्रियां विना॥

भंते! क्या चित्त की निर्मलता के लिए ज्ञान और क्रिया–दोनों जरूरी हैं?

वत्स! हां, दोनों जरूरी हैं। जिसके इन्द्रियां और मन वश में नहीं है, उसका आचरण हाथी के स्नान की तरह होता है। हाथी पानी में नहाता है, बाहर आते ही सूंड से कीचड़ उछाल कर अपने शरीर को भर लेता है। इसी प्रकार आचरण के बिना ज्ञान कुरूप व्यक्ति के आभरण के समान भारभूत होता है।

---

१. प्राप्यः (प्राप्तुं योग्यः)–प्राप्त करने योग्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८३. कः सत्याग्रही कश्चात्मजीवी ?

११७. सत्यं साक्षात्कृतं येन, स हि सत्याग्रही भवेत्।
आत्मा साक्षात्कृतो येन, स एवात्मनि जीवति॥

भंते! सत्याग्रही कौन होता है और आत्मजीवी कौन होता है?

वत्स! जिसने सत्य का साक्षात्कार कर लिया है, वही सत्याग्रही हो सकता है और जिसने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है, वही आत्मजीवी होता है–आत्मा में जीता है।

११८. आत्मदर्शी जनश्चैव, त्यागीन्द्रियजयी भवेत्।
अनात्मदर्शिनो लोको भिन्नः स्यादात्मदर्शिनः॥

आत्मदर्शी व्यक्ति ही त्यागी और इन्द्रियजयी हो सकता है। आत्मदर्शी का लोक अनात्मदर्शी के लोक से भिन्न होता है।

८४. द्विधा मूर्खता

११९. संयमश्चित्तशुद्धिश्च, बन्धः कर्मरसो मतः।
प्रथमं बालभावं यः, त्यजेत् त्यजति सोऽपरम्॥

भंते! मनुष्य गलती करता है, फिर वह उसे छिपाता है। यह उसकी दोहरी मूर्खता है। उससे कैसे बचा जा सकता है?

शिष्य! उसके चार उपाय हैं–संयम, चित्त–शुद्धि, कर्म–बन्ध और उसके फल के प्रति जागरूकता। जो पहली बालभाव मूर्खता–अज्ञानजन्य मूर्खता को छोड़ देता है, वह दूसरी मूर्खता को भी छोड़ देता है।

८५. अहिंसायाः शस्त्रम्

१२०. अग्रतः चतुरो वेदाः, पृष्ठतः सशरं धनुः।
अहिंसा पुरतः शस्त्रं, पृष्ठतः शस्त्रमायसम्॥

जब महर्षि परशुराम चलते थे, तब उनके आगे–आगे चार वेद और पीछे–पीछे बाण संधा हुआ धनुष रहता था। आचार्यश्री तुलसी ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहते हैं कि आगे अहिंसा का शस्त्र रहे और पीछे लोह का शस्त्र रहे। इसका तात्पर्य है कि जीवन में शस्त्र की प्रधानता न हो, अहिंसा की प्रधानता हो। यही अहिंसा की प्रतिष्ठा का सूत्र है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८६. किं सारम् ?

१२१. तृप्तिदं स्वास्थ्यदं शश्वच्चेतःप्रसत्तिकारकम्।
शक्तिदं शान्तिदं पूतं, सारमित्यभिधीयते॥

गुरुदेव! इस असार संसार में सार किसे कहा जाए?

वत्स! जो सदा तृप्ति देने वाला है, स्वास्थ्य देने वाला है, चित्त को प्रसन्न करने वाला है, शक्ति देने वाला है, शान्ति देने वाला है और जो पवित्र है, उसे सार कहा जाता है।

८७. मौनं कदा?

१२२. ज्ञानिनां पर्षदि प्रायो मौनमज्ञानिनो वरम्।
अज्ञानिनां समक्षे तु, ज्ञानी भवति मौनभाक्॥

भंते! ज्ञानी को मौन कब रहना चाहिए और अज्ञानी को मौन कब रहना चाहिए?

शिष्य! ज्ञानियों की सभा में अज्ञानी का मौन रहना अच्छा है और अज्ञानियों के सामने ज्ञानी का मौन हो जाना अच्छा है।

१२३. अज्ञानं स्वस्य यत्राऽस्ति, तत्र मौनं हि शोभनम्।
विवादो वर्धते यत्र, मौनं तत्राऽतिशोभनम्॥

जहां स्वयं का अज्ञान झलकता हो, वहां मौन होना ही अच्छा है। जहां विवाद बढ़ता हो, वहां मौन होना बहुत अधिक अच्छा है।

८८. विभिन्नमतयो लोकाः

१२४. यथार्थग्राहिणः केचित्, केचिदस्थिरबुद्धयः।
केचिदाग्रहिणो लोकाः, कदाग्रहपराः परे॥

१२५. विभिन्नमतयो लोका, इति सत्यं सनातनम्।
सर्वेषां तुल्यता वत्स!, व्यवहारे न सम्मता॥

शिष्य गुरु की उपासना में स्थित था। उसने जिज्ञासा की—भंते! व्यवहार में सबकी समानता नहीं है, ऐसा क्यों?

आचार्य ने कहा—वत्स! कुछ लोग यथार्थग्राही होते हैं, तो कुछ अस्थिर बुद्धि वाले होते हैं। कुछ आग्रही होते हैं, तो कुछ कदाग्रह में तत्पर रहते हैं। इस प्रकार लोग भिन्न-भिन्न मति वाले होते हैं। यह सनातन सत्य है। इसलिए व्यवहार में सबकी समानता सम्मत नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८९. भावो भाषा च

१२६. भावोऽन्तर्विद्यते पुंसां, भाषा व्यक्तिं नयत्यमुम्।
द्वयोरपि सुधाभावं, प्राप्तः कश्चिन्महामनाः ॥

भंते! भाव कहां रहते हैं? उन्हें कौन प्रकट करता है?

वत्स! भाव मनुष्य के अन्तर्जगत् में रहते हैं, भाषा उनको अभिव्यक्ति देती है।

भंते! क्या भाव और भाषा दोनों अच्छे ही होते हैं?

वत्स! कभी भाव अच्छा होता है, भाषा अच्छी नहीं होती। कभी भाषा अच्छी होती है, भाव अच्छा नहीं होता। भाव और भाषा–दोनों अमृतमय हों, ऐसा संयोग किसी महामना को ही प्राप्त होता है।

९०. तदा जागर्त्ति नरः

१२७. संकल्पो नाम जागर्त्ति, जागर्त्ति मानवस्तदा।
असंकल्पे क्व साफल्यं, क्व संकल्पे तथा परम् ?॥

गुरुदेव! मनुष्य कब जागता है?

शिष्य! भीतर में जब संकल्प जागता है, तब आदमी जागता है–उसकी कार्य-शक्ति जाग जाती है। बिना संकल्प के सफलता कहां है और संकल्प में असफलता कहां है?

९१. किं दुर्लभः सुलभश्च ?

१२८. प्रमोदो दुर्लभो लोके, ईर्ष्याऽस्ति सुलभा नृणाम्।
गुणे संभागिता नेष्टा, दोषे संभागिता प्रिया॥

प्रभो! मनुष्य के लिए दुर्लभ क्या है? सुलभ क्या है?

वत्स! प्रमोद भावना–दूसरों की विशेषता देखकर प्रमुदित होना मनुष्य के लिए दुर्लभ है और ईर्ष्या सुलभ है। मनुष्य की प्रकृति विचित्र है। वह गुण में संभागी होना नहीं चाहता, दोष में संभागी होना उस प्रिय लगता है।

९२. श्रुतपरम्परा

१२९. अविच्छिन्ना चिरं भूयात् श्रुतज्ञानपरम्परा।
आचार्यस्येति दायित्वं, तथा चिन्ता तथा कृतिः॥

भंते! श्रुतज्ञान की परम्परा चिरंजीवी कैसे रह सकती है?

वत्स! आचार्य वैसा चिन्तन एवं वैसा कार्य करे, जिससे श्रुतज्ञान की परम्परा अविच्छिन्न और चिरकालिक रह सके–यह आचार्य का दायित्व है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९३. श्रुतेन किम् ?

१३०. श्रुतेन जायते पुंसां, व्युद्ग्रहस्य विमोचनम्।
ज्ञानं यथार्थभावानां, तेनाऽध्ययनमाश्रितम्॥

गुरुदेव! श्रुत से क्या प्राप्त होता है?

भद्र! श्रुत से कलह का विमोचन-समाप्ति होता है, यथार्थभावों का ज्ञान होता है, इसलिए श्रुत का आलम्बन लिया जाता है।

९४. का वचनसम्पदा ?

१३१. आदेयं वचनं पुण्यं, मधुरं वचनं तथा।
अनिश्चितमसंदिग्धं, एषा वचनसम्पदा॥

आर्यवर! वचन की सम्पदा क्या है?

वत्स! आदेय वचन बोलना, पवित्र वचन बोलना, मधुर वचन बोलना, अनिश्चित विषय में अनिश्चित बोलना, निश्चित विषय में असंदिग्ध बोलना-यह सब वचन की सम्पदा है।

९५. द्विविधं सत्यम्

१३२. अस्तिसत् वाग्गतं सत्यं, तत्सापेक्षमुदीरितम्।
वाचा यत् प्रतिपाद्यं स्यान्निरपेक्षं भवेन्न तत्॥

भंते! सत्य के कितने प्रकार हैं?

वत्स! सत्य के दो प्रकार हैं-अस्तित्व सत्य और वाणीगत सत्य। वाणी द्वारा जो सत्य प्रतिपाद्य होता है, वह सापेक्ष होता है, निरपेक्ष नहीं होता।

९६. सुखस्य भेदाः

१३३. अनुभूतौ सुखं तस्य, हेतवः पुद्गला अमी।
सुखं निर्हेतुकं शश्वद् आत्मभावे प्रतिष्ठितम्॥

आर्य! सुख के कितने प्रकार हैं?

वत्स! उसके दो प्रकार हैं-पौद्गलिक सुख और आत्मिक सुख। पौद्गलिक सुख की अनुभूति में पुद्गल हेतु बनते हैं। आत्मिक सुख निर्हेतुक होता है। वह शाश्वत रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९७. क्व सुखम् ?

१३४. कस्याऽस्ति सुखमाहारे, परस्याऽभोजने सुखम्।
सुखस्य चास्ति नानात्वं, भोगे त्यागे तथैव च॥

कोई भोजन करने में सुख मानता है, कोई भोजन छोड़ने में सुख मानता है। सुख की अनुभूति के नाना प्रकार हैं। कहीं सुख भोग से जुड़ा होता है, कहीं त्याग से।

९८. आत्मकर्तृत्ववादः

१३५. कर्तृत्वं नात्मनश्चास्ति, कर्मणः किं प्रयोजनम् ?।
कर्तृत्वमात्मनश्चेत् स्यात्, कर्म तत्सार्थकं भवेत्॥

भंते! कर्मों का प्रयोजन कब सार्थक होता है?

वत्स! यदि आत्मा का कर्तृत्व न हो, तो कर्मों का प्रयोजन ही क्या? यदि आत्मा का कर्तृत्व माना जाता है, तो कर्म का सिद्धांत सार्थक होता है।

१३६. प्रधानमात्मकर्तृत्वं, प्राधान्यं नैव कर्मणः।
आत्मकर्तृत्ववादो हि, सिद्धान्त आत्मवादिनाम्॥

भंते! प्रधानता कर्तृत्व की होती है अथवा कर्म की?

वत्स! आत्मा का कर्तृत्व ही प्रधान है, कर्मों की प्रधानता नहीं है। आत्मवादी दर्शनों का सिद्धान्त है–आत्मकर्तृत्ववाद। कर्मवाद उसका अनुवर्ती सिद्धांत है।

९९. ज्ञानाचरणयोः कस्य प्राधान्यम्?

१३७. ज्ञानं मुख्यं प्रभो! यद् वा, मुख्य आचार उच्यते।
द्वयोस्तुला[1] न गौणत्वं, मुख्यत्वं कस्यचिद् भवेत्॥

प्रभो! ज्ञान मुख्य है अथवा आचार?

शिष्य! दोनों तुल्य हैं। उनमें न किसी की मुख्यता है और न किसी की गौणता।

१३८. ज्ञानमाचारशून्यं तु, पत्रादिविकलस्तरुः।
आचारो ज्ञानशून्यस्तु, मूलशून्यः स कल्प्यते॥

गुरुदेव! क्या कोरा ज्ञान अथवा कोरा आचार आपकी दृष्टि में सम्मत है?

वत्स! आचारशून्य ज्ञान वैसा ही है, जैसे पत्ते, फूल आदि के बिना वृक्ष और ज्ञानशून्य आचार वैसा ही है, जैसे मूल (जड़) के बिना वृक्ष।

१. तुला–समान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१३९. ज्ञानं मूलं रसस्रोत:, आचार: फलमिष्यते।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च, तथौदासीन्यमुच्छ्रितम्[१]॥

भंते! ज्ञान और आचार में मूल क्या है और फल क्या है?

वत्स! ज्ञान मूल है, वह रस का स्रोत है। आचार उसका फल है। प्रवृत्ति, निवृत्ति और उदार औदासीन्य—ये सब फल के नानारूप हैं।

१००. अनेकान्तवाद:

१४०. द्वैतवादस्य साङ्गत्यं, नाऽनेकान्तं विना भवेत्।
भेद: स्वभावजो मान्य:, सहावस्थानजो[२] न वै[३]॥

विभो! क्या द्वैतवाद और अनेकान्त में कोई संबंध है?

वत्स! अनेकान्त के बिना द्वैतवाद की संगति नहीं होती। भेद स्वभाव से मान्य होता है, सहावस्थान से नहीं, पर सहावस्थान और भेद—ये दोनों एक साथ अनेकान्त के द्वारा ही मान्य होते हैं।

१०१. भाषाविवेक:

१४१. आग्रहो नैव नो माया, नो हिंसा नाऽहितं भवेत्।
नो निश्चय: संदिहाने, परीक्षाऽसौ वचोगता॥

गुरुदेव! बोलने में किन बातों का विवेक जरूरी है?

वत्स! बोलने में न तो आग्रह हो और न माया हो। वचन ऐसा भी न हो, जिससे किसी की हिंसा होती हो, अहित होता हो। वह संदिग्ध विषय में निश्चयात्मक न हो—ये सब वाणी की कसौटियां हं।

१०२. सर्वं वक्तुं न शक्यम्

१४२. अवक्तव्य: पदार्थश्चाऽनेकधर्मात्मको यत:।
एतत् पदार्थमीमांसाक्षेत्रे व्यवहृतं भवेत्॥

१४३. अवक्तव्यमिदं दृष्टं, श्रुतं सर्वं न कथ्यताम्।
एतदाचारमीमांसाक्षेत्रे स्यादुपयोजितम्॥

शिष्य—भगवन्! क्या सब कुछ कहा जा सकता है?

आचार्य—नहीं, वत्स! अवक्तव्य के दो क्षेत्र हैं—पदार्थमीमांसा और आचार-

---

१. उच्छ्रितम्—उदार।
२. सहावस्थानम्—साथ में रहना।
३. वै—निश्चयवाचक अव्यय।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मीमांसा। पदार्थ अनेक धर्मात्मक होता है। सब धर्मों को एक साथ नहीं कहा जा सकता, इसलिए वह अवक्तव्य है। पदार्थमीमांसा के क्षेत्र में यह अवक्तव्य व्यवहृत होता है।

सब कुछ देखा हुआ और सब कुछ सुना हुआ नहीं कहना चाहिए—यह अवक्तव्य आचारमीमांसा के क्षेत्र में उपयुक्त होता है।

१०३: पुरुषार्थचतुष्टयी

१४४. कामो नो बाधते योऽर्थं, सोऽर्थः कामं न बाधते।
तौ च धर्मं न बाधेते, धर्मश्च तौ न बाधते॥

शिष्य—गुरुदेव! पुरुषार्थ के चार अंग हैं—काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष। इनमें परस्पर विरोध है। क्या इस विरोध का परिहार किया जा सकता है?

आचार्य—वत्स! इस विरोध का परिहार करने के लिए वैदिक चिंतन में सीमा का निर्धारण किया गया है—काम का पुरुषार्थ उतना ही वांछनीय है, जो अर्थ को बाधित न करे। अर्थ का पुरुषार्थ उतना ही वांछनीय है, जो काम को बाधित न करे। काम और अर्थ का पुरुषार्थ उतना ही वांछनीय है, जो धर्म को बाधित न करे और धर्म का पुरुषार्थ उतना ही वांछनीय है, जो काम और अर्थ को बाधित न करे।

१४५. न बाधां जनयन्त्येते, परस्परमबाधिताः।
वैदिको व्यवहारोऽयं, पुरुषार्थचतुष्टये॥

आचार्य ने पुनः कहा—ये तीनों पुरुषार्थ परस्पर अबाधित होकर बाधा उत्पन्न नहीं करते। यह पुरुषार्थचतुष्टय के विषय में वैदिक व्यवहार है।

१०४. धर्मस्य द्वे रूपे

१४६. उपादानस्य दृष्ट्या तु, धर्मोऽसौ शाश्वतो मतः।
धर्मस्य नियमास्तावद् भवन्ति परिवर्तिताः॥

भंते! धर्म शाश्वत है या अशाश्वत?

वत्स! उपादान की दृष्टि से धर्म शाश्वत है। धर्म के नियम परिवर्तित होते हैं, बदलते रहते हैं। अतः नियम की दृष्टि से वह अशाश्वत भी है।

१४७. विशुद्धिश्चेतनायाश्च, वीतरागदशाऽथवा।
उपादानञ्च धर्मस्य, सम्मतं निश्चये नये॥

भंते! वह उपादान क्या है?

वत्स! वह उपादान है—चेतना की विशुद्धि या वीतरागदशा। निश्चय नय में धर्म का यही उपादान सम्मत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१०५. किमर्थमुपासना?

१४८. आत्मबोधो विकासश्च, गुणानां जायते यतः।
परिष्कारः समाधिश्च, सा नामोपासना भवेत्॥

प्रभो! उपासना का महत्त्व क्यों है?

वत्स! ज्ञानी की उपासना करने से आत्मबोध प्राप्त होता है, गुणों का विकास होता है, वृत्तियों का परिष्कार होता है और समाधि मिलती है। जिससे ये सब प्राप्त होते हैं, उसका नाम है उपासना अर्थात् ज्ञानी की सन्निधि में रहना।

१०६. नमस्कारमंत्रं परममंगलम्

१४९. मंगलं ज्ञानमेवास्ति, मंगलं दर्शनं तथा।
मंगलं परमानन्दः, मंगलं शक्तिरुच्यते॥

गुरुदेव! नमस्कार महामंत्र सब मंगलों में श्रेष्ठ मंगल क्यों है?

शिष्य! ज्ञान मंगल है। दर्शन मंगल है। परम आनन्द मंगल है और शक्ति मंगल है। इस महामंत्र में इन चारों का समावेश है, इसलिए यह श्रेष्ठ मंगल है।

१५०. ज्ञानायास्तु नमः पुण्यं, दर्शनाय नमोनमः।
आनन्दाय नमस्तत् स्यात्, शक्तये मंगलं परम्॥

भंते! नमस्कार किसे और क्यों करना चाहिए?

वत्स! ज्ञान को नमस्कार, दर्शन को नमस्कार, आनन्द को नमस्कार और शक्ति को नमस्कार, क्योंकि ये सब उत्कृष्ट मंगल हैं, सब पापों का नाश करने वाले हैं।

१०७. तन्त्रम् : मन्त्रम्

१५१. तन्त्रं मन्त्रेण संयुक्तं, स्वतन्त्रान् जनयेज्जनान्।
तन्त्रं मन्त्रविहीनं तु, यन्त्राण्युत्पादयेच्चिरम्॥

विभो! क्या तन्त्र का मन्त्रयुक्त होना अनिवार्य है?

वत्स! जो तन्त्र (शासन) मन्त्र–मननशक्ति (रहस्यपूर्ण शक्ति) से संयुक्त होता है, वह मनुष्यों को स्वतन्त्र बनाता है। जो तन्त्र मन्त्रशक्ति से विहीन होता है, वह मनुष्य को यन्त्र बनाता है–परतन्त्र बनाता है।

१०८. तुलसी तुलसीसमः

१५२. गुरुर्भवेद् यदि गुरुः, तुलसीसदृशो भवेत्।
हिताय येन शिष्याणां, जीवनं सुसमर्पितम्॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरु यदि गुरु हो तो वह आचार्य तुलसी जैसा हो, जिन्होंने शिष्यों के हित के लिए जीवन को सुसमर्पित किया है।

१५३. गगनं गगनाकारं, सागरः सागरोपमः।
गुरुगौरवसीमायां, तुलसी तुलसीसमः॥

आकाश आकाश के आकार वाला होता है और समुद्र समुद्र के सदृश होता है। गुरुगौरव की सीमा में आचार्य तुलसी तुलसी के समान हैं–उपमातीत हैं।

१५४. सौभाग्यं साहसं शक्तिः, तेजः कारुण्यमद्भुतम्।
ज्ञानं भक्तिश्च निर्माणं, संहतौ तुलसी भवेत्॥

सौभाग्य, साहस, शक्ति, तेज, अद्भुत करुणा, ज्ञान, भक्ति और निर्माण–इन सबकी संहति का नाम है–आचार्य तुलसी।

१०९. अध्यात्मचतुष्पदी

१५५. द्रष्टाभावः सत्यनिष्ठा, प्रतिकूलसहिष्णुता।
आस्था स्वभावनिर्माणे, स्यादध्यात्मचतुष्पदी॥

गुरुदेव! अध्यात्म क्या है?

वत्स! द्रष्टाभाव, सत्यनिष्ठा, प्रतिकूल परिस्थिति को सहन करना तथा साथ-साथ अनुकूल परिस्थिति को भी सहना और परिवर्तनीय स्वभाव को बदलने तथा नए स्वभाव के निर्माण में आस्था–यह अध्यात्म की चतुष्पदी है।

११०. सुखदुःखयोर्मूलम्

१५६. सुखं दुःखं तयोर्मूलं, विचारश्च वरावरः।
तयोर्मूले स्थितो भावः, अन्तःशुद्धस्तथेतरः॥

भंते! सुख-दुःख का मूल कारण क्या है?

शिष्य! सुख का मूल कारण है–प्रशस्त विचार और दुःख का मूल कारण है–अप्रशस्त विचार। उन दोनों के मूल में है–भीतर में स्थित भाव। वह शुद्ध और अशुद्ध–दोनों प्रकार का होता है।

१११. अध्यात्मसूत्रम्

१५७. आचारो व्यवहारश्च, भावचिन्तनसंभवः।
असौ स्यादात्मनः प्रेक्षा, स्यादध्यात्मिदं महत्॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भंते! अध्यात्म का सूत्र क्या है?

वत्स! अपने आपकी प्रेक्षा करना–अपने आपको देखना, इसका नाम है अध्यात्म। आचार और व्यवहार के दो स्रोत हैं–भाव और चिन्तन। कौनसा आचार और व्यवहार किस भाव और चिन्तन से उपजा है, इसकी सूक्ष्मता से प्रेक्षा करना अध्यात्म का महान् सूत्र है।

११२. स्वभावपरिवर्तनस्य सूत्राणि

१५८. आस्थाबन्धो विवेकश्च, संकल्पश्च मनोबलम्।
मनुष्ये तेन सामर्थ्यं, स्वभावपरिवर्तने॥

प्रभो! स्वभाव-परिवर्तन के सूत्र क्या हैं?

वत्स! वे सूत्र हैं–आस्थाबन्ध (सुदृढ़ आस्था), विवेक, संकल्प और मनोबल-ये चार सूत्र ही मनुष्य में स्वभाव-परिवर्तन का सामर्थ्य पैदा करते हैं।

११३. मानसिकसंतुलनस्य घटकाः

१५९. सतर्कता विचारश्च, व्यवहारो मनोदशा।
मनःसंतुलनस्यैते, चत्वारो घटकाः स्मृताः॥

आर्यवर! मानसिक संतुलन के घटक कौनसे हैं?

वत्स! उसके चार घटक हैं–जागरूकता, विचार, व्यवहार और मनोदशा।

११४. हृदयपरिवर्तनम्

१६०. कस्य कः परिणामः स्यात्, क्रिया चाप्यनियन्त्रिता।
धारणा क्रियते मिथ्या, मनोदशाप्यसंयता॥

१६१. जायतेऽस्यामवस्थायां, दुष्करं परिवर्तनम्।
क्रियाविपाकयोश्चिन्ता, हृदयं परिवर्तयेत्॥

गुरुदेव! किस अवस्था में वृत्ति का परिवर्तन कठिन है और उसे बदलने की भूमिका क्या हो सकती है?

वत्स! किस क्रिया का क्या परिणाम होता है, इसका निश्चय न हो, किस परिणाम की हेतुभूत क्रिया क्या होती है, यह भी अनिश्चित हो, कर्म और उसके परिणाम की धारणा मिथ्या हो और मनोदशा भी संयत न हो–इस अवस्था में वृत्ति का परिवर्तन होना कठिन प्रतीत होता है।

क्रिया और उसके विपाक का चिन्तन हृदय-परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

११५. कीदृशो दिग्गजः?

१६२. आलानं स्याद् निबन्धाय, सदाचारकृतेऽङ्कुशः।
सद्गजः दिग्गजः स्वामिन्!, भूयासं तेऽनुभावतः॥

हाथी को बांधने का स्थान है–आलान और उसको नियन्त्रित करने का साधन है–अंकुश। मानसिक व्यवस्था के लिए आलान और सदाचार के लिए अंकुश प्राप्त कर मैं दिग्गज–श्रेष्ठ हस्ती बनूं। स्वामिन्! इस कार्य में आपका अनुग्रह बहुत अपेक्षित है।

(वि. सं. २०४५, फाल्गुन कृष्णा १ से २०४६ माघ शुक्ला पूर्णिमा पर्यन्त आयोजित योगक्षेमवर्ष (२१ फरवरी, १९८९ से ९ फरवरी १९९०) लाडनूं, जैन विश्व भारती)

□□□

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चमः उच्छ्वासः

आशुकवित्वम्

पण्डित रघुनन्दनजी का तेरापंथ धर्मसंघ में संस्कृत विद्या के विकास में बहुत योग रहा। वे आशुकवि थे। उनके आशुकवित्व को देखकर मेरे मन में भी आशुकविता करने की भावना जागृत हुई। मैंने आचार्य तुलसी के सामने अपनी भावना रखी उन्होंने प्रोत्साहन दिया और आशुकवित्व का कार्य प्रारंभ हो गया।

वि. सं. २००६ में प्रथम बार मैंने आशुकवित्व का प्रयोग किया। उससे आचार्यवर बहुत प्रसन्न हुए और इस अभ्यास को आगे बढ़ाने के लिए बहुत प्रोत्साहन दिया।

आचार्य तुलसी ने लम्बी-लम्बी यात्राएं की। उन यात्राओं में आशुकवित्व का प्रयोग बहुत चला। जितने श्लोक बनाएं, वे सब लिखे नहीं गए। कुछेक लिखे गए हैं, जो प्रस्तुत समुच्छ्वास में संकलित हैं। इस समुच्छ्वास के चार विभाग हैं-

- समस्यापूर्तिरूप आशुकवित्व
- प्रदत्तसमस्यानुबद्ध आशुकवित्व
- प्रदत्तविषयानुबद्ध आशुकवित्व
- प्रसंगानुबद्ध आशुकवित्व।

१. आशुकवित्वम् : समस्यापूर्त्तिरूपम्

(१. गीतं न गायतितरां युवतिर्निशासु)

१. [1]श्रोतुं विहाय शशिनं मम गानमेणो[2],
भूमौ समेष्यति तदा स विधुर्निरङ्कः[3]।
भूत्वा तुलिष्यति मुखेन ममेति भीत्या,
गीतं न गायतितरां युवतिर्निशासु॥

१. वसन्ततिलका।
२. एणः-हरिण।
३. निरङ्कः-कलंकशून्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चन्द्रमा में रहने वाला हरिण जब मेरे गान को सुनने के लिए चन्द्रमा को छोड़कर इस भूमि पर आ जाएगा, तब वह चन्द्रमा कलंकशून्य हो जाएगा और उसकी तुलना मेरे मुख से की जाएगी–इस भय से युवति रात्रियों में गीत नहीं गाती है।

(वि. सं. १९९८, पौष मास (दिसम्बर, १९४१), राजलदेसर)

(२. किं तया किं तया किं तया किं तया?)

१. [1]स्वीकृता साधुता भूरि शिक्षा श्रिता,
विप्लुतिः[2] प्रोज्झिता संयता वाक् परम्।
यावदाध्यात्मिकं ज्ञानमायाति न,
किं तया किं तया किं तया किं तया?॥

साधुता को स्वीकार किया, विपुल शिक्षा प्राप्त की, चंचलता को छोड़ा और वाणी को अत्यधिक संयत बनाया, किन्तु जब तक आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता, तब तक साधुता प्राप्त करने से क्या? विपुल ज्ञान प्राप्त करने से क्या? चंचलता को छोड़ने से क्या? और वाणी को संयत बनाने से क्या?

२. अम्बरे स्थायिकोत्पत्तिरम्भोनिधौ,
धिष्ण्यका[3]च्छादिनी शक्तिरूर्ध्वंगतिः।
चेज्जलं दास्यते नो त्वया वारिद!,
किं तया किं तया किं तया किं तया?॥

हे मेघ! तुम आकाश में रहते हो। तुम्हारी उत्पत्ति समुद्र से हुई है। तुम्हारे में ग्रहगण (सूर्य) को ढंकने की शक्ति है। तुम ऊंची गति करने वाले हो। इतना होने पर भी यदि तुम नहीं बरसते, तो तुम्हारे आकाश में रहने से क्या? समुद्र से उत्पन्न होने से क्या? ग्रहगण (सूर्य) को ढंकने की शक्ति से क्या? और ऊंची गति करने से क्या?

(वि. सं. १९९८, पौष मास (दिसम्बर, १९४१), राजलदेसर)

(३. वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुषु)

१. [4]जलाशयानाममृतोपमं खलु पिबन्ति नीरं न तृषातुरा[5] अपि।
नभोम्बुपा[6] वारिदवारिणा विना वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुषु॥

चातक प्यास से आकुल होने पर भी जलाशयों का अमृत-तुल्य पानी नहीं पीते,

---

१. स्रग्विणी।
२. विप्लुतिः–चञ्चलता।
३. धिष्ण्यकम्–ग्रहगण (सूर्य आदि)।
४. वंशस्थविलम्।
५. तृषातुरः–प्यास से आकुल।
६. नभोम्बुपः–चातक पक्षी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे मेघ का ही पानी पीते हैं। यह सत्य है कि गुण प्रेम में रहते हैं, वस्तुओं में नहीं।

(वि. सं. १९९८, पौष मास (दिसम्बर, १९४१), राजलदेसर)

(४. मणे! भावी तूर्णं पुनरपि तवातुच्छमहिमा)

१. [1]भुजङ्गानां शीर्षे निवसति च यद्यप्यनुदिनं,
तथापि त्वं तेषां गरलमतुलं लोप्तुमगदम्।
स्वकीयेऽनौचित्ये स्फुरति न हि रागो ध्रुवमतौ,
मणे! भावी तूर्णं पुनरपि तवातुच्छमहिमा॥

हे मणे! यद्यपि तुम रात-दिन सर्पों के मस्तक में निवास करती हो, फिर भी तुम (सर्पों द्वारा डसे जाने पर) उनके घोर विष को नष्ट करने के लिए औषध हो। अपने व्यक्ति के द्वारा अनुचित पूर्ण व्यवहार किए जाने पर भी तुम्हारी बुद्धि में उनके प्रति अनुराग नहीं है। इसलिए हे मणे! तुम्हारी पुनः शीघ्र अतिशय महिमा होगी।

२. महामूल्यं रत्नं कथमपि च निन्ये जडमति-
रजानंस्तत्कान्तिं बत! विपदमापद्य चरति।
गृहीत्वा तत्कश्चित् कुशलमतिरेवं द्रुतमवक्,
मणे! भावी तूर्णं पुनरपि तवातुच्छमहिमा॥

किसी जड़मति व्यक्ति को किसी तरह एक महामूल्य रत्न प्राप्त हो गया। आश्चर्य है कि वह उसकी कान्ति को नहीं जानता हुआ विपन्नावस्था में घूम रहा था। किसी कुशल मति वाले व्यक्ति ने तत्काल उस रत्न को प्राप्त कर कहा–हे मणे! अब तुम्हारी पुनः शीघ्र अतिशय महिमा होगी।

(वि. सं. १९९८, पौष मास (दिसम्बर, १९४१), राजलदेसर)

(५. दुर्जया बत! बलावलिप्तता)

१. [2]व्योम्नि कुञ्जररिपु[3]र्घनाघनगर्जनं किल निशम्य सत्वरम्।
जानुभङ्गमयते निरर्थकं, दुर्जया बत! बलावलिप्तता[4]॥

आकाश में मेघ के गर्जन को सुनकर हाथियों का शत्रु–अष्टापद तत्काल (मेघ को हाथी समझकर) ऊपर उछला। उसने निरर्थक अपनी टांगें तोड़ ली। खेद है कि बल के अहंकार को जीतना दुष्कर होता है।

(वि. सं. १९९९, पौष मास (दिसम्बर, १९४१), राजलदेसर)

---

१. शिखरिणी।
२. रथोद्धता।
३. कुञ्जररिपुः–अष्टापद।
४. अवलिप्तता–अहंकार।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(६. कथं धीरं धीरं ध्वनति नवनीलो जलधरः?)

१. [१]नदीं पत्युर्वेश्म प्रणयति रणन्नूपुररवां,
क्षितेर्दूर्वाशाटीं रचयति लसन्मौक्तिककणाम्।
तथाप्येवं शून्याश्रय इव ददज्जीवनमपि,
कथं धीरं धीरं ध्वनति नवनीलो जलधरः?॥

मेघ नूपुर की ध्वनि के समान कल-कल करती हुई नदी को पति के घर (समुद्र) की ओर प्रेरित करता है और शोभित होते हुए मुक्ताकणों से युक्त दूर्वा रूपी साड़ी से सारी पृथ्वी को सज्जित करता है। वह सबको जीवन देता है, फिर भी आश्रयशून्य व्यक्ति की भांति नवीन नीली आभावाला यह मेघ धीरे-धीरे क्यों गरज रहा है?

२. तपा[२]क्रान्ता नद्यः शिथिलनिनदा[३]श्चातककुलं,
तृषाक्लेशान्मन्दं रटति सुवदा[४] नाब्दसुहृदः[५]।
भवेच्चेत्तद् युक्तं परमुदकपूर्णोदरदरिः,
कथं धीरं धीरं ध्वनति नवनीलो जलधरः?॥

आतप से आक्रान्त सरिताओं की कलध्वनि शिथिल हो रही है, प्यास के क्लेश से चातककुल कुछ मन्द-मन्द बोल रहा है। मयूरों की केका कुंठित हो रही है। यदि यह सब कुछ उचित है तो अत्यधिक पानी से जिसकी उदर रूपी गुहा भरी हुई है, ऐसा वह नवीन नीली आभावाला मेघ धीरे-धीरे क्यों गरज रहा है?

३. कथं धीरं धीरं ध्वनति नवनीलो जलधरः?,
न विद्यात् ग्रीष्मो मामिति कलनया साम्प्रतमहो!
स्फुरद्[६]विद्युद्दीप्रं[७] वियति[८] विहरन्तं स्फुटममुं,
स दृष्ट्वा तत्कालं विरहिहृदयं त्राणमनयत्॥

अहो! यह नवीन नीली आभावाला मेघ धीरे-धीरे क्यों गरज रहा है? (उत्तर मिला।) 'कहीं ग्रीष्म मुझे जान न ले' इस चिन्तन से इसका धीरे-धीरे गरजना उचित है। (वह अपने आपको ग्रीष्म से छिपाना चाहता था) किन्तु ग्रीष्म ने उसे चमकती हुई बिजली से दीप्तिमान् और आकाश में विहरण करते हुए स्पष्टता से देख लिया। उससे बचने के लिए तत्काल उसने विरही व्यक्ति के हृदय को प्राप्त कर लिया।

---

१. शिखरिणी।
२. तपः (पु.)-आतप।
३. निनदः-शब्द, ध्वनि।
४. सुवदा (सुष्ठु उद्यते सा)-अच्छी बोली, केका।
५. अब्दसुहृद्-मयूर।
६. स्फुरत्-चमकती हुई।
७. दीप्रम्-दीप्तिमान्।
८. वियत्-आकाश।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. अरे! क्वासि क्वासि प्रकटय तनुं वारिदवर!,
सदा स्फारै[1]र्जातं कृषिनयन[2]मित्थं सलिलमुक्।
किमेतन्नो ज्ञातं तव विशदवृत्तेर्मरुरयं,
कथं धीरं धीरं ध्वनति नवनीलो जलधरः?॥

अरे मेघ! तुम कहां हो, तुम कहां हो, जरा अपने रूप को प्रकट करो। इस प्रकार सदा तुम्हारी प्रतीक्षा में किसानों की आंखें अश्रू बहाती हुई सूज गई हैं। क्या निर्मल वृत्ति वाले तुम्हें यह ज्ञात नहीं है कि यह मरुस्थल है? फिर क्यों तुम नवीन नीली आभावाले मेघ धीरे-धीरे गरज रहे हो?

५. अहो! शून्ये लब्धुं तत इत इवौज्ज्वल्य[3]पदवीं,
कथं धीरं धीरं ध्वनति नवनीलो जलधरः?
समेषां मालिन्यं व्यपनयननैपुण्यमहितो[4]
महामान्यो मह्यां लषति तुलसीराममुनिपः॥

अहो! यह नवीन नीली आभावाला मेघ उजलेपन का स्थान पाने के लिए आकाश में मानों इधर-उधर घूमता हुआ धीरे-धीरे क्यों गरज रहा है? क्योंकि वह जानता है कि सभी व्यक्तियों की मलिनता को दूर करने की निपुणता से पूजित महामान्य आचार्य तुलसी इस पृथ्वी पर शोभित हो रहे हैं।

(वि. सं. २००३, पौष शुक्ला ३ (२६ दिसम्बर, १९४६), तारानगर)

(७. कथं कान्ते दान्ते गलितवदनाभा नववधूः?)

१. [5]वसन्ते साम्राज्यं कलयति कलावत्यनुपदं,
यदुच्छ्वासा गुच्छा मधुररसलीलार्पणपराः।
तरो! त्वय्येतादृक्फलवति जने चापि कलिका,
कथं कान्ते दान्ते गलितवदनाभा नववधूः?॥

कलावान् वसन्त पग-पग पर अपना साम्राज्य डाले हुए है। चारों ओर मधुर रस-क्रीड़ा के अर्पण में तत्पर ये उच्छ्वास रूपी गुच्छे उछल रहे हैं। हे वृक्ष! तुम्हारे जैसे फलवान्, कान्त और दान्त प्रियतम के प्रति भी यह कलिका रूपी नववधू म्लानमुख क्यों हो रही है?

---

१. स्फारः-सूजना।
२. कृपिनयनम्-किसानों की आंखें।
३. औज्ज्वल्यम्-उजलापन।
४. महितः-पूजित।
५. शिखरिणी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. प्रतीचीं[1] नाप्नोति प्रणयसविताऽस्मन्निलयगो[2],
न चेर्ष्याप्रालेयं[3] पतति सुमतिच्छन्नवसतौ।
व्युदास्याब्जच्छाया[4]मुपमिति[5]पटुं व्यर्थकमसौ,
कथं कान्ते दान्ते गलितवदनाभा नववधूः?॥

पति ने ऐसा सोचा कि हमारे घर में निवास करने वाला प्रेम-सूर्य कभी अस्त नहीं होता और सुमति से आच्छन्न इस वसति में ईर्ष्या रूपी तुषार का कभी पात नहीं होता। कमल की शोभा की उपमा को पाने की योग्यता को व्यर्थ छोड़कर यह नववधू अपने कान्त और दान्त प्रियतम के प्रति म्लानमुख क्यों हो रही है?

३. रसः शान्तो यस्य स्पृशति हृदयाम्भोजकलिकां,
न कामानाशंसेत् क्वचिदपि न चेतश्चपलयेत्।
न तस्यैतत्तत्त्वं भवति खलु शोध्यं कथमपि,
कथं कान्ते दान्ते गलितवदनाभा नववधूः?॥

जिस व्यक्ति के हृदय-कमल की कलिका को शान्त रस स्पृष्ट करता है, जो कामनाओं की आशंसा नहीं करता और जिसका चित्त कहीं भी चपल नहीं होता, ऐसे व्यक्ति के लिए यह तत्व किसी भी तरह अन्वेषणीय नहीं होता कि नववधू अपने कान्त और दान्त प्रियतम के प्रति म्लानमुख क्यों हो रही है?

(वि. सं. २००३, पौष शुक्ला ३ (२६ दिसम्बर, १९४६), तारानगर)

(८. मोदन्ते मुनयो मनोबलजुषः कष्टेष्वनेकेष्वपि)

१. [6]आसक्तिः स्वपदानवस्थितिभयान्नासक्तिमालिङ्गति,
शैथिल्यं शिथिलं मनश्चपलता जाता स्वयं चञ्चला।
क्रोधः क्रुद्ध इवावलिप्त इव वा मानो न यान् मानयेद्,
मोदन्ते मुनयो मनोबलजुषः[7] कष्टेष्वनेकेष्वपि॥

आसक्ति स्वयं अपनी अवस्थिति के डांवाडोल होने के भय से जिनमें आसक्त नहीं होती, जिनके पास पहुंचकर शैथिल्य स्वयं शिथिल हो जाता है, मन की चपलता स्वयं चंचल हो जाती है और क्रोध क्रुद्ध तथा मान स्वयं गर्वित होकर जिन्हें सम्मान नहीं देता, ऐसे मनोबली मुनि अनेक कष्टों के आने पर भी प्रसन्न रहते हैं।

१. प्रतीची-पश्चिम।
२. निलयगः-गृहवासी।
३. प्रालेयम्-तुषार।
४. छाया-कांति।
५. उपमितिः-उपमा।
६. शार्दूलविक्रीडितम्।
७. मनोबलजुट् (मनोबलं जुषन्ते, क्विप्)-मनोबल का आसेवन करने वाला।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. स्वातन्त्र्यं गुरुशासनं गुरुतरं शक्तिस्तपः प्रोत्कट-
मौदासीन्यपरम्परा सुखमहो चेतोऽवरोधो जयः।
किं चित्रं सकलेऽपि कर्मणि जनादेवं कृतव्यत्यया,
मोदन्ते मुनयो मनोबलजुषः कष्टेष्वनेकेष्वपि॥

वे मनोबली मुनि अनेक कष्टों के आने पर भी प्रसन्न रहते हैं जो गुरु के कठोर अनुशासन को स्वतंत्रता, अति उत्कट तपस्या को शक्ति, औदासीन्य परम्परा (वैराग्य अथवा उदासीनता) को सुख और चित्त के निरोध को विजय मानते हैं। इसमें आश्चर्य क्या? क्योंकि उनका सभी कार्यों में जनसाधारण से विपरीत आचरण होता है।

३. कष्टानां प्रतिपत्तिरस्त्यविकला ज्ञानं यथार्थं पुन-
र्मोदन्ते मुनयो मनोबलजुषः कष्टेष्वनेकेष्वपि।
तत्त्वज्ञानमतत्त्वतः किमु न तान् कुर्वीत मिथ्यात्विनोऽ-
तत्त्वे तत्त्वमतिर्यदुक्तमिह चेद् मिथ्यात्वगं[1] लक्षणम्॥

मुनि–जीवन में कष्टों की अविकल प्राप्ति बनी रहती है। उनका यथार्थ ज्ञान भी उन्हें होता है, फिर भी मनोबली मुनि अनेक कष्टों के आने पर भी प्रसन्न रहते हैं। यदि वे आने वाले कष्टों को कष्ट न मानें तो क्या अतत्त्व से उत्पन्न तत्त्वज्ञान उनको मिथ्यात्वी नहीं बना देगा? क्योंकि सैद्धांतिक भाषा में कहा गया है कि यदि किसी की अतत्त्व में तत्त्व की बुद्धि है तो वह मिथ्यात्व की ओर जाने का लक्षण है।

४. मोदे कष्टविधायिनो विमतयो जीवन्ति नैके जनाः,
सूर्यश्चन्द्रमसं रविं हिमकरः किंवान्यथाऽनुव्रजेत्।
चित्रं चित्रमिदं परार्थकुशलाः कष्टेऽपि मोदप्रदाः,
मोदन्ते मुनयो मनोबलजुषः कष्टेष्वनेकेष्वपि॥

सुख में दुःख उत्पन्न करने वाले अनेक विपरीत मति वाले लोग जीते हैं। अन्यथा सूर्य चन्द्रमा का और चन्द्रमा सूर्य का अनुगमन क्यों करता? यह अत्यन्त आश्चर्य है कि परोपकार करने में कुशल और दुःख में सुख देने वाले मनोबली मुनि अनेक कष्टों के आने पर भी प्रसन्न रहते हैं।

१. मिथ्यात्वगम्–मिथ्यात्व की ओर जाने वाला।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५. मोदन्ते मुनयो मनोबलजुषः कष्टेष्वनेकेष्वपि,
बुध्वाऽहं छिदि-ताप-ताडनविधौ प्रापं[1] तितिक्षां पराम्।
अज्ञास्यं[2] यदि वा शिलाशकलतो[3] नूनं परीक्षा मम,
गुञ्जाभिः सह तोलनं च भविताऽधक्ष्यं[4] कृशानौ[5] निजम्॥

स्वर्ण ने कहा–मनोबली मुनि अनेक कष्टों के आने पर भी प्रसन्न रहते हैं–यह जानकर छेदन, तापन और ताडन की विधि से गुजरते हुए मैंने परम तितिक्षा रखी। यदि मुझे यह ज्ञात होता कि शिला के टुकड़े पर मेरी परीक्षा होगी और गुंजाओं के साथ मुझे तोला जाएगा तो मैं उसी समय अपने को अग्नि में जला डालता।

(वि. सं. २००४, पौष शुक्ला ४ (१५ जनवरी, १९४८), छापर)

(९. गिरेर्दाहो दृश्यो न च पदतलस्येति विदितम्)

१. [6]हिमांशोः[7] खल्वेषा किमिव हरिणे प्रीतिरुचिता,
तमस्विन्या[8] सार्धं विहरणमपि प्राप्तकलुषम्।
रविः स्वं क्रूरत्वं त्यजति बत! नाप्यत्र कुपितो,
गिरेर्दाहो दृश्यो न च पदतलस्येति विदितम्॥

सूर्य ने सोचा–क्या चन्द्रमा की हरिण के साथ यह प्रीति उचित है? उसका रात्रि के साथ घूमना भी कलुषित है। यह सोचकर सूर्य कुपित हो गया, पर खेद है कि उसने अपनी क्रूरता को नहीं छोड़ा। यह सच है कि पर्वत पर लगी आग दीखती है पर पैरों तले लगी आग नहीं दीखती।

२. अहो! शून्यप्रेमी प्रकृतिचपलः श्यामलतनु-
स्तडित्पाती[9] याञ्चापटुरपि घनोऽस्थायिविभवः।
भुवस्तापं पापं मनसि विनिवेश्य स्तनति यद्,
गिरेर्दाहो दृश्यो न च पदतलस्येति विदितम्॥

आश्चर्य है कि बादल आकाश-प्रेमी है। वह प्रकृति से चपल और श्याम वर्ण शरीर वाला है। वह विद्युत् को गिराने वाला और याचना करने में भी पटु है। उसकी संपदा

---

१. प्रापम् (प्रपूर्वक आप्–व्याप्तौ)–प्राप्त करना।
२. अज्ञास्यम् (ज्ञांश–अवबोधने, स्यदादि, उत्तम-पुरुष)–जानना।
३. शकलम्–खण्ड, टुकड़ा।
४. अधक्ष्यम् (दहं–भस्मीकरणे)–जल जाना।
५. कृशानुः–अग्नि।
६. शिखरिणी।
७. हिमांशुः–चन्द्रमा।
८. तमस्विनी–रात्रि।
९. तडित्पाती (तडितं पातयति)–विद्युत् को गिराने वाला।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्थिर है। पृथ्वी का एकमात्र दोष है–ताप। उसकी मन में धारणा कर वह गरजता है। यह सच है कि पर्वत पर लगी आग दीखती है, पर पैरों तले लगी आग नहीं दीखती।

३. कियल्लोलं चेतः कियदथ चलं शाखिकिसलं,
स्थिरो नायं वातस्त्विति चपलवीक्षे!ऽङ्घटिके!
चिरं मा स्थाः कालो विहरति कुहासौ तव पिता,
गिरेर्दाहो दृश्यो न च पदतलस्येति विदितम्॥

घटिका ने कहा–'यह चित्त कितना चंचल है? वृक्ष के नए पल्लव कितने चलायमान हैं? यह पवन भी स्थिर नहीं है'–इस प्रकार कहते हुए घड़ी की सूई बन्द हो गई। तब कवि ने कहा–दूसरों की चपलता को देखने वाली हे घड़ी! तुम एक स्थान पर मत रुको, तुम्हारा पिता यह काल चपल गति से कहां जा रहा है? यह सच है कि पर्वत पर लगी आग दीखती है, पर पैरों तले लगी आग नहीं दीखती।

४. अदृश्ये दृश्यत्वं स्फुरति न च चित्रं स्फुटमिदं,
न वा सूक्ष्मस्याणोर्नयनविषयत्वं प्रति यते।
परं दृश्येऽप्यन्धः क्वचन चतुरो दृष्टिविसरो
गिरेर्दाहो दृश्यो न च पदतलस्येति विदितम्॥

अदृश्य में दृश्यत्व की स्फुरणा होती है, यह कोई आश्चर्य नहीं हैं। अथवा यह भी कोई आश्चर्य नहीं है कि मैं सूक्ष्म अणु को दृग्गोचर करने का प्रयत्न करता हूं। परन्तु कहीं दृश्य वस्तु में भी निहारने वाली चतुर आंखें अंधी हो जाती हैं। यह सच है कि पर्वत पर लगी आग दीखती है, पर पैरों तले लगी आग नहीं दीखती।

५. अहो! ज्योतिस्तापं नयति बत! मामित्यतिलप-
ज्जलं नात्मस्थानं परवशगतं पश्यतितमाम्।
किमग्नेर्विध्यातुर्भवतु गतिरेषा परमिह?
गिरेर्दाहो दृश्यो न च पदतलस्येति विदितम्॥

आश्चर्य और खेद है कि अग्नि मुझे ताप दे रही है, ऐसा कहते हुए पानी ने अपने स्थान को नहीं देखा कि वह अभी परवश है अर्थात् पात्रगत है। क्या अग्नि बुझाने वाले पानी की यह दशा हो सकती है? यह सच है कि पर्वत पर लगी आग दीखती है, पर पैरों तले लगी आग नहीं दीखती।

६. गिरेर्दाहो दृश्यो न च पदतलस्येति विदितं,
यदुद्योगादीर्यारतगतिमुनीनां समभवत्।
महामान्यः सश्रीतुलसिमुनिराजः प्रथयतु,
स्वशिष्यान्निःशेषान् गुणगणसमादाननिपुणान्॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ईर्यापूर्वक चलने में संलग्न मुनियों के प्रयत्न ने यह संभव कर दिया कि पैरों के तले लगी आग दीख सकती है, किन्तु पर्वत पर लगी आग नहीं दीखती। महामान्य श्री-सम्पन्न आचार्य तुलसी अपने सभी शिष्यों को गुणराशि के ग्रहण करने में निपुण बनाएं।

७. खल![1] त्वं किं चूर्णप्रवण इति पृष्टस्त्रिफलया,
कठोरा रूक्षासि प्रकृतिसदृशोप्येवमवदत्।
अहो! सत्यं सत्यं कविकुलकिरीटैरभिहितं,
गिरेर्दाहो दृश्यो न च पदतलस्येति विदितम्॥

त्रिफला ने पूछा–हे खरल! क्या तुम चूर्ण बनाने में इतनी दक्ष हो? त्रिफला की प्रकृति के समान खरल बोली–तुम कठोर और रूक्ष हो। (इसलिए मुझे ऐसा करना होता है।) त्रिफला ने कहा–अहो! मूर्धन्य कवियों ने सत्य कहा है कि पर्वत पर लगी आग दीखती है, पर पैरों तले लगी आग नहीं दीखती। (इसलिए हे खरल! तुम अपने आपको देखो।)

(वि. सं. २००४, पौष शुक्ला ४ (१५ जनवरी, १९४८), छापर)

(१०. ब्राह्मणस्य महत्पापं, संध्यावन्दनकर्मभिः)

१. [2]ब्राह्मणस्य महत्पापं, सन्ध्यावन्दनकर्मभिः।
संरुष्टं जातिरागेण, तिमिरे स्वं व्यलीयत॥

ब्राह्मण के महान् पाप ने संध्या-वंदन कर्म से रुष्ट होकर जातीय अनुराग के कारण अपने आपको तिमिर में विलीन कर दिया।

२. ब्राह्मणस्य महत्पापं, संध्यावन्दनकर्मभिः।
च्युतं सम्मानमालब्धं, चित्रं राज्ये द्विजेशितुः[3]॥

ब्राह्मण का महान् पाप संध्या-वंदन कर्म से च्युत होकर चला। अन्य किसी ने उसे सम्मान नहीं दिया। आश्चर्य है कि उसे चन्द्रमा के राज्य में सम्मान प्राप्त हो गया।

वि. सं. २००५, कार्तिक कृष्णा ७ (२४ नवम्बर, १९४८), छापर

(११. सिन्दूरबिन्दुर्विधवाललाटे)

१. [4]सिन्दूरबिन्दुर्विधवाललाटे, गङ्गाम्बुगौरे कृतविद्रुमेर्ष्यः।
स्वं रक्तिमानं नयने मुखेऽपि, द्रष्टुः स्मयः किं प्रतिबिम्बयेत्तत्?॥

---

१. खलः–खरल।
२. अनुष्टुप्।
३. द्विजेशिता–चन्द्रमा।
४. इन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गंगा के पानी के समान गौर विधवा के ललाट पर मूंगे से भी अधिक लाल सिन्दूर का बिन्दु है। यदि वह बिन्दु अपनी लालिमा को देखने वाले के नयनों और मुख पर प्रतिबिम्बित करे तो इसमें आश्चर्य क्या? अर्थात् विधवा के ललाट पर सिन्दूर का बिन्दु देखकर कोई क्रोध से लाल हो जाए तो आश्चर्य ही क्या?

२. सिन्दूरबिन्दुर्विधवाललाटे, नेयं समस्याप्यधुना समस्या।
वैज्ञानिकेऽस्मिन् समये न जाने, वैधव्यमेवापि पलायितं क्व?॥

विधवा के ललाट पर सिन्दूर का बिन्दु है–यह समस्या भी अब समस्या नहीं है। पता नहीं कि इस वैज्ञानिक युग में वैधव्य भी कहां पलायित हो चुका है?

३. यादृग् विचारो मनसाङ्कितः स्यात्तादृग् जनः पश्यति चक्षुषापि।
सिन्दूरबिन्दुर्विधवाललाटे, प्रत्यक्षमत्र प्रबलं प्रमाणम्॥

मन में जैसा विचार अंकित होता है, आंखों से भी मनुष्य वैसा ही देखता है। इसका प्रत्यक्ष और प्रबल प्रमाण है–विधवा के ललाट पर लगा हुआ सिन्दूर का लाल बिन्दु।

४. पत्युर्वियोगाश्रुसरित्प्रवाह-प्रक्षालिते वर्ष्मणि[1] नैकशोऽपि[2]।
स्वेदोदबिन्दुद्रविते क्व कल्प्यः, सिन्दूरबिन्दुर्विधवाललाटे॥

पति के वियोग में पत्नी द्वारा अश्रुरूपी सरिता के प्रवाह से अनेक बार अपने शरीर को प्रक्षालित करने पर और अनेक बार पसीने की बून्दों से भी शरीर गीला हो जाने पर यह कल्पना कहां रह जाती है कि विधवा के ललाट पर सिन्दूर का बिन्दु है? (वह तो धुल जाता है।)

५. [3]सिन्दूरबिन्दुर्विधवाललाटे, न केन साक्षेपमपेक्षितोऽस्ति?
भाले स्वकेऽन्यायविजृम्भिबिन्दुर्न केन साक्षेपमुपेक्षितोऽस्ति?॥

विधवा के ललाट पर सिन्दूर का बिन्दु है, इस आक्षेपपूर्वक कथन को किसी ने नहीं चाहा। किन्तु अपने ललाट पर अन्याय से प्रकट होने वाला जो बिन्दु लगा है, उसे किसी ने भी आक्षेपपूर्वक उपेक्षित नहीं किया है।

(वि. सं. २००५, कार्तिक कृष्णा ७ (२४ नवम्बर, १९४८), छापर)

---

१. वर्ष्म (वर्ष्मन्–नपुं.)–शरीर।
२. नैकशः (न+एकशः)–अनेक बार।
३. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१२. कियच्चित्रं वाग्मी भवति बत! मूकोऽपि मनुजः)

१. [१]कियच्चित्रं वाग्मी[२] भवति बत! मूकोऽपि मनुजः,
स्वकश्लाघाकाले वितथवचनेऽप्यन्धनयनः।
विरुद्धा स्याद् वाणी परगुणकथायां न विदितं,
क्व दोषो जिह्वायां दति[३] मनसि वा को भिषग[४]हो!॥

कितना आश्चर्य है कि मनुष्य मूक होता हुआ भी वाचाल हो जाता है जब वह अपनी झूठी प्रशंसा के समय आंखें मूंद कर उसको सुनता है, दूसरों के गुणों को कहने में जिसकी वाणी विरुद्ध-अपलाप करने लग जाती है। पता नहीं, यह दोष किसमें है- जिह्वा में अथवा दान्त या मन में। आश्चर्य है कि इनका वैद्य (चिकित्सक) कौन हो सकता है?

२. कियच्चित्रं वाग्मी भवति बत! मूकोऽपि मनुजः,
क्वचिल्लोके प्रेयान् ध्रुवमवसरोऽनेकचरणः।
स्वके दोषेऽदोषे प्रियति[५] परिपाट्याप्यपरथा,
परेषां स्याद्वादः स्फुरति सकलायामपि दिशि॥

कितना आश्चर्य है कि मूक मनुष्य भी वाचाल हो जाता है। कभी कभी इस संसार में बहु आयामी प्रसंग ही प्रिय होता है। मनुष्य अपने दोष और अदोष (गुण)- दोनों में राग रखता है। दूसरी ओर यह परिपाटी भी है कि मनुष्य दूसरों के दोष और अदोष-दोनों में द्वेष रखता है। इससे लगता है कि स्याद्वाद सभी दिशाओं में स्फुरित होता है।

३. कियच्चित्रं! वाग्मी भवति बत! मूकोऽपि मनुजः,
चिकित्सावैविध्यं विविधपरिणामाश्च तनवः।
तदेतच्चित्रं स्यात् परममिह वाचामधिपति-
र्भवन्नर्थी तत्र स्खलितवचनोऽसन्नुति[६]विधौ॥

मूक मनुष्य भी वाचाल हो जाए तो इसमें आश्चर्य कैसा? क्योंकि आज के युग में चिकित्सा के विविध प्रकार हैं, शरीर भी विविध परिणामधर्मा है। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि वाणी पर अधिकार रखने वाला व्यक्ति भी किसी वस्तु का प्रार्थी होकर असत् की प्रशंसा में बोलने लग जाता है।

---

१. शिखरिणी।
२. वाग्मी-वाक्पटु, वाचाल।
३. दन्तः-दांत।
४. भिषक्-वैद्य।
५. प्रियति (नामधातु)-प्रिय लगना।
६. नुतिः-प्रशंसा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. ममायं सन्नेताऽप्रतिहतगतिश्चेति मरुतो,
घनः प्रोच्चैर्गच्छन् कथयति कथां वक्त्रविकलः।
लसत्कीर्त्तिं लब्ध्वा सुगुरुमथ किं भक्तिभरितः,
कियच्चित्रं वाग्मी भवति बत! मूकोऽपि मनुजः॥

बादल ऊंचे आकाश में चलता हुआ मुख से विकल होते हुए भी गर्जन के द्वारा अपनी कथा कह रहा है कि अप्रतिहत गति वाला पवन मेरा नेता है, मुझे ऊपर ले जाने वाला है। किन्तु यह कितना आश्चर्य है कि मूक मनुष्य भी वैसे ही वाचाल होता है जैसे कि कीर्त्तिमान् सुगुरु को पाकर भक्ति से भरा मूक शिष्य गुरु-श्लाघा करने में वाचाल होता है।

५. धनी विद्वद्गोष्ठ्यामपि तदधिपत्वं विरचयन्,
कियच्चित्रं वाग्मी भवति बत! मूकोऽपि मनुजः।
सवर्णे वाग्मित्वं भवति खलु मिथ्याश्रुतिरिय-
मथो कश्चिच्चोरः प्रथमतदकारञ्च हृतवान्॥

एक धनी व्यक्ति विद्वानों की गोष्ठी में गया और वहां का अध्यक्ष बनकर मूक होते हुए भी (कुछ न जानते हुए भी) वाचालता करने लगा। यह कितना आश्चर्य है! जो यह कहा जाता है कि सवर्ण (विद्वान्) में वाक्पटुता होती है, यह मिथ्या श्रुति है। अथवा किसी चोर ने उस (सवर्ण–स्+अ+वर्ण) के प्रथम अकार को चुरा लिया। अतः वह वाग्मिता स्वर्ण में अधिष्ठित हो गई।

(वि. सं. २००५, पौष शुक्ला ५ (४ जनवरी १९४९), छापर)

(१३. मेघे वर्षति वेगवाहिनि कथं दौर्भिक्ष्यसंभावना?)

१. [१]मेघे वर्षति वेगवाहिनि कथं दौर्भिक्ष्यसंभावना?,
कुब्जो दातृकरः स्वदक्षिणपथे शक्तिं न चालोकयन्।
वामे शक्तिरवातरत् परमसौ वामश्चरेत्तत्कथं,
द्वन्द्वं पाणिगतं प्रसारमनयद् बुद्धावपि प्रायशः॥

वेगवान् मेघ के बरसने पर अकाल की संभावना कैसे हो सकती है? किन्तु जहां दान देने वाले का हाथ अपने दाहिने पार्श्व को शक्तिहीन होता देखकर बौना हो गया हो। सारी शक्ति विपरीत मार्ग में अवतरित हो गई हो तब बायां हाथ दान कैसे दे सकता है? जब हाथों का यह द्वन्द्व बहुधा मनुष्यों की बुद्धि में भी व्याप्त हो जाए तब वेगवान् मेघ के बरसने पर अकाल क्यों नहीं होगा?

१. शार्दूलविक्रीडितम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. मेघे वर्षति वेगवाहिनि कथं दौर्भिक्ष्यसंभावना?,
मर्यादाक्रमणं कृतं जलमुचा कूलङ्कषाभि[१]स्तथा।
दृष्ट्वैतां स्वपितुः क्रियामनुचितां धान्यैश्च लज्जानतै-
रात्मानो जहिरे[२] ततः कथमसौ प्रश्नो घटां प्राञ्चति?॥

जब बादल ने बरसने में मर्यादा का अतिक्रमण किया तो नदियों में बाढ़ आ गई और तब उन्होंने भी मर्यादा का उल्लंघन कर डाला। जब उगे हुए धान्यों ने अपने पिता-माता (बादल और नदी) का यह अनुचित कार्य देखा तब उन्होंने लज्जा से नत होकर अपने आप का त्याग कर दिया, वे नष्ट हो गए। इसलिए वेगवान् मेघ के बरसने पर अकाल की संभावना कैसे हो सकती है?—यह प्रश्न कैसे उचित हो सकता है।

३. मेघे वर्षति वेगवाहिनि कथं दौर्भिक्ष्यसंभावना?,
ज्ञातं नेत्यपि किं प्रणालिरियकं पूर्णा प्रजातंत्रिणी।
भूवातातपनादयः परिषदः सर्वे सदस्या अमी,
दास्यन्ते किल काञ्च सम्मतिमिदं तत्त्वं न विद्मो वयम्॥

वेगवान् मेघ के बरसने पर अकाल की संभावना कैसे हो सकती है? किन्तु क्या तुमने यह भी नहीं जाना कि (दुर्भिक्ष होना या सुभिक्ष होना) यह सारा पूर्ण प्रजातंत्र प्रणाली पर आधारित है। भूमि, वायु और आतप आदि—ये सभी प्रजातन्त्र परिषद् के सदस्य हैं। ये अपना मत किसको (सुभिक्ष को या दुर्भिक्ष को) देंगे, यह हम नहीं जानते।

४. मेघे वर्षति वेगवाहिनि कथं दौर्भिक्ष्यसंभावना?,
लोकानामिदमस्तु वाक्यमुचितं नो वातवाऽम्भोधर!
सर्वस्वं ननु भिक्षितं तदपि नो लब्धं स्थिरत्वं क्वचि-
ल्लीनः श्रीतुलसीगणेश्चरणयोः स्याः स्वच्छताव्याजतः॥

वेगवान् मेघ के बरसने पर अकाल की संभावना कैसे हो सकती है-लोगों का यह वाक्य उचित हो अथवा न हो, किन्तु हे बादल! तुम्हारे लिए यह ठीक नहीं है। क्योंकि तुम सब कुछ भिक्षा से प्राप्त करते हो, फिर भी तुम्हें कहीं स्थिरता प्राप्त नहीं हुई है। अतः तुम पवित्रता के बहाने श्रीतुलसीगणी के चरणों में लीन हो जाओ, स्थिर हो जाओ।

(वि. सं. २००५, पौष शुक्ला ५ (४ जनवरी, १९४९), छापर)

---

१. कूलङ्कषा—नदी।

२. जहिरे (ओहांक्—त्यागे)—त्याग दिया, छोड़ दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१४. मूकोऽपि कोऽपि मनुजः किमु वाक्पटुः स्यात्?)

१. [1]मूकोऽपि कोऽपि मनुजः किमु वाक्पटुः स्याद्,
विद्वत्पतेः कथमसम्भवकल्पना वा?
आत्मा विलोकित इतीह निजानुभूति-
माचार्य आविरकरोन्मयि संप्रयुक्ताम्।।

क्या मूक होता हुआ भी कोई मनुष्य वाक्पटु हो सकता है—विद्वानों की यह कल्पना कैसे असंभव हो सकती है? जब मैं अपने आपको देखता हूं तो लगता है कि मेरी स्वयं की इस अनुभूति का मेरे पर संप्रयोग करके आचार्यवर ने उसे प्रकट किया है—मूक अव्यक्त भी वाक्पटु हो सकता है।

(वि. सं. २००५, पौष शुक्ला ५ (४ जनवरी, १९४९), छापर)

(१५. विषममसिधाराव्रतमिदम्)

१. [2]परान्नीत्वा शेषं क्षणमिह नयेत् कश्चिदुदयं,
नयेदन्ते तेजः परिणतिमलं कालिमनि तत्।
कृशानोस्तज्ज्योतिः किमिति समिधा[3]मन्तललितं,
तदाप्तं स्वोत्सर्गैर्विषममसिधाराव्रतमिदम्।।

कोई पुरुष दूसरों का अंत कर क्षणभर में अपना उदय करना चाहे तो उसका वह तेज (शक्ति) अन्त में कालिमा में परिणत होता है। ईन्धन को जलाकर चमकने वाली अग्नि की ज्योति का क्या परिणाम होता है? उसका परिणाम है—राख। स्वयं के उत्सर्ग—बलिदान से जो तेज प्राप्त होता है, वह वास्तव में असिधारा के समान कठोर व्रत है।

२. बृहद्भानो[4]स्तापे तपति नवनीतं त्विति न न,
न तापेऽपि स्नेहं त्यजति तदिदं विस्मयकरम्।
परस्यातापेनातपति हृदयालुः प्रतिपलं,
स्वलभ्यो मूल्यस्तद् विषममसिधाराव्रतमिदम्।।

किसी ने कहा—अग्नि के ताप से नवनीत तप जाता है। दूसरा बोला—नहीं, नहीं, यह कोई विस्मय की बात नहीं है। विस्मय की बात तो यह है कि वह तप्त होने पर भी अपने स्नेह को नहीं छोड़ता। हृदयालु पुरुष दूसरे के आतप—कष्ट में प्रतिपल स्वयं तप्त होता है, पीडित होता है, किन्तु अपने स्नेह को नहीं छोड़ता। यह उसका स्वप्राप्य मूल्य है। यथार्थ में यह कठोर व्रत असिधारा के समान है।

१. वसन्ततिलका।
२. शिखरिणी।
३. समिधा—इन्धन।
४. बृहद्भानुः—अग्नि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. मलानामावासो वपुरिति मुहुश्चिन्तितमलं,
क्षणं सौख्यं दुःखं बहु तदपि बुद्ध्याभ्युपगतम्।
न चैतावच्चिन्ताकणनिचयवार्यो हि विषम-
शर[1]स्तेन प्रोक्तं विषममसिधाराव्रतमिदम्॥

मैंने बार-बार चिन्तन किया है कि यह शरीर मलों का आवास-स्थल है और बुद्धि से मैंने यह भी स्वीकार किया कि सुख-दुःख अत्यन्त क्षणिक हैं। किन्तु इतने मात्र चिन्तन कणों से कामदेव को नहीं रोका जा सकता। इसीलिए यह कहा गया कि काम पर विजय पाना असिधारा के समान कठोर व्रत है।

४. विदन्तो ब्रह्मान्तं विषममसिधाराव्रतमिदं,
वदन्तो ब्रह्मेदं विषममृतधाराहितमपि।
असत्यं तज्ज्ञानं कथनमथवा नो फलति यद्
गतौ नित्यालस्यं सहजरुचिराहारविषये॥

लोग जानते हैं कि ब्रह्मचर्य असिधारा के समान कठोर व्रत है और वे कहते भी हैं कि यह ब्रह्मचर्य अमृतधारा से संस्कारित होने पर भी विष जैसा है। वह ज्ञान अथवा कथन-दोनों असत्य हैं। क्योंकि गति (आचरण) में नित्य आलस्य है और आहार के प्रति सहज आकर्षण है, तब ब्रह्मचर्य कैसे फलित हो?

(वि. सं. २००७ (सन् १९५०), हांसी, चतुर्मास)

(१६. सीदन्ति सन्तो विलसन्त्यसन्तः)

१. [2]सत्यं कटुत्वं तव वारिराशे!, रत्नानि नीचैश्चरणे दधासि।
मूर्धन्यन्तानि तृणानि हन्त!, सीदन्ति सन्तो विलसन्त्यसन्तः[3]॥

हे समुद्र! तुम्हारे लिए यह कटु सत्य है कि तुम रत्नों को नीचली सतह में रखते हो और अपने ऊपर की सतह पर तृणों को धारण करते हो। यह सत्य है कि इस युग में सज्जन व्यक्ति दुःख पाते हैं और दुर्जन व्यक्ति सुखी रहते हैं।

२. [4]तनूनपातः[5] कणिका प्रदीपे, स्नेहञ्च वर्तिञ्च नयेत नाशम्।
अधस्तमिस्रं कुरुते निषद्यां, सीदन्ति सन्तो. विलसन्त्यसन्तः॥

दीपक में रहती हुई अग्नि की एक कणिका भी तेल और बाती का नाश कर

---

१. विषमशरः-कामदेव।
२. इन्द्रवज्रा।
३. असन्-दुर्जन।
४. उपजाति।
५. तनूनपात्-अग्नि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देती है। उसके नीचे अन्धकार आराम से बैठा रहता है। यह सच है कि सज्जन व्यक्ति दुःख पाते हैं और दुर्जन व्यक्ति सुखी रहते हैं।

३. सीदन्ति सन्तो विलसन्त्यसन्तो दोषः सतामेष वितर्कणीयः।
न चाचरन्तोपि खलत्वमत्र, प्रसादयत्नं न च ते त्यजन्ति॥

सज्जन व्यक्ति दुःख पाते हैं और दुर्जन व्यक्ति सुखी रहते हैं। सज्जन व्यक्तियों का यह दोष विचारणीय है कि वे कभी दुर्जनता का आचरण नहीं करते और अपनी सज्जनता को कभी नहीं छोड़ते।

४. सीदन्ति सन्तो विलसन्त्यसन्तः, किमत्र चिन्त्यं बहु पण्डितेन।
मताधिकारस्य युगे बहुत्वं, सत्तामशेषां निजकीकरोति॥

सज्जन व्यक्ति दुःख पाते हैं और दुर्जन व्यक्ति सुखपूर्वक रहते हैं–इसमें पंडित (विद्वान्) व्यक्ति को ज्यादा क्या सोचना है? यह मताधिकार का युग है। बहुमत सारी सत्ता को अपने हाथ में कर लेता है। तात्पर्य यह है कि आज के युग में सज्जन कम हैं और दुर्जन अधिक। (वि. सं. २००७, पौष शुक्ला ६, (१३ जनवरी १९५१), हिसार)

(१७. साम्यं काम्यं प्रकृतिरुचिरं क्वापि वक्रं विभाव्यम्)

१. [१]साम्यं काम्यं प्रकृतिरुचिरं क्वापि वक्रं विभाव्यं,
मार्गाभावे प्रकृतिकुटिला निम्नगाभून्नदीयम्।
वक्रं काम्यं प्रकृतिरुचिरं क्वापि साम्यं विभाव्यं,
रन्ध्रे वेष्टुं ऋजुगतिरहो! रत्नवानेष दर्वी[२]॥

निसर्गतः जो मनोहर है, वह साम्य अच्छा लगता है, किन्तु कहीं-कहीं वक्रता भी आवश्यक होती है। सरल सीधी बहने वाली नदी मार्ग के अभाव में सहजता से वक्र होकर नीचे बहने लग जाती है। निसर्गतः जो मनोहर है, वह वक्र भी अच्छा लगने लगता है और कहीं-कहीं साम्य भी आवश्यक हो जाता है। आश्चर्य है कि सदा वक्र गति करने वाला मणिधर सर्प बिल में प्रवेश करते समय ऋजुगति वाला हो जाता है। अतः समता और वक्रता–दोनों अपने-अपने स्थान पर अच्छे लगते हैं।

२. निद्रायां वा तमसि विपुले चक्षुषोश्चाप्यभावे,
भेदाभावो भवति सुतरां तेन कोऽर्थः प्रसिद्ध्येत्।
किं वा भ्रश्येद् विपरियति तत्तेन नैकान्तवादः,
साम्यं काम्यं प्रकृतिरुचिरं क्वापि वक्रं विभाव्यम्॥

१. मन्दाक्रान्ता। २. दर्वी–सर्प।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निद्रा, सघन अंधकार और नेत्र के अभाव में अत्यन्त अभेद प्रतीत होता है। किन्तु इससे कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होता है? अथवा इनके विपरीत जागरण, प्रकाश और नेत्र के होने पर कौन-सी हानि होती है? इसलिए यह कथन एकान्त सत्य नहीं है कि निसर्गत: जो मनोहर है, वह साम्य ही काम्य है और वक्रता अकाम्य है अथवा निसर्गत: जो मनोहर है, वह वक्रता ही काम्य है और समता अकाम्य है। (दोनों अपने-अपने स्थान पर अच्छे हैं।)

(वि. सं. २००७, पौष शुक्ला ६ (१३ जनवरी, १९५१), हिसार)

(१८. कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा)

१. [१]कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा,
यस्यात्यन्तं प्रकृतिविजयो यस्य नास्त्येव किञ्चित्।
लाभालाभे भवति समता तस्य किन्नाम दुःखं,
रक्तो द्विष्टः सततमपि यस्तस्य सौख्यं कुतस्त्यम्॥

अत्यन्त (केवल) सुख किसे प्राप्त होता है अथवा अत्यन्त दुःख किसे प्राप्त होता है? जिसने अपनी प्रकृति पर पूर्ण विजय प्राप्त की है, उसे अत्यन्त सुख प्राप्त होता है और जिसने अपनी प्रकृति पर किंचित् भी विजय प्राप्त नहीं की, उसे अत्यन्त दुःख मिलता है। जो व्यक्ति लाभ और अलाभ में सम रहता है, उसे दुःख कहां? और जो सतत लाभ में रक्त और अलाभ में द्विष्ट होता है, उसे सुख कहां?

२. या दृग् वाष्पं किरति शिशिरं सैव कोष्णं कदाचित्,
कामं शांतिं वहति पवनः सोऽपि सन्तापदग्धः।
शाम्येद् वह्निं तदपि सलिलं वाडवाक्रान्तकायं,
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा॥

जो आंखें कभी शीतल आंसुओं को बहाती हैं, वे ही कभी उष्ण आंसुओं को भी बहाती हैं। जो वायु पर्याप्त शीतलता का वहन करती है, वह भी कभी ताप से दग्ध होकर गरम हो जाती है। पानी आग बुझाता है, किन्तु वह भी वडवाग्नि से आक्रान्त हो जाता है। इसलिए यह सत्य है कि अत्यन्त सुख अथवा दुःख किसे प्राप्त होता है?

३. दीप्रो दीपः पवनसचिवो[२] लोप्तुकामस्तमिस्रं,
प्रोच्चैश्चेष्टामकृत बहुशः प्राप्नुवन् स्नेहयोगम्।
आलोकोऽपि प्रकृतिचपलो नान्वभूदाशु नाशं,
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा॥

---

१. मन्दाक्रान्ता। २. सचिवः-अमात्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पवन रूप मंत्री के सहारे दीप्तिमान् दीप अन्धकार को मिटाना चाहता है। उसने बहुत बार स्नेह का योग पाकर अन्धकार को मिटाने के अनेक यत्न किए। प्रकृति से चपल उस दीप के आलोक ने भी यह अनुभव नहीं किया कि वह शीघ्र बुझने वाला है। यह सत्य है कि अत्यन्त सुख या अत्यन्त दुःख किसे प्राप्त होता है?

(वि. सं. २००८, चैत्र कृष्णा ४ (१५ मार्च, १९५१), रतनगढ़)

(१९. जनः सामान्योऽयं कथमिव विजानीत सहसा)

१. [१]विनिद्राणे नेत्रे स्फुरति विमलज्योतिरभितः,
सुषुप्तेऽपि स्वान्ते[२] लषति विपुला शक्तिरनिशम्।
विमूकेप्यारावे[३] तरति गहनो भावजलधिः,
जनः सामान्योऽयं कथमिव विजानीत सहसा॥

नींद से मूंदी हुई आंखों में भी चारों ओर विमल ज्योति प्रकट होती है। सुषुप्त होने पर भी चित्त में सदा विपुल शक्ति दीप्त होती है। मूक शब्दों में भी भावों का गहन समुद्र तैरता है। इन तथ्यों को सामान्य व्यक्ति सहसा कैसे जान सकता है?

२. मुदा चक्षुस्स्रावो भवति बत! शोकेन सपदि,
द्वयोरेवाधिक्ये फलति मृति[४]राहो! च विचितिः[५]।
प्रसन्ना तेनैव स्थितिरभिमता योगिभिरमुं,
जनः सामान्योऽयं कथमिव विजानीत सहसा॥

खेद है कि हर्ष और शोक में सहसा आंखों से आंसू बहने लग जाते हैं। दोनों की अधिकता से मृत्यु अथवा चित्त भी विक्षिप्त हो सकता है। इसीलिए योगियों ने प्रसन्न स्थिति को ही मान्य किया है। इस बात को सामान्य व्यक्ति सहसा कैसे जान सकता है?

(वि. सं. २००८, चैत्र कृष्णा ४ (१५ मार्च, १९५२), रतनगढ़)

(२०. न खलु न खुल वाच्यं सन्ति सन्तः कियन्तः)

१. [६]न खलु न खलु वाच्यं सन्ति सन्तः कियन्तो,
भणितिरिति पुराणा शीघ्रगामी क्षणोऽयम्।
जगति विसृमरो[७]ऽभूत् संघ आणुव्रतोऽयं,
भवतु तवकपृच्छा सन्त्यसन्तः कियन्तः॥

१. शिखरिणी।
२. स्वान्तम्–चित्त।
३. आरावः–ध्वनि, शब्द।
४. मृतिः–मृत्यु।
५. विचितिः–चित्त का विक्षेप।
६. मालिनी।
७. विसृमरः–विस्तृत, व्यापक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब यह नहीं कहना चाहिए कि सन्त कितने हैं? यह कथन बहुत पुराना हो चुका है। आज का क्षण अत्यंत शीघ्रगामी है। अणुव्रत संघ (अणुव्रत आंदोलन) सारे जगत् में फैल चुका है। अतः अब तुम्हारी पृच्छा यह होनी चाहिए कि इस जगत् में असन्त कितने हैं, न कि सन्त।

(वि. सं. २०१०, माघ शुक्ला ८ (१० फरवरी, १९५४), राणावास)

(२१. चित्रं दिवापि रजनी रजनी दिवा च)

१. [1]यस्मात् प्रकाशकिरणाः प्रसभं प्रथन्तेऽ-
प्यन्धत्वमेति नयनञ्च तमीक्षमाणम्।
ज्योतिर्नवं स्फुरति सन्तमसे प्रगाढे,
चित्रं दिवापि रजनी रजनी दिवा च॥

जिस सूर्य से प्रकाश की किरणें निकल कर विकीर्ण होती है तब उसको देखने वाली आंखें हठात चुंधिया जाती हैं। सघन अन्धकार में नई ज्योति प्रकट होती है। आश्चर्य है कि दिन में रात और रात में भी दिन की प्रतीति हो रही है।

२. आलोक एष लषते जडपात्रचारी,
धूमोदयो भवति तेजसि दीप्यमाने।
पुत्रः सुधीर्जनयिता च जडोऽन्यथाऽपि,
चित्रं दिवापि रजनी रजनी दिवा च॥

मिट्टी के दीप से निकलने वाला यह प्रकाश दीप्त हो रहा है। जब इसका तेज दीप्त होता है तब उससे धुआं निकलने लगता है। कहीं पुत्र बुद्धिमान् है तो पिता अबुद्धिमान् है। कहीं पिता बुद्धिमान् है तो पुत्र अबुद्धिमान् है। आश्चर्य है कि यह सत्य दिन में रात और रात में दिन की प्रतीति करा रहा है।

३. नैकात्मता भवति काचन भद्रतायां,
विद्युद् विमन्थररुचि[2]र्दिवसे विभाति।
सैव प्रकाशमतुलं तनुते निशायां,
चित्रं दिवापि रजनी रजनी दिवा च॥

भद्रता में कोई एकात्मता नहीं होती। दिन में विद्युत् का प्रकाश मंद हो जाता है और रात में वही प्रकाश अत्यधिक तीव्र हो जाता है। आश्चर्य है कि विद्युत् का प्रकाश दिन में रात और रात में दिन का आभास करा देता है।

---

१. वसन्ततिलका। २. विमन्थररुचिः—मन्द प्रकाश।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. कृष्णापि कापि किल दृष्टिरियञ्च तारा,
श्वेतोन्धलो भवति यन्नयनस्य भागः।
कार्ष्ण्ये प्रकाशपटुता तिमिरं वलक्षे[1],
चित्रं दिवापि रजनी रजनी दिवा च॥

आंखों का यह कृष्ण तारा भी देख सकता है, किन्तु आंखों का जो श्वेत भाग है, वह अन्धल होता है। वह देख नहीं सकता। कृष्णता में प्रकाश की पटुता है और सफेदी में अन्धकार की। आश्चर्य है कि आंखों की यह रचना दिन में रात और रात में दिन कर देती है।

(वि. सं. २०१२, पौष कृष्णा ९ (६ जनवरी, १९५६), रतलाम)

(२२. भवेद् वर्षारम्भः प्रकृतिपुलको मोदजनकः)

१. [2]जनो दीर्घं चाल्पं प्रकृतसमयं यस्य मनुते,
तथाल्पं दीर्घञ्च प्रकृतकरणं यस्य मनुते।
प्रसन्नामन्यां वा दृशमपि तथा तस्य कृतिनो
भवेद् वर्षारम्भः प्रकृतिपुलको मोदजनकः॥

जो मनुष्य वर्षभर के प्रस्तुत समय को काम करने के लिए अल्प होने पर भी दीर्घ मानता है और जो मनुष्य वर्षभर के करणीय प्रस्तुत कार्य को पूरा करने के लिए दीर्घ होने पर भी अल्प मानता है, जो जिसकी प्रसन्न दृष्टि को दीर्घ होने पर भी अल्प मानता है और जो जिसकी अप्रसन्न दृष्टि को अल्प होने पर भी दीर्घ मानता है, उस भाग्यशाली मनुष्य के वर्ष का आरम्भ प्रकृतिपुलक और मोद को उत्पन्न करने वाला होता है।

२. चिरं तापः पृथ्वीमपि च गगनं श्लिष्यतितमा-
मशेषाणां शोषं नयति सरसत्वं प्रतिपलम्।
समाधातुं दीर्घां बहुजनसमस्याममुमसौ,
भवेद् वर्षारम्भः प्रकृतिपुलको मोदजनकः॥

बहुत लोगों की यह दीर्घकालीन समस्या है कि आतप पृथ्वी और आकाश को चिरकाल से आश्लिष्ट कर रहा है। वह सभी सरसताओं का प्रतिपल शोषण कर रहा है। इसका समाधान करने वाला वर्षा का आरम्भ प्रकृति को पुलकित और जन-जन को प्रमुदित करने वाला होता है।

(वि. सं. २०१७, कार्तिक शुक्ला दूज (२२ अक्टूबर, १९६०), राजनगर (मेवाड़)
आचार्य तुलसी की ४७वीं जन्मजयन्ती के उपलक्ष्य में)

१. वलक्षः—श्वेत/श्वेतिमा। २. शिखरिणी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२३. न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति)

१. [१]न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति,
स्मृतिरतनु चिता स्यादेष भावस्तदर्थम्।
उपकृतिकृतचित्तैर्बुद्धिरिच्छेदभेद-
मुचितमिति मतं स्याद् विस्मृतौ वा स्मृतौ वा॥

सज्जन व्यक्ति किए हुए उपकारों को नहीं भूलते, यह स्मृति लम्बे समय तक संचित रहती है। इसलिए यह बात उसी के लिए कही गई है। मनुष्य की बुद्धि उन लोगों के साथ अभेद चाहती है जिनका चित्त उपकार करने में लगा रहता है। अतः यह मत उचित है कि अभिन्नता प्राप्त होने पर विस्मृति और स्मृति में कोई अन्तर नहीं होता।

२. न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति,
परमुपकृतिभाषा रूपमेकं न धत्ते।
उपकृतिनिपुणैतिच्छेदमाधाय सूचि[२]-
रुपकृतिपटु यातिच्छेदमापूर्य सूत्रम्॥

सज्जन व्यक्ति किए हुए उपकारों को नहीं भूलते। किन्तु उपकार की परिभाषा एकरूप नहीं होती। उपकार करने में निपुण सूई छेद करती हुई चलती है और उपकार करने में पटु धागा उस छेद को भरता हुआ चलता है।

(वि. सं. २०१७, कार्तिक शुक्ला दूज (२२ अक्टूबर, १९६०), राजनगर (मेवाड़)
आचार्य तुलसी की ४७वीं जन्मजयन्ती के उपलक्ष्य में)

(२४. किमेतन्नीलाभं गगनपटलं शून्यमखिलम्?)

१. [३]घटाकाशः क्वापि क्वचन भवनाकाशमुदितं,
क्वचित् कूपो वापी क्वचन लघुगर्ता तृणकुटी।
असीमं सीमायां निगडितमिदं पृच्छसि कुतः,
किमेतन्नीलाभं गगनपटलं शून्यमखिलम्?॥

कहीं घटाकाश का प्रयोग होता है, कहीं गृह-आकाश का। कहीं कूप-आकाश का प्रयोग होता है, कहीं वापी-आकाश का। कहीं लघु गर्त-आकाश का प्रयोग होता है, कहीं तृणकुटी आकाश का। यह असीम आकाश सीमा में बद्ध हो गया, फिर ऐसा क्यों पूछ रहे हो कि यह नील आभावाला सम्पूर्ण आकाश-पटल शून्य क्यों है?

---

१. मालिनी।
२. सूचिः-सूई।
३. शिखरिणी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. यदेकान्तं सत्यं भवति च मितं चाक्षुषमिदं,
किमेतन्नीलाभं गगनपटलं शून्यमखिलम्?
यदेकान्तासत्यं भवति च मितं चाक्षुषमिदं,
तदान्धा एवास्मिन् जगति कृतराज्याः सुकृतिनः।।

यह आकाश परिमित है, इसलिए चाक्षुष है। यदि यह एकान्त सत्य है तो फिर यह नील आभावाला सम्पूर्ण आकाश-पटल शून्य क्यों?

यह आकाश परिमित है, इसलिए चाक्षुष है। यदि यह एकान्त असत्य है तो फिर इस जगत् में अंधे ही राज्य करने वाले हैं, वे ही भाग्यशाली हैं।

(वि. सं. २०१८, माघ कृष्णा १४/१५ (४ फरवरी, १९६२), गंगाशहर)

(२५. भाव्यं सत्पुरुषार्थिभिर्नहि भिये ज्योतिर्विदोऽष्टग्रही)

१. [१]आलस्येऽस्ति भयं भये प्रतिभयं तत्रैति बुद्धिः क्षयं,
क्षीणायामिह शून्यमेव सकलं स्यात्तत्र नो को बली।
एते शून्यविहारिणोऽपि च नव ज्योतिर्विहारा ग्रहा,
भाव्यं सत्पुरुषार्थिभिर्नहि भिये ज्योतिर्विदोऽष्टग्रही।।

आलस्य में भय होता है। भय में प्रतिभय होता है अर्थात् भय भय को जन्म देता है। उससे बुद्धि का क्षय होता है। बुद्धि के क्षीण होने पर सब शून्य हो जाता है, वहां कोई भी बलवान् नहीं रहता। देखो, शून्य में विहार करने वाले ये नवग्रह ज्योतिश्चक्र के साथ विचरण कर रहे हैं। यह ज्योतिर्विदों द्वारा प्रख्यात अष्टग्रही का समय सत्पुरुषार्थ के लिए है, डरने के लिए नहीं।

२. आलोके तरणिः प्रशान्तिविधये सोमः सदा मङ्गलः,
स्वेच्छारोधविधौ बुधो गुरुरपि ज्ञानाय नीतौ भृगुः[२]।
केतुर्नाम शनिर्विनाश्यहनने नूनं श्रमस्तज्जनै-
र्भाव्यं सत्पुरुषार्थिभिर्नहि भिये ज्योतिर्विदोऽष्टग्रही[३]।।

प्रकाश के लिए सूर्य, शान्ति-विधि के लिए चन्द्रमा, मङ्गल के लिए मंगल ग्रह, स्वेच्छाचारिता को रोकने के लिए बुध ग्रह, ज्ञान के लिए गुरु, नीति के लिए शुक्र तथा केतु, शनि (और राहु) अनिष्ट का हनन करने वाले हैं, तब भय क्यों? इसलिए सब लोगों का कर्तव्य है कि श्रम करे। यह ज्योतिर्विदों द्वारा प्रख्यात अष्टग्रही का समय सत्पुरुषार्थ के लिए है, डरने के लिए नहीं।

(वि. सं. २०१८, माघ कृष्णा १४/१५ (४ फरवरी, १९६२), गंगाशहर)

१. शार्दूलविक्रीडितम्।
२. भृगुः-शुक्र।
३. अष्टग्रही-ज्योतिष का एक योग, जिसमें आठ ग्रहों के एक राशि में एकत्र हो जाने से अनिष्ट होने की संभावना रहती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२६. कथं स्यात् संसारे विगलितमदः शीतसमरः ?)

१. [१]अणुर्गुर्वीं शक्तिं श्रयति महतां यन्त्रणकृते,
विना स्नेहं तेजः स्फुरति तमसां संहृतिपटु।
अनेके सद्भावा ग्रहप्रभृतयः कृत्रिमतनाः,
कथं स्यात् संसारे विगलितमदः शीतसमरः॥

अणु महान् को नियंत्रित करने के लिए बड़ी शक्ति बन रहा है। अंधकार को मिटाने में कुशल तेज स्नेह के बिना स्फुरित हो रहा है। कृत्रिम शरीर वाले अनेक ग्रह (उपग्रह) आदि अनेक पदार्थों का निर्माण हो रहा है, तब इस संसार में शीत-युद्ध का अहंकार कैसे समाप्त हो सकता है?

२. कथं स्यात् संसारे विगलितमदः शीतसमरः[२],
इयं चिन्ता तेषां बहुजनविचिन्ताव्यसनिनः।
कथं स्यादत्रायं विगलितमदः शीतसमिरः[३],
इयं चिन्ता प्राप्ता प्रकृतनिजचिन्ताव्यसनिनाम्॥

इस संसार में शीत-युद्ध का अहंकार कैसे समाप्त हो? यह चिन्ता उन लोगों की है, जो पूरे समाज की विशेषरूप से चिन्ता करने में जी जान से लगे हुए हैं। यहां आसपास में चलने वाला शीत वातावरण कैसे मिटे, इसकी चिन्ता उन लोगों को हैं, जो स्वभाव से अपनी चिन्ता करने में संलग्न रहते हैं।

(वि. सं. २०१८, माघ कृष्णा १४/१५ (४ फरवरी, १९६२), गंगाशहर)

(२७. न जाने किं द्रष्टुं स्फुरितनयनस्तारकगणः?)

१. [४]न जाने किं द्रष्टुं स्फुरितनयनस्तारकगणः?,
नदृश्यो पूषाभूद् दिनमपि च निष्ठां गतमहो!।
प्रकाशः संलुप्तस्तिमिरमधुनाऽनावृतमुखं,
नभो व्याप्तुं भूमीमपि विहितयत्नं तदपि हा!॥

न जाने क्या देखने के लिए तारागण स्फुरित नयनवाला हो रहा है? आश्चर्य है कि सूर्य अदृश्य हो गया। दिन भी समाप्त हो गया। प्रकाश लुप्त हो गया। अब अंधकार ने आकाश में व्याप्त होने के लिए अपना मुख खोल लिया, पूरे आकाश में फैल गया, फिर भी खेद है कि वह भूमि पर व्याप्त होने के लिए प्रयत्नशील है।

---

१. शिखरिणी।
२. शीतसमरः-शीत युद्ध।
३. समिरः-समीर, हवा।
४. शिखरिणी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. धराऽऽधाराऽतुष्टः समजनि कथं मानवगणः?,
कथं शून्ये वासं स्पृहयति कृताऽसीमयत्नः?।
इति प्रश्नाक्रान्तो भ्रमति गतनिद्रोऽपि तिमिरे,
न जाने किं द्रष्टुं स्फुरितनयनस्तारकगणः?॥

यह जनसमूह पृथ्वी के आधार से कैसे असंतुष्ट हो गया? असीम यत्नपूर्वक शून्य में निवास करने के लिए क्यों स्पृहा कर रहा है? इस प्रश्न से आक्रान्त होकर तारकगण की नींद उड़ गई और वह अंधकार में भ्रमण कर रहा है। इसीलिए प्रश्न होता है कि न जाने क्या देखने के लिए तारागण स्फुरित नयनवाला हो रहा है?

३. न जाने किं द्रष्टुं स्फुरितनयनस्तारकगणोऽ-
नुयोगोऽयं पुंसां स्फुरति हृदि दूरत्वजनितः।
न जाने किं द्रष्टुं स्फुरितनयनज्योतिषविदोऽ-
नुयोगस्ताराणामपि लषति दूरत्वजनितः॥

न जाने क्या देखने के लिए तारागण स्फुरित नयनवाला हो रहा है? मनुष्यों के मन में यह प्रश्न दूरी के कारण पैदा हो रहा है। न जाने क्या देखने के लिए ये ज्योतिषी स्फुरित नयन वाले हो रहे हैं? तारागण में भी यह प्रश्न दूरी के कारण पैदा हो रहा है।

(वि. सं. २०२२, माघ शुक्ला ७ (२९ जनवरी, १९६६), हिसार)

(२८. को हि तुलामधिरोहति?)

१. [1]को हि तुलामधिरोहति, चरणैराधारमाश्रितैः पुण्यैः।
दत्तो निम्नो वासस्तथापि गतिकारका नित्यम्॥

कौन व्यक्ति उनकी तुलना कर सकता है, जिनके पवित्र चरण आधारयुक्त हैं। जिनको निम्न स्थान दिया है, फिर भी वे सदा गतिशील हैं।

(वि. सं. २०२२, माघ शुक्ला ७ (२९ जनवरी, १९६६), हिसार)

(२९. क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे)

१. [2]मनः शान्तं शान्तं वचनमपि कायः शममितः,
सुमन्दः श्वासोऽपि प्रशममुपयाता च प्रकृतिः।
प्रबुद्धं चैतन्यं प्रकटयति गूढं गुरुतमं,
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

पूज्य कालूगणी का मन शांति से परिपूर्ण था। उनका वचन भी शान्ति देने वाला

१. आर्या। २. शिखरिणी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। उनकी मुखाकृति से भी शान्ति टपक रही थी। उनकी प्रकृति शान्त थी, इसलिए उनका श्वास भी मन्द था। उनका चैतन्य प्रबुद्ध था, वह गहरे रहस्य को प्रकट करता था। महापुरुषों की क्रियासिद्धि पराक्रम में होती है, उपकरण (सामग्री) में नहीं।

(वि. सं. २०३३, फाल्गुन शुक्ला दूज (२० फरवरी, १९७७), छापर, कालुजन्मशताब्दी)

(३०. कियान् कान्तः काम्यः कलिमलहरः कालुसमयः)

१. [1]अतीतस्यालोके विहरति मनोग्राहि पुलकं,
कियान् कान्तः काम्यः कलिमलहरः कालुसमयः।
प्रयोगप्रोद्योगो मननसमये स्वानुभवनं,
कियान् कान्तः काम्यः प्रवरतुलसीरामसमयः।।

जब कभी हम अतीत के आलोक में चले जाते हैं, उस समय मनमोहक पुलकन पैदा हो जाती है और लगता है कि पूज्य कालू का समय कितना कमनीय, कितना काम्य और कितने कलिमल को हरने वाला था। मनन के समय अनुभव करता हूं कि प्रयोग और प्रयत्न की दृष्टि से पूज्य आचार्य तुलसी का समय कितना कमनीय और कितना काम्य है।

(वि. सं. २०३३, फाल्गुन शुक्ला दूज (२० फरवरी, १९७७), छापर, कालुजन्मशताब्दी)

(३१. प्रणंणम्ये कालूं कलिमलकलापाग्निसलिलम्)

१. यदीयं वैदुष्यं क्वचिदपि न दोषावहमहो,
यदीयं नैपुण्यं क्वचिदपि न पुण्यक्षयकरम्।
यदीयं वैदग्ध्यं क्वचिदपि न दाहं जनयति,
प्रणंणम्ये कालूं कलिमलकलापाग्निसलिलम्।।

विद्वत्ता के साथ कहीं न कहीं कोई दोष (अहंकार आदि) जुड़ जाता है। आश्चर्य है कि जिसकी विद्वत्ता सर्वथा दोषमुक्त है। निपुणता माया के साथ जुड़कर कहीं न कहीं पुण्य का क्षय करने वाली हो जाती है, किन्तु जिसकी निपुणता पुण्य का अर्जन करने वाली बन गई। विदग्धता दाह पैदा करती है, किन्तु जिसकी विदग्धता ने कहीं भी दाह पैदा नहीं किया, शीतलता पैदा की, उस कलिमलसमूहरूप अग्नि के लिए जल का काम करने वाले कालू को मैं बार-बार नमस्कार करता हूं।

२. प्रणंणम्ये साधून् कलिमलकलापाग्निसलिलान्,
प्रणंणम्ये साध्वीः कलिमलकलापाग्निसलिलाः।
प्रणंणम्ये सर्वान् निजहृदि सुनिष्ठामधिगतान्,
प्रणंणम्ये कालूं कलिमलकलापाग्निसलिलम्।।

---
१. शिखरिणी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलिमलसमूहरूप अग्नि के लिए जल का काम करने वाले साधुओं को मैं बार-बार नमस्कार करता हूं। कलिमलसमूहरूप अग्नि के लिए जल का काम करने वाली साध्वियों को मैं बार-बार नमस्कार करता हूं। अपने हृदय में श्रेष्ठ निष्ठा रखने वाले सबको मैं बार-बार नमस्कार करता हूं, इसलिए यह संगत है कि मैं कलिमल-समूहरूप अग्नि के लिए जल का काम करने वाले कालू को बार-बार नमस्कार करता हूं।

(वि. सं. २०३३, फाल्गुन शुक्ला दूज (२० फरवरी, १९७७),
छापर, कालुजन्मशताब्दी)

(३२. सहस्रांशुः प्रांशुः किमिति विमना उत्सवदिने ?)

१. [१]असंख्याः दुःखार्त्ता जगति मनुजाः साश्रुनयनाः,
जनाः केचिल्लोके तदपि तमसामुत्सवपराः।
तथाप्येष प्रश्नः स्फुरति तदिदं चित्रमतुलं,
सहस्रांशुः प्रांशुः किमिति विमना उत्सवदिने।।

उत्सव की इस वेला में समुन्नत सूर्य उदास क्यों है? क्योंकि इस जगत में असंख्य मनुष्य दुःख से पीडित हैं, उनकी आंखों में आंसू हैं। इस जगत् में कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं जो अन्धकार (दुःख) में भी उत्सव मना रहे हैं। फिर भी यह प्रश्न उभरता है, यह असीम आश्चर्य है।

२. सदा शून्यस्थायी विपुलपरितापैः परिवृतः,
इतो नानालीलां कलयदऽधुनाप्यस्ति तिमिरम्।
सुतः संहारार्त्तः कलुषसलिलाप्यस्ति तनुजा,
सहस्रांशुः प्रांशुः किमिति विमना उत्सवदिने।।

उत्सव की इस वेला में उन्नत सूर्य उदास क्यों है, इसलिए कि उसका अपना कोई घर नहीं है, वह सदा शून्य में रहता है। उसके चारों ओर ताप ही ताप है। दूसरी ओर अंधकार आज भी नाना प्रकार की लीलाएं कर रहा है, समाप्त नहीं हो रहा है। उसका (अन्धकार) का पुत्र यमराज संहार के कारण जनता को पीडित कर रहा है। उसकी पुत्री यमुना कलुष जलवाली है, नीले रंग की आभावाली है।

(वि. सं. २०३३, फाल्गुन शुक्ला दूज (२० फरवरी, १९७७),
छापर, कालुजन्मशताब्दी)

---

१. शिखरिणी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(३३. न जाने किं द्रष्टुं स्फुरितनयनोऽयं दिनकरः?)

१. प्रकाशं व्याघातं नयति तिमिरं व्याप्य गगनं,
तिरोधातुं सत्यं प्रकृतिनियतं प्रस्तुतमसत्।
असौन्दर्यं कामं ग्रसति बत! सौन्दर्यमरुजं,
न जाने किं द्रष्टुं स्फुरितनयनोऽयं दिनकरः।।

अन्धकार गगन में व्याप्त होकर प्रकाश को हानि पहुंचा रहा है। असत् प्रकृति से नियत सत्य को तिरोहित करने के लिए प्रस्तुत है। खेद है कि असौन्दर्य स्वस्थ सौन्दर्य का प्रचुरता से ग्रास बना रहा है। फिर भी पता नहीं कि यह सूर्य विस्फारित नयनों से क्या देखने के लिए उत्सुक है?

(वि. सं. २०३३, फाल्गुन शुक्ला दूज (२० फरवरी, १९७७), छापर, कालुजन्मशताब्दी)

२. आशुकवित्वम् : प्रदत्तसमस्यानुबद्धम्

(१. मशकगलकरन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम्)

(भरतपुर में आशुकविता के लिए प्रदत्त समस्या–)

१. [1]प्रतनुप्रतनुयन्त्रे विश्वमाविष्टमस्ति,
प्रतनुप्रतनुयन्त्रे पर्वताः सन्त्यसंख्याः।
सुविदितमिति धीमन्! किं विचित्रं तदानीं,
मशकगलकरन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम्।।

छोटे-छोटे यन्त्रों में सम्पूर्ण विश्व समा जाता है, छोटे-छोटे यन्त्रों में असंख्य पर्वत समा जाते हैं, यह बात सुविदित है। फिर हे धीमन्! इसमें आश्चर्य क्या कि मच्छर के गले के छिद्र में हाथियों का समूह प्रविष्ट हो।

(वि. सं. २००६, चैत्र (मार्च, १९५०), भरतपुर (राज.)

(२. सूच्यग्रे कूपशतकं तदुपरि नगरी तत्र गंगाप्रवाहः)

(भरतपुर में किसी पंडित द्वारा प्रदत्त समस्या–)

२. [2]सूच्यग्रे कूपशतकं तदुपरि नगरी तत्र गंगाप्रवाहः,
चित्रं स्थूलेक्षणानां भवति च भवति ज्ञानसीमां श्रितानाम्।
नेदानीं चित्रमेतद् नभसि विरचितं सद्म विक्रीयमाणं,
सूच्यग्रं स्वावलम्बं भवति च गगनं यन्निरालम्बमेव।।

१. मालिनी। २. स्रग्धरा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सूई के अग्रभाग पर सौ कूए, उसके ऊपर नगरी और उसके ऊपर गंगा का प्रवाह'–यह सब स्थूल दृष्टिवालों को आश्चर्य होता है और आश्चर्य होता है उन लोगों को, जो ज्ञान की सीमा में रहते हैं।

आज कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि आकाश में घर बेचे जा रहे हैं। सूई का अग्रभाग एक आलम्बन है और आकाश आलम्बनरहित है।

(वि. सं. २००६, चैत्र (मार्च, १९५०), भरतपुर (राज.)

(३. दिशि प्रतीच्यां समुदेति भानुः)

(संस्कृत सम्मेलन, उज्जैन में वहां के पंडितों द्वारा प्रदत्त समस्या–)

१. [1]मृते धवे[2] यद् विधवा भवित्री,
पुराणमेतच्च युगे नवेऽस्मिन्।
त्यक्तः स्त्रिया स्यात्पतिरेव जीवन्,
दिशि प्रतीच्यां समुदेति भानुः।।

पति के मरने पर स्त्री विधवा हो जाती है, यह पुराने युग की बात है। आज के इस नए युग में जीवित पति भी स्त्री के द्वारा छोड़ दिया जाता है, इसीलिए आज सूर्य पश्चिम दिशा में उदित हो रहा है।

(वि. सं. २०१२, (सन् १९५५), संस्कृत सम्मेलन, उज्जैन चतुर्मास)

(४. मशकदशनमध्ये हस्तिनः सञ्चरन्ति)

(संस्कृत सम्मेलन, उज्जैन में वहां के एक पंडित द्वारा प्रदत्त समस्या–)

१. [3]नृपतिरपि जनः स्यात् प्राकृतो मार्गचारी,
क्वचिदपि न पुराणैः कल्पना चाप्यकारि।
भवति जगति नेता साम्प्रतं नाम निःस्वः[4],
मशकदशनमध्ये हस्तिनः सञ्चरन्ति।।

मार्ग पर चलने वाला राजा भी सामान्य जन हो सकता है, ऐसी कल्पना प्राचीन कवि ने कभी नहीं की। आज जगत् में नेता वही है, जो निर्धन होता है। कवि ने सत्य कहा–'मच्छर के दांतों के मध्य से हाथी संचरण कर रहे हैं।

(वि. सं. २०१२, (सन् १९५५), संस्कृत सम्मेलन, उज्जैन चतुर्मास)

---

१. उपेन्द्रवज्रा।
२. धवः–पति।
३. मालिनी।
४. निःस्वः–निर्धन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(५. कालीकज्जलशोणिमा धवलयत्यर्धं नभोमण्डलम्)

(संस्कृत सम्मेलन, उज्जैन में किसी विद्वान् द्वारा प्रदत्त समस्या–)

१. [1]कालीकज्जलशोणिमा[2] धवलयत्यर्धं नभोमण्डलं,
दुष्टः कोऽपि सुविद्यया धवलितो जातो मनाक् सन्मनाः।
दुष्टान् मानसिकान्निजान् प्रतिपलं भावान् विहातुं यतः,
दुष्टत्वं विगलन्नवा सुजनता यद् व्याप्यमाना ध्रुवम्।।

कोई दुर्जन व्यक्ति सुविद्या से धवलित होकर कुछ उत्तम मन वाला हो गया। उसने अपने दुष्ट मानसिक भावों को प्रतिपल छोड़ने का प्रयत्न किया। उसका दुष्टत्व विगलित हो रहा है और नई सुजनता उसमें व्याप्त हो रही है। ऐसा देखकर लगता है कि मानो काली की कजरारी लालिमा आधे नभमण्डल को धवलित कर रही है।

(वि. सं. २०१२, (सन् १९५५), संस्कृत सम्मेलन, उज्जैन चतुर्मास)

(६. सभामध्ये न कोकिला)

(संस्कृत साहित्य सम्मेलन, रतलाम में प्रदत्त समस्या–)

१. [3]न वसन्तो न चाम्राणि, न चैवेयं वनस्थली।
किं चित्रं यदि वा विद्वन्!, सभामध्ये न कोकिला।।

न वसन्त ऋतु है, न आम्रफल हैं और न ही यह वनस्थली है। हे विद्वन्! यदि इस सभा में कोयल न हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

(वि. सं. २०१२, पौष कृष्णा १० (८ जनवरी, १९५६), रतलाम)

(७. कर्दन्त्यमी मानवाः)

(बनारस, संस्कृत महाविद्यालय में किसी विद्वान् द्वारा प्रदत्त समस्या–)

१. [4]प्राणो नृत्यति विश्वगः प्रतिपलं सर्वान् जनान् जीवयन्,
नीतेर्भ्रंश इहाजनिष्ट सततं सोप्यस्ति निष्प्राणितः।
वायुर्नृत्यति साम्प्रतं च गगने सर्वास्ववस्थास्वपि,
निष्प्राणा भुवने भवन्ति सकलाः कर्दन्त्यमी मानवाः।।

यह विश्वव्यापी प्राण सभी मनुष्यों को जीवन देता हुआ प्रतिपल नृत्य करता है। किन्तु आज नीति का विनाश हो गया, इसलिए वह प्राण भी सतत निष्प्राण है। अब सब अवस्थाओं में इस गगन में वायु नृत्य कर रही है। प्राण चला गया, केवल वायु रह गई। जब विश्व में सब निष्प्राण हो जाते हैं तब मनुष्य काख बजाते हैं।

(वि. सं. २०१५ मार्गशीर्ष शुक्ला ११-१२ (२१-२२ दिसम्बर, १९५८),
संस्कृत महाविद्यालय, बनारस)

---

१. शार्दूलविक्रीडितम्।
२. शोणिमा (शोणिमन्)–लालिमा।
३. अनुष्टुप्।
४. शार्दूलविक्रीडितम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(८. सरस्यामालस्यादिव पतति पाटीरपवनः)

(बनारस, संस्कृत महाविद्यालय में किसी पंडित द्वारा प्रदत्त समस्या–)

१. [1]श्रमो विश्रामार्थी भवति यदिदानीं प्रतिजनं,
जनाः सर्वे खर्वं[2] निदधतितमां गर्वमतुलम्।
इयं वृत्तिः प्रादुर्भवति यदि वा चेतनजने,
सरस्या[3]मालस्यादिव पतति पाटीर[4]पवनः॥

आज प्रत्येक व्यक्ति में श्रम विश्रामार्थी है, कोई श्रम करना नहीं चाहता। सब मनुष्य निकृष्ट असीम गर्व को धारण कर रहे हैं। यदि चेतनावान् मनुष्यों में इस प्रकार की वृत्ति प्रकट होती है तो कहना होगा कि चन्दनवन का पवन सरोवर में मानो अलसाया हुआ सुस्ता रहा है।

(वि. सं. २०१५ मार्गशीर्ष शुक्ला ११-१२ (२१-२२ दिसम्बर, १९५८),
संस्कृत महाविद्यालय, बनारस)

(९. न रजनी न दिवा न दिवाकरः)

(बनारस, संस्कृत महाविद्यालय में आशुकवित्व के लिए प्रदत्त समस्या–)

१. [5]स्पृशति दृष्टिरियञ्च बहिर्जगत्,
तिमिरमस्ति तथेतरदस्ति च।
स्पृशति दृष्टिरियं जगदान्तरं,
न रजनी न दिवा न दिवाकरः॥

जब यह दृष्टि बहिर्जगत् का स्पर्श करती है तब उसे अन्धकार और प्रकाश–दोनों मिलते हैं। जब यह दृष्टि अन्तर्जगत् का स्पर्श करती है तब वहां न रात होती है, न दिन होता है और न सूर्य।

(वि. सं. २०१५ मार्गशीर्ष शुक्ला ११-१२ (२१-२२ दिसम्बर, १९५८),
संस्कृत महाविद्यालय, बनारस)

(१०. महाजनो येन गतः स पन्थाः)

(संस्कृत कॉलेज, मद्रास में विद्वज्जनों द्वारा प्रदत्त समस्या–)

१. [6]जनो जनो येन गतः स पन्थाः, भवेदिदं शाश्वतमस्ति सत्यम्।
तथापि लोकैः विपरीतमुक्तं, महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

जन–जन जिस मार्ग से गया, वही पथ है, यह शाश्वत सत्य है। फिर भी लोगों ने इसके विपरीत कहा–'महाजन जिससे गया, वही पथ है।'

१. शिखरिणी।
२. खर्वम्–तुच्छ।
३. सरसी–सरोवर।
४. पाटीरः–चन्दन।
५. द्रुतविलम्बितम्।
६. उपेन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. [1]महाजनो येन गतः स पन्थाः, पुराणमुक्तं खलु लभ्यतेऽद्य।
नवीनमुक्तं भविताद्य भव्यं, राज्यं श्रितो येन गतः स पन्थाः।।

'महाजन जिससे गया, वही पथ है, यह आज पुरानी उक्ति है। आज की नवीन उक्ति यह होनी चाहिए कि सत्तारूढ़ व्यक्ति जिस मार्ग से गया वही पथ है।

(वि. सं. २०२५, आसोज शुक्ला ३ (२५ सितम्बर, १९६८), संस्कृत कॉलेज, मद्रास)

(११. अस्ति स्तः सन्ति कल्पनाः)

(संस्कृत कॉलेज, मद्रास में विद्वज्जनों द्वारा प्रदत्त समस्या–)

१. [2]यदा मे चञ्चलं चित्तं, चाञ्चल्यं नानुभूयते।
यदा ध्यानस्थितोऽहं स्यां, अस्ति स्तः सन्ति कल्पनाः।।

जब मेरा चित्त चंचल होता है तब मुझे चंचलता की अनुभूति नहीं होती। जब मैं ध्यान-स्थित होता हूं तब एक दो दस सभी कल्पनाएं आने लगती हैं।

(वि. सं. २०२५, आसोज शुक्ला ३ (२५ सितम्बर, १९६८), संस्कृत कॉलेज, मद्रास)

(१२. चन्द्रोदये रोदिति चक्रवाकी)

(बृहद् संस्कृत-सम्मेलन, गंगाशहर में प्रदत्त समस्या–)

१. [3]भाग्योदयो भिन्नपदो विभाति, सर्वत्र साम्य न हि तेन दृष्टम्।
दृष्ट्वेन्दुमुत्साहपरोऽपरः स्यात्, चन्द्रोदये रोदिति चक्रवाकी।।

सबका भाग्योदय भिन्न-भिन्न होता है। सर्वत्र उसमें साम्यता नहीं देखी जाती। चन्द्रमा को देखकर कोई प्रसन्न होता है तो कोई अप्रसन्न। किन्तु चक्रवाकी चन्द्रोदय होने पर रोने लग जाती है।

(वि. सं. २०२८, पौष शुक्ला १२/१३ (२९ दिसम्बर, १९७१), बृहद् संस्कृत-सम्मेलन, गंगाशहर)

(१३. कथं भवेद् नो जठराग्निशान्तिः?)

(बृहद् संस्कृत सम्मेलन, गंगाशहर में प्रदत्त समस्या–)

१ [4]यस्यास्ति तृष्णा सुतरां विशाला, स एव मां पृच्छति प्रश्नमेनम्।
चित्रं ततः स्यादधिकं किमत्र, कथं भवेद् नो[5] जठराग्निशान्तिः।।

जिसकी तृष्णा निरन्तर विशाल बनी हुई है, वही मनुष्य मुझे यह प्रश्न पूछता है कि हमारी जठराग्नि कैसे शान्त हो तो इससे अधिक विस्मय और क्या हो सकता है?

(वि. सं. २०२८, पौष शुक्ला १२/१३ (२९ दिसंबर, १९७१), बृहद् संस्कृत-सम्मलन, गंगाशहर)

---

१. उपजाति।
२. अनुष्टुप्।
३. इन्द्रवज्रा।
४. उपजाति।
५. नः (षष्ठीबहुवचन में अस्मद् को नस् आदेश)–हमारा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. आशुकवित्वम् : प्रदत्तविषयानुबद्धम्

१. आवर्तः

(बुडलेण्ड केलर–अमेरिकन राइटर द्वारा प्रदत्त विषय–Revolving Stairs घूमती हुई सोपानवीथी।)

१. [1]आवर्त एकः पयसां विभाति,
भ्राम्यन् स्वयं भ्रामयतेप्यशेषान्।
स्वसीम्नि यातान्नयतेऽपि निम्नं,
यच्चञ्चलानां रचितं विचित्रम्।।

एक आवर्त पानी का होता है। वह स्वयं घूमते हुए सभी को घुमाता है। वह अपनी सीमा में आए हुए पदार्थों को नीचे ले जाता है। क्योंकि चंचल पदार्थों की प्रवृत्ति विचित्र होती है।

२. [2]आवर्तमाना नयते तथोर्ध्वं,
सोपानवीथी मनुजान् क्रमेण।
लक्ष्यं स्थिरं प्राप्य जनस्तदन्तं,
गच्छेद् गतिं यः कुरुते तदर्हाम्।।

दूसरा आवर्त है घूमती हुई सोपानवीथी। वह क्रमपूर्वक मनुष्यों को वैसे ही ऊपर ले जाती है जो उसके अनुरूप गति करता है। मनुष्य अपने स्थिर लक्ष्य को पाकर उससे छुटकारा पा लेता है।

३. [3]तृतीय एषोस्ति च भावनाया,
ऊर्ध्वंगतः कर्षति लोकमुच्चैः।
स्वभाव ऊर्ध्वंगमिनामसौ हि,
निम्नान् जनानुन्नयते स्वतोऽपि।।

तीसरा आवर्त होता है भावना का। ऊंची भावना का आवर्त मनुष्यों को ऊंचा ले जाता है। ऊपर जाने वालों का यही स्वभाव होता है कि वे स्वयं ऊपर जाते हुए नीचे वाले दूसरे मनुष्यों को भी ऊपर ले जाते हैं।

(वि. सं. २०११, फाल्गुन (फरवरी-मार्च, १९५५), मुम्बई)

---

१. उपजाति।
२. इन्द्रवज्रा।
३. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. विद्वत्सभा

(एस. पी. कॉलेज के अवकाश प्राप्त डॉ. के. एन. वाटवे, एम. ए. पी-एच. डी., संस्कृत-विभागाध्यक्ष, पूना द्वारा प्रदत्त श्लोकमय विषय-)

(१मिलिताः पण्डिताः सर्वे, काव्यस्य श्रवणेच्छया।
अतो हि काव्यमाश्रित्य, वर्ण्यतां विदुषां सभा॥)

सभी पण्डित काव्य सुनने की इच्छा से यहां एकत्रित हुए हैं। इसलिए आप (मुनिश्री) 'विद्वत्सभा' इस विषय पर आशुकवित्व करें।

१. २स्वातन्त्र्यं यज्जन्मसिद्धोऽधिकारः,
येषां नादः सर्वथा श्रूयमाणः।
तेषां नाम्ना मन्दिरं विद्यमानं,
विद्वद्वर्या अत्र सर्वे प्रभूताः।।

जिन महामनीषी (लोकमान्य बालगंगाधर तिलक) ने यह नारा दिया था कि 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' वह नाद आज सर्वत्र गूंज रहा है, उनकी नाम-स्मृति में यह 'तिलक विद्यापीठ' बना है। आज सभी पंडित यहां उपस्थित हैं।

२. ३विलोक्य सर्वान् विदुषः प्रमोदे, विराजमाना गुरवो ममातः।
इतो विराजन्ति मुमुक्षवोऽमी, साहित्यपाण्डित्यकलाप्रपूर्णाः॥

मैं सभी विद्वानों को देखकर परम प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं। एक ओर मेरे गुरुदेव आचार्य तुलसी विराजमान हैं तो दूसरी ओर साहित्य के विद्वान् और कला में निपुण मुमुक्षु बैठे हुए हैं।

३. ४ये ये विचारा मनसोद्भवन्ति, ज्ञातास्तथा ज्ञाततमा लसन्ति।
आविष्करोमि प्रमनाश्च ताँस्तान्, ज्ञेयः ससीमः समयो ममास्ति॥

जो जो विचार मन में उत्पन्न हो रहे हैं, वे ज्ञात और सुज्ञात हैं। फिर भी मैं प्रसन्न-मन से उन्हें अभिव्यक्त कर रहा हूं। मेरे बोलने का समय ससीम है, यह सब जान लें।

४. ५नाहं क्वचित् कांश्चन वेद्मि विज्ञान्,
न तेऽपि जानन्तितमां च मां च।
पूर्वाऽयमेवाऽस्ति समागमोऽत्र,
परं प्रमोदोऽस्ति महान् समन्तात्॥

---

१. अनुष्टुप्।
२. शालिनी।
३. उपजाति।
४. इन्द्रवज्रा।
५. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं यहां उपस्थित किसी विद्वान् को नहीं जानता और न ही कोई विद्वान् मुझे जानता है। यहां का यह हमारा पहला ही समागमन है, परन्तु फिर भी चारों ओर महान् हर्ष का वातावरण है।

५. येषां विचाराः प्रकृतिप्रसन्नाः, सद्भावना स्फूर्तिमती विभाति।
श्रोतुं विचारान् यतिनां वरेण्यान्, समागतांस्तान्न विदन् प्रवेद्मि॥

जिनके विचार स्वभावतः निर्मल और स्पष्ट हैं, जिनकी सद्भावना स्फूर्तिमती है, जो मुनियों के वरेण्य विचारों को सुनने के लिए समागत हैं, उनको नहीं जानता हुआ भी मैं अच्छी तरह से जानता हूं।

६. प्रमोदराशिर्नयने निमग्नो विलोक्यते तत्त्वमिदं महत्तत्।
अप्रेम्णि ये प्रेम सभाजयन्ति, ते पण्डिता एव न संशयोऽत्र॥

सबकी आंखें उल्लास से आप्लावित हैं–यह महान् तथ्य यहां स्पष्ट दिखाई दे रहा है। जो व्यक्ति अप्रेम में भी प्रेम का आचरण करते हैं, वे सब पण्डित ही होते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

७. [1]नाज्ञेषु शान्तिः स्थिरताप्रसक्तिः, शान्ताः स्थिराः सन्ति समे यदेते।
विद्वत्सभेयं लसतेऽत्र रम्या, सर्वेऽपि विद्वांस इति ब्रवीमि॥

अज्ञ व्यक्तियों में शान्ति और स्थिरता की प्राप्ति नहीं होती। यहां शांति और स्थिरता दोनों हैं। अतः यहां यह विद्वत्सभा अत्यन्त रमणीय है और यहां उपस्थित सभी व्यक्ति विद्वान् हैं, ऐसा मैं कहता हूं।

(वि. सं. २०११, फाल्गुन शुक्ला ४ (२६ फरवरी, १९५५), तिलक विद्यापीठ, पूना)

३. संस्कृतभाषाया विरोधः

(एस. पी. कॉलेज के अवकाश प्राप्त डॉ. के. एन. वाटवे, एम. ए., पी-एच. डी., संस्कृत-विभागाध्यक्ष, पूना द्वारा प्रदत्त श्लोकमय विषय–)

([2]यच्च संस्कृतभाषाया विरोधो दृश्यते क्वचित्।
तमेवाश्रित्य विषयं, काव्यमत्र विरच्यताम्॥)

कहीं-कहीं संस्कृत भाषा का विरोध देखा जा रहा है। मुने! आप इसी विषय को आधार बनाकर काव्य-रचना करें।

---

१. इन्द्रवज्रा। २. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. [1]यस्यां महत्तत्वमहो! विभाति, स्वाध्यात्मिकी येन गतिः प्रवृद्धा।
विकासमार्गो विशदो यतः स्यात्, तथापि लोकैः क्रियते विरोधः॥

आश्चर्य है कि जिस भाषा के साहित्य में महान् तत्त्व है, जिसने अपनी आध्यात्मिक गति को वेग दिया है, जिसके आश्रयण से विकासमार्ग विशद हो जाता है, फिर भी लोग उसका विरोध करते हैं।

२. तत्रापि तथ्यं वरिवर्ति किञ्चिद्, न संस्कृतस्यास्ति मुधा विरोधः।
यत् संस्कृतज्ञा हि पुराणचित्ताः, तद् यत्र तत्राऽग्रहमाश्रयन्ति॥

उनके विरोध में भी कुछ तथ्य हैं। वे संस्कृत का व्यर्थ ही विरोध नहीं करते। क्योंकि संस्कृतज्ञ व्यक्ति पुराने विचारों के होते हैं, इसलिए वे यत्र-तत्र आग्रह कर बैठते हैं।

३. सारं यथा नाम पुरातनेषु, तथा नवीनेष्वपि गृह्यते चेद्।
भाषाविरोधः स्वयमेव नाशं, नूनं नयेन्नात्र विमर्शणीयम्॥

जिस प्रकार प्राचीनता में सारतत्त्व है, वैसे ही यदि नवीनता में भी सारतत्त्व मान लिया जाए तो भाषा का विरोध स्वयं ही नष्ट हो जाए, इसमें कुछ भी विचारणीय नहीं है।

४. सर्वत्र तत्त्वस्य भवेद् विरोधः, तत्र प्रमोदो विदुषां हि मान्यः।
विरोधतस्तत्त्वमुपासनीयं, न नाम भीतिश्च ततो विधेया॥

यदि सर्वत्र सत् तत्त्व का विरोध होता हो तो वहां विद्वान् व्यक्तियों को प्रमुदित होना चाहिए। क्योंकि विरोध से तत्त्व के प्रति उपासना बढ़ती है। वहां उससे भय नहीं होना चाहिए।

(वि. सं. २०११, फाल्गुन शुक्ला ४ (२६ फरवरी, १९५५), तिलक विद्यापीठ, पूना)

४. घटीयन्त्रम्

(एस. पी. कॉलेज के अवकाश प्राप्त डॉ. के. एन. वाटवे, एम. ए., पी-एच. डी., संस्कृत-विभागाध्यक्ष, पूना द्वारा प्रदत्त श्लोकमय विषय–)

([2]समयज्ञापकं नित्यं, नव्यानां हस्तभूषणम्।
स्रग्धरावृत्तमालम्ब्य, घटीयन्त्रं[3] हि वर्ण्यताम्॥)

जो सदा समय को बताती है, जो युवकों के हाथ का आभूषण बनी हुई है, उस 'घड़ी' का स्रग्धरा छन्द में वर्णन करें।

---

१. उपजाति।
२. अनुष्टुप्।
३. घटीयन्त्रम्–घड़ी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. [१]यद्वा ज्ञातः पुराणैर्निखिलऋषिवरैर्व्योम वीक्ष्यापि कालः,
ज्ञाता तज्ज्ञायते वा प्रकृतिविवशता साम्प्रतं वर्धमाना।
स्वातन्त्र्यस्य प्रणादो[२] बहुजनमुखगः किन्तु नो कार्यरूपे,
हस्ते बध्वा घटीस्ता भवति च मनुजश्चित्रमासामधीनः॥

सभी प्राचीन ऋषि-मुनियों ने आकाश को देखकर काल का ज्ञान किया था। किन्तु आज बढ़ती हुई प्रकृति की विवशता स्वयं ज्ञात है या ज्ञात हो सकती है। वर्तमान में स्वतन्त्रता का स्वर जन-जन के मुख पर है, किन्तु वह कार्यरूप में परिणत नहीं है। आश्चर्य है कि मनुष्य हाथ पर घड़ी बांधकर, उसके अधीन हो रहा है।

२. चक्षुर्यद् वान्तरालं स्फुरितमपि भवेत् तन्न यन्त्रस्य चेष्टा,
विज्ञाः पश्यन्तु सर्वे वयमिह मुनयः कस्य हस्तेऽस्ति यंत्रम्?
चक्षुष्मानत्र बुद्धो भरतजनपदे स्वात्मना स्वं प्रपश्येत्,
बाह्ये दृष्टिं वितन्वन् बहिरपि सुदृशः![३] स्यात्पराधीनचेताः॥

जब यह अन्तश्चक्षु खुल जाता है, तब वह कोई यन्त्र की चेष्टा नहीं मानी जाती। सारे विद्वान् देखें कि हम मुनि हैं। हमारे किसके हाथ में यन्त्र (घड़ी) है? भारत में उसे ही चक्षुष्मान् माना गया है, जो अपनी आत्मा से अपने आपको देखता है। चक्षुष्मान् विद्वानो! बाहर की ओर दृष्टि पसारने वाले का चित्त बाह्य वस्तुओं के अधीन हो जाता है।

३. लोकोऽयं नाम चित्रो भवति च सततं नात्र सन्देहलेशः,
शृङ्गारार्थं प्रयत्नो भवति नवनवो ज्ञातमेतत् प्रसिद्धम्।
स्त्रीणां हस्ते हि दृष्टा भवति च मनुजैः साप्यलंकाररीतिः,
घट्या व्याजेन लब्धा व्रजति च किमसौ साम्प्रतं स्त्रीत्वमेतुम्?॥

इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है कि यह मनुष्य बहुत विचित्र बनता जा रहा है। यहां शृंगार के लिए नए-नए प्रयत्न होते हैं-यह सबको भलीभांति ज्ञात है। स्त्रियों के हाथ शृंगारित होते हैं, किन्तु पुरुषों ने भी घड़ी के मिष से हाथ को अलंकृत किया है। इससे यह आशंका होती है कि क्या यह मनुष्य अब स्त्रीत्व की ओर जा रहा है?

४. लोकोऽयं जायमानो नहि नहि विदुषा विस्मयः कोपि कार्यः,
स्त्रीत्वे पुंस्त्वं कदाचिद् भवति दृशिगतं पुंस्त्वमेवापि तत्त्वे।
कालोऽसीमो विभाति प्रकृतिविलसितो यद्रुचिश्चापि चित्रा,
बुद्धेर्भेदोऽपि जातस्तदघटितघटा मन्यतामत्र सत्या॥

१. स्रग्धरा।
२. प्रणादः-निनाद, स्वर।
३. सुदृक्-चक्षुष्मान्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोक में यह होता है—स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री बन सकती है। इसमें किसी भी विद्वान् को विस्मय नहीं करना चाहिए। काल असीम है। वह प्राकृतिक है। लोगों की रुचि भी भिन्न-भिन्न है। बुद्धि का तारतम्य भी है, इसलिए किसी भी अघटित घटना को सत्य माना जा सकता है।

(वि. सं. २०११, फाल्गुन शुक्ला ५ (२७ फरवरी, १९५५), वाग्वर्धिनी सभा, पूना)

५. मृतभाषा

(आर. एम. धर्माधिकारी द्वारा प्रदत्त श्लोकमय विषय—)

([1]भाषा मृतेति प्रवदन्ति केचिद्, गीर्वाणवाणी गुणभूषिताऽपि।
मुनीन्द्र! तत्त्वं कथयस्व नूनं, कथं पुनर्वैभवशालिनी स्यात्?॥)

संस्कृत भाषा गुणों से भूषित है, फिर भी कुछेक व्यक्ति उसे मृत भाषा मानते हैं। मुनीन्द्र! आप यह बताएं कि वह भाषा पुनः वैभवशालिनी कैसे हो?

१. भाषा कदाचिन्न मृताऽमृता स्याद्, भाषाज्ञ एवापि मृतोऽमृतः स्यात्।
भाषामुपादाय जनाश्चलन्ति, तेषां गतिः स्याच्च समीक्षणीया॥

भाषा कभी मृत या अमृत नहीं होती। भाषाविद् ही मृत या अमृत होता है। लोग भाषा को लेकर चलते हैं। उनकी गति ही समीक्षणीय है।

२. भाषाविदां जीवनमस्ति नव्यं, भाषा स्वयं स्फूर्तिमियर्त्ति नव्याम्।
भाषाविदां चेज्जडता प्रसूता, भाषाऽपि मृत्युं लभते तदत्र॥

भाषाविदों का जीवन यदि नया होता है तो भाषा भी स्वयं नयी स्फूर्ति को प्राप्त होती है। यदि भाषाविदों का जीवन जड़ होता है तो वहां भाषा भी मर जाती है।

३. भाषाविकासं स्पृहयन्ति ये ये, ते ते सचेष्टाः सरसा भवन्तु।
भाषाविदां वृद्धिगते महिम्नि, भाषा स्वयं गौरवशालिनी स्यात्॥

जो-जो व्यक्ति भाषा का विकास चाहते हैं, वे उसके लिए सरस और सचेष्ट हों। भाषाविदों की महिमा बढ़ने पर भाषा स्वयं गौरवशालिनी हो जाएगी।

(वि. सं. २०११, फाल्गुन शुक्ला ५ (२७ फरवरी, १९५५), वाग्वर्धिनी सभा, पूना)

६. मोक्षस्वरूपम्

(शहादा के स्थानीय गांधी चौक में आयोजित कार्यक्रम के बीच आशुकवित्व के लिए बुद्धिजीवियों द्वारा प्रदत्त विषय—मोक्ष का स्वरूप।)

---
१. इन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. [१]भवेत् समस्तावरणं विलीनं, मोहोऽपि नाशं द्रुतमेति यत्र।
प्रकाशरूपः प्रकटो निजात्मा, तमेव मोक्षं विबुधा वदन्ति।।

जहां सम्पूर्ण आवरण विलीन हो जाते हैं, जहां मोह भी त्वरा के साथ नष्ट हो जाता है, जहां अपनी आत्मा प्रकाशरूप में प्रकट हो जाती है, विद्वान् लोग उसी को ही मोक्ष कहते हैं।

२. न यत्र दुःखं न सुखं चकास्ति, मृत्युर्न जन्माऽपि विभाति यत्र।
हर्षोऽपि शोको न च यत्र दृश्यः, साम्यं समन्तात् किल मोक्ष एव।।

जहां न दुःख है, न सुख है, न मृत्यु है और न जन्म है। जहां हर्ष और शोक दोनों ही दृश्य नहीं हैं, चारों ओर साम्य है, वही मोक्ष है।

३. शरीरबन्धोऽस्ति महान् विबन्धस्तस्यापि नाशो सुतरां यदा स्यात्।
मुक्तस्तदा मोक्षपदं प्रयाति, नरः स्वयं याति विभुत्वमत्र।।

शरीर का बंधन ही विशिष्ट बंधन है। जब उसका पूर्णरूपेण नाश होता है, तब जीव मुक्त होकर मुक्तिस्थान में चला जाता है। इस प्रकार स्वयं मनुष्य वहां जाकर विभुता को प्राप्त कर लेता है।

४. अनन्तविज्ञानघनस्तथैवानन्दस्वरूपश्च निरावृतिश्च।
प्रमोदपीनो नितरां नवीनः, स्वरूपलीनश्च तदत्र मोक्षः।।

जीव जब अनन्त विशुद्ध ज्ञान, आनन्दस्वरूप, आवरण-मुक्त, अन्तःप्रमोद से परिपुष्ट, सदा नवीन (स्वभावपर्याय का परिवर्तन होता रहता है) और स्वरूपलीन होता है, उस स्थिति का नाम है—मोक्ष।

(वि. सं. २०१२, आषाढ़ कृष्णा ७, (१२ जून १९५५), शहादा-महाराष्ट्र)

७. अद्यतनीयमायोजनम्

(उज्जैन, नरेन्द्र टॉकिज में विधानसभा के सदस्यों द्वारा प्रदत्त विषय—आज का आयोजन।)

१. [२]पुरा ऋषीणां चरणक्रमेषु, स्थिताऽभवद् राजगता सुनीतिः।
शिक्षां सदा सारयुतामवाप्य, कार्यक्रमो नाम ततः प्रवृत्तः।।

प्राचीन काल में राजनीति ऋषियों के चरण की परम्परा से संचालित होती थी। सारभूत शिक्षा को प्राप्त कर कार्यक्रम का प्रवर्त्तन होता था।

१-२. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. दृष्टा मयाऽद्यापि सका प्रणालिर्विधानविज्ञाः स्थितिमत्र लब्धाः।
सम्मिल्य सर्वे प्रयता इहापि, द्वयोः समाना सुभगा प्रशस्तिः।।

आज भी मुझे वही प्रणाली दृष्टिगोचर हो रही है। विधिवेत्ता उसी प्रणाली का अनुसरण करते हुए देखे जा रहे हैं। यहां भी सब लोग सम्मिलित होकर इस प्रणाली और विधान के लिए प्रयत्नशील हैं, ये दोनों ही प्रशंसनीय है।

३. तज्जीवनं भावि जनस्य तस्य, प्रतीकतां यस्य सृजन्ति सर्वे।
यज्जीवनं जीवनतः प्लुतं स्यात्, तज्जीवनं जीवनमूल्यशून्यम्।।

विधान के अनुसार चलने वाले व्यक्ति का जीवन अनुकरणीय होगा और वह सब लोगों के लिए प्रतीक होगा। जो जीवन जीवन के मूल्यों से दूर है वह जीवन जीवन मूल्यों से शून्य होगा।

४. [1]धाराधरोऽयं सहसा प्रवृत्तः, सा जीवनस्याऽपि शुभास्तु धारा।
सत्कार्यगा स्यादिति भावनाभिः, सारस्यमेवापि च जीवनस्य।।

जीवन-मूल्यों की बात हो रही है और अकस्मात् वर्षा चालू हो गई है। वह भी जीवन (जल) की शुभ धारा है। वह इस भावना से चालू हुई है कि अच्छे कार्य की गति होने पर जीवन में सरसता आती है।

(वि. सं. २०१२, प्रथम भाद्र शुक्ला द्वितीया १० (२८ अगस्त १९५५), उज्जैन (मध्यप्रदेश)

८. क्रीडाप्राङ्गणम्

(बड़नगर (मध्यप्रदेश) में बुद्धिजीवियों द्वारा प्रदत्त विषय-)

१. [2]यस्मिन् क्रीडा यावती स्वल्परूपा,
तावत् क्रीडाप्राङ्गणं स्याद् विशालम्।
व्रीडा वृद्धिं याति येन क्रमेण,
तेन क्रीडाप्राङ्गणं याति सीमाम्॥

जिसमें लज्जा का भाव जितना कम होता है, उतना ही विशाल होता है उसका क्रीड़ा-प्रांगण। जिस क्रम से लज्जा बढ़ती है, उसी क्रम में क्रीड़ा-प्रांगण सिकुड़ता जाता है।

२. [3]क्रीडाङ्गणं स्यादुदरञ्च मातुरङ्केऽपि दोलापि तथा पराणि।
बालस्य सर्वाणि सदा समानि, खलूरिका[4]खेलनमेव यूनाम्॥

---

१. इन्द्रवज्रा।
२. शालिनी।
३. उपजाति।
४. खलूरिका-शस्त्राभ्यास भूमि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बालक के लिए क्रीड़ा-प्रांगण हैं—माता का उदर, माता की गोद, झूला आदि-आदि। ये सब उसके लिए सदा समान हैं। युवकों का क्रीड़ा-प्रांगण है—शस्त्राभ्यास की भूमि।

(वि. सं. २०१२, मार्गशीर्ष कृष्णा ९, (७ दिसम्बर १९५५), हजारीबाग, बड़नगर)

९. भारतीयसंस्कृतिः[१]

(श्रीकमलापत मेमोरियल हॉस्पिटल, कानपुर में आयोजित संस्कृत-साहित्य गोष्ठी में प्रदत्त विषय—भारतीय संस्कृति।)

१. [२]न वारिदैः क्षेत्रभिदा क्रियेत, नभोविहारं विदधद्भिरेभिः।
एकत्वमेवाम्बुधरा भजन्ते, तथैक्यमेवास्ति च संस्कृतीनाम्॥

आकाश में विचरण करने वाले ये बादल कभी क्षेत्र का भेद नहीं करते। जलधर सर्वत्र एकता रखते हैं। इसी प्रकार सभी संस्कृतियों में एकता है।

२. का भारतीया च परा च कास्ति, दुर्लक्ष्य एषोऽस्ति निसर्गभेदः।
परन्तु धारा सलिलस्य वीक्षे, तदाम्बुवाहा उपयान्ति भेदम्॥

कौन-सी संस्कृति भारतीय है और कौन-सी अभारतीय, यह नैसर्गिक भेद दुर्लक्ष्य है, किन्तु जब मैं जल की धारा को देखता हूं, तब बादल भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

३. [३]त्यागस्य निष्ठा प्रवरा प्रतीष्ठा, यत्र व्रतानां महिमा प्रकृष्टः।
सा भारतीया किल संस्कृतिः स्याद्, भिन्नाप्यभिन्नात्मगुणप्रकर्षैः॥

जहां त्याग की प्रवर निष्ठा और प्रतिष्ठा है, जहां व्रतों की प्रचुर महिमा है, वह भारतीय संस्कृति है। वह भिन्न होती हुई भी आत्मगुणों के प्रकर्ष से अभिन्न है।

(वि. सं. २०१५, आसोज कृष्णा १ (२८ सितम्बर, १९५८), कानपुर)

१०. हिंसा : अहिंसा

(हिन्दी विद्यापीठ, नैनी प्रयाग में विद्यार्थियों द्वारा प्रदत्त दो विषयों पर आशुकवित्व—)

१. [४]हिंसाप्लुतं[५] मानसमस्ति सर्वं, कीटो मृतस्तत्र मनःप्रहर्षः।
वीरत्वबुद्धिर्लभते प्रवृत्तिं, न नाम कष्टानुभवोऽस्ति किञ्चित्॥

१. इसके अन्तर्गत श्लोक मेघमाला को देखकर कल्पित किए गए हैं।
२. उपेन्द्रवज्रा।
३-४. इन्द्रवज्रा।
५. प्लुतम्—डूबा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन पूर्णतः हिंसा में निमग्न है। कोई कीट मरता है तो मन में हर्ष होता है और अपनी प्रवृत्ति में वीरता की बुद्धि पैदा होती है। कष्ट का तनिक भी अनुभव नहीं होता।

२. [1]मनोप्यहिंसाविहितं पवित्रं,
कीटो मृतस्तत्र भवेत्स्वबुद्धिः।
नान्योऽसुमान् कोऽपि मृतोस्ति किन्तु,
ममैव कश्चिद् निजकोऽस्ति लुप्तः॥

मन यदि अहिंसा से पवित्र है तो कोई कीट मरने पर उसके प्रति 'स्व' की बुद्धि पैदा होती है। वह सोचता है–कोई अन्य प्राणी नहीं मरा है, किन्तु मेरा ही कोई स्वजन मरा है।

(वि. सं. २०१५, मार्गशीर्ष कृष्णा १४ (९ दिसम्बर, १९५८), हिन्दी विद्यापीठ, नैनी, प्रयाग)

११. कथमणुत्वं स्यात्?

(झूसी, ब्रह्मचर्य आश्रम के अधिष्ठाता प्रभुदत्त ब्रह्मचारी द्वारा प्रदत्त विषय-)

१. [2]स्वाभाविकी स्यादणुता जनानां, वैभाविकीयं गुरुता विभाति।
बन्धो जनानां विगतो यदा स्यात्, मुक्तः स्वयं स्यादणुरेष आत्मा॥

प्राणियों के लिए अणुत्व स्वाभाविक है और गुरुत्व वैभाविक। जब प्राणी बन्धन-मुक्त हो जाता है, तब यह अणु आत्मा स्वयं मुक्त हो जाती है।

२. [3]लघुः सदा स्यादणुरत्र लोके, विनम्र एवापि लघुर्भवेच्च।
विनम्र एव प्रविशेद् मनस्सु, न वा गुरोः स्यात् सुलभोऽवकाशः॥

इस जगत् में अणु सदा लघु होता है और जो विनम्र होता है वह भी लघु होता है। जो विनम्र होता है, वही मन में प्रवेश पा सकता है। गुरु (भारी) वहां स्थान नहीं पा सकता।

३. [4]गुरुत्वमेवाणुगतं निसर्गे, यद् वा गुरौ वाप्यणुता निविष्टा।
न सर्वथा कोऽपि गुरुऽर्न वास्ति, स्यात् सर्वथा सूक्ष्म इति प्रतीतम्॥

स्वाभाविक रूप से अणुता में गुरुता है और गुरुता में अणुता है। कोई सर्वथा गुरु अथवा कोई सर्वथा अणु (सूक्ष्म) नहीं होता।

(वि. सं. २०१५, मार्गशीर्ष शुक्ला २ (१२ दिसम्बर, १९५८), झूसी)

---

१. उपेन्द्रवज्रा।
२. इन्द्रवज्रा।
३. उपेन्द्रवज्रा।
४. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१२. राष्ट्रसङ्घः

(बनारस, संस्कृत महाविद्यालय में आशुकवित्व के लिए प्रदत्त विषय–)

१. [1]एको बहुस्यामिति भावनाढ्या, संघप्रवृत्तिर्मनुजेषु जाता।
बहुप्रकाराः प्रचलन्ति संघाः, स्याद् राष्ट्रसंघोऽपि महांश्च तत्र॥

'मैं अकेला हूं, बहुत हो जाऊं'–यह भावना मनुष्यों में आदिकाल से रही है। इसी भावना ने संघबद्धता को जन्म दिया। आज अनेक प्रकार के संघ विद्यमान हैं। उनमें 'राष्ट्रसंघ' एक महान् संघ है।

२. राष्ट्राणि सर्वाणि च तत्र काञ्चित्, प्राप्य स्थितिं वादमुदीरयन्ति।
रक्षां निजस्याधिकृतेर्विधातुं, स्वातन्त्र्यमर्हन्ति गतावकाशाः॥

सारे राष्ट्र वहां प्रतिनिधित्व प्राप्त कर कोई न कोई चिन्तन करते रहते हैं। अपनी प्रभुसत्ता की रक्षा करने के लिए सभी स्वतन्त्र हैं और उसके लिए सबको उचित अवसर प्राप्त है।

३. [2]परन्तु तत्र स्थितिरस्ति चित्रा, चीनस्य तुल्यं सुमहच्च राष्ट्रम्।
सदस्यतां न व्रजति प्रतीतं, किं राष्ट्रसंघोऽस्ति विडम्बना वा?॥

किन्तु वहां की एक विचित्र स्थिति है। चीन जैसा विशाल राष्ट्र उसका सदस्य नहीं बन सका है। क्या यह राष्ट्रसंघ है या कोई विडम्बना?

४. यस्मिन् मनुष्या अपरैर्मनुष्यैर्घृणां विरोधं च मिथो वहन्ते।
स राष्ट्रसंघो यदि साम्यधारां, प्रवाहयेत् सार्थकतामुपेयात्॥

जहां मनुष्य दूसरे मनुष्यों के साथ परस्पर घृणा और विरोध रखते हैं, वह राष्ट्रसंघ यदि समता की धारा को प्रवाहित करे तो उसके नाम की सार्थकता सिद्ध हो जाए।

(वि. सं. २०१५, मार्गशीर्ष शुक्ला ११-१२ (२१-२२ दिसम्बर, १९५८),
संस्कृत महाविद्यालय, बनारस)

१३. मणिशेखरचोरः

(डॉ. नार्मन ब्राउन संस्कृतविभागाध्यक्ष, पेनिसिल्वेनिया यूनिवर्सिटी, अमेरिका द्वारा जैन धर्म में प्रचलित सत्य के चमत्कार से संबंधित कथा सुनाने का अनुरोध। मुनि

---

१. इन्द्रवज्रा।
२. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) ने उनके अनुरोध को स्वीकार कर 'मणिशेखर चोर' के सत्यव्रत की कथा को संस्कृत में निम्नपद्यों में आशुकविता कर सुनाई–)

१. [१]सत्यं गुणानामिह मातृभूमिरसत्यमाधारशिलाऽगुणानाम्।
सत्यस्य पूजा परमात्मपूजा, सत्यात् परो नो परमेश्वरोऽस्ति॥

मुनि ने मणिशेखर से कहा–'सत्य गुणों की मातृभूमि है और असत्य अवगुणों की आधारशिला। सत्य की पूजा परमात्मा की पूजा है। सत्य से बढ़कर कोई परम ईश्वर नहीं है।'

२. [२]चौर्यं करिष्यामि मुने! नितांतं, वक्ष्यामि सत्यं मनसापि वाचा।
त्यक्तुं न चौर्यं प्रभवामि साधो!, वक्तुं परं सत्यमहं समर्थः॥

मणिशेखर ने मुनि से कहा–'मैं चोरी अवश्य करूंगा, किन्तु मन और वाणी से सदा सत्य बोलूंगा। प्रभो! मैं चोरी नहीं छोड़ सकता, किन्तु सत्य बोलने में समर्थ हूं।'

३. घोरा तमिस्रा सघनं तमिस्रं, बन्धो! कथं भ्राम्यसि रात्रिमध्ये?
पृष्ठो नृपेणाह स चोरमुख्यः, चौर्यं विधातुं नृपसद्म यामि॥

एक दिन मणिशेखर चोर चोरी करने निकला। रास्ते में परिवर्तित वेश में राजा मिला। राजा ने पूछा–'भाई! रात अंधेरी है और अंधकार भी सघन है। ऐसी रात में तुम क्यों घूम रहे हो?' चोर सम्राट् मणिशेखर बोला–'मैं राजा के महल में चोरी करने जा रहा हूं।'

४. [३]चोरोऽपि सत्यं वदतीति राज्ञो न कल्पना चेतसि संबभूव।
विधाय चौर्यं पुनरागतस्य, प्रश्नस्तथैवोत्तरमत्र जातम्॥

५. [४]चौर्यं कृतं क्वेति जगाद राजा, प्रासादमध्ये नृपतेः स चाह।
भ्रान्ताशयोऽसौ ग्रथिलो[५]ऽथवा स्यात्, संचिन्त्य राजा स्वगृहं जगाम॥

चोर भी सत्य बोलता है–राजा के मन में ऐसी कल्पना भी नहीं थी। चोर चोरी कर आ रहा था। राजा पुनः मिला। चोर से पूछा–'तुम कहां गए थे?' चोर ने कहा–'चोरी करने गया था।' राजा ने फिर पूछा–'तुमने चोरी कहां की?' चोर ने कहा–'राजा के महल में।' राजा ने सोचा–यह व्यक्ति या तो भ्रमित चित्तवाला है या पागल है। ऐसा सोचकर राजा अपने महल में आ गया।

१. उपजाति।
२. इन्द्रवज्रा।
३. उपजाति।
४. इन्द्रवज्रा।
५. ग्रथिलः–पागल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६. [1]जग्राह पेटायुगलं[2] मणीनामेकां च मन्त्री स्वगतं चकार।
चोरो गृहीतः समुवाच सत्यं, न सत्यमुक्तं सचिवेन किञ्चित्॥

मणिशेखर ने राजा के खजाने से रत्नों की दो डिबियां चुराई थीं। प्रातःकाल चोरी की बात सुन मंत्री खजाने में गया और वहां पर बची एक डिबिया को स्वयं घर ले गया। दूसरे दिन चोर पकड़ लिया गया। उसने राजा के समक्ष चोरी स्वीकार करते हुए कहा– 'मैंने रत्नों की दो डिबियां चुराई हैं।' राजा ने कहा–'वहां तीन डिबियां थीं।' चोर ने कहा–'दो तो मैंने ले ली थी और तीसरी वहां रख दी थी।' राजा ने मंत्री से पूछा। मंत्री ने सच नहीं कहा। राजा के मन में संदेह हुआ। खोज करने पर वह एक डिबिया मंत्री के घर मिली।

७. चोरोऽपि सत्यं वदतीति राज्ञा, व्यधायि सोऽमात्यवरः स्वराज्ये।
अमात्यवर्योपि वदन्नसत्यं, कारागृहे वासमलंचकार॥

'चोर भी सत्य बोलता है'–ऐसा सोचकर राजा ने मणिशेखर को अपने राज्य का सचिव बना दिया और 'मंत्री होकर भी झूठ बोलता है'–ऐसा सोचकर उस मंत्री को जेल में डाल दिया।

(वि. सं. २०२४, पौष शुक्ला १२ (१२ जनवरी, १९६८), मुंबई)

१४. नयवादः

(श्री श्रीनिवास शास्त्री के द्वारा प्रदत्त विषय–नयवाद।)

१. [3]विरोधियुग्मं कथमत्र भूयात्, प्रतीतिरेषाऽस्ति पुरातनानाम्।
वैज्ञानिकेऽस्मिन् समये मनुष्यैर्भिन्नत्वमाप्तं बहुधा प्रवृत्तैः॥

एक ही वस्तु में विरोधी युगल कैसे रह सकता है?–यह प्रतीति पुराने व्यक्तियों की है। आज के इस वैज्ञानिक समय में बहुधा-प्रवृत्त मनुष्यों ने भिन्नता प्राप्त की है।

२. [4]अस्तित्वमाधाय यदस्ति नित्यं, नास्तित्वहीनं न तदस्ति नूनम्।
सतोऽसतश्चापि न कोऽपि भेदः,सर्वत्र युग्मं लभते प्रवृत्तिम्॥

जो पदार्थ अस्तित्व धर्म की अपेक्षा से नित्य है, वह निश्चय ही नास्तित्व से विहीन नहीं है। यदि ऐसा नहीं है तो सत् और असत् में कोई अन्तर नहीं हो सकता, इसलिए सर्वत्र विरोधी युग्म मिलते हैं।

---

१. उपजाति।
२. पेटायुगलम्–दो पेटियां।
३. उपेन्द्रवज्रा।
४. इन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. यावज्जगत्यामिह वर्तमानं, तदेव भूतं च तदेव भावि।
न चाणुमात्रं लभतेऽत्र हानिं, नोत्पत्तिमन्यां लभते नवीनम्॥

जो इस जगत् में वर्तमान है, वही था, है और वही होगा। इसमें न अणुमात्र कम होता है और न अणुमात्र नए रूप में उत्पन्न होता है।

४. शब्दस्य नूनं विकला प्रवृत्तिः, नैकक्षणे वाच्यमशेषितं स्यात्।
स्याच्छब्दयुक्ता भवति प्रवृत्तिः, वक्तुं क्षमा वस्तुसमग्ररूपम्॥

शब्द की प्रवृत्ति विकल होती है। एक क्षण में वह वाच्य को अशेष रूप में कह नहीं पाता। जब वह शब्द 'स्यात्' युक्त होता है, तभी वह वस्तु के समग्र रूप का वाचक बनता है।

५. वाच्यो न वाच्यः सकलः पदार्थः, स्याच्छब्दयुक्तो भवतीह वाच्यः।
एकेन धर्मेण च वाच्यमानं, समग्रवस्तु स्थिरतामुपैति॥

पदार्थ वाच्य होने पर भी अनन्तधर्मी होने के कारण वाच्य नहीं है। वह 'स्यात्' शब्द से युक्त होकर ही वाच्य बनता है। समग्र वस्तु यदि एक धर्म के द्वारा वाच्य होती है तो वह वर्तमान पर्याय में ही स्थिर हो जाती है, गतिशील नहीं रहती और नए-नए पर्यायों के उत्पन्न होने की क्षमता को खो बैठती है।

६. भङ्गत्रयीयं विबुधैः प्रबुद्धा, चतुष्टयं भङ्गमितो विकल्प्यम्।
विकल्पमात्रेण भवेत्प्रवृत्तिः, सापेक्षभावान् प्रति सत्यलब्धान्॥

विद्वानों ने तीन भंगों (विकल्पों) का कथन किया है—स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति, स्याद् अवक्तव्य। शेष चार भंग—स्याद् अस्ति-नास्ति, स्याद् अस्ति-अवक्तव्य, स्याद् नास्ति-अवक्तव्य और स्याद् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य—इन्हीं के द्वारा विकल्पनीय हैं। सत्य के द्वारा लब्ध सापेक्ष भावों के प्रति विकल्पमात्र से ही प्रवृत्ति होती है।

७. [1]स्यात्सप्तभङ्गी विशदा विबोधे, भेदानशेषान् परिकल्पयन्ती।
अनन्तभेदा अपि संगृहीताः, समस्यमानाश्च विविच्यमानाः॥

समग्र भेदों की परिकल्पना करने वाली यह सप्तभंगी ज्ञान के लिए विशद उपाय है। इनके द्वारा वस्तु के समस्यमान और विविच्यमान अनन्त धर्म संगृहीत हो जाते हैं।

(वि. सं. २०२४, फाल्गुन कृष्णा ११ (२४ फरवरी, १९६८), डेक्कन कालेज, पूना)

---

१. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१५. (क) अपरा-परा विद्या

(तिलक विद्यापीठ, पूना में एक पंडित द्वारा प्रदत्त श्लोकमय विषयद्वय-)

([१]अपरा वा परा विद्या, भूकम्पाद् रक्षणं नृणाम्।
छन्दसा संस्कृतेनात्र, स्वाभिप्रायः समर्थ्यताम्॥)

'अपरा और परा विद्या' तथा 'भूकम्प से लोगों का संरक्षण'-इन दो विषयों पर आप संस्कृत-काव्य में अपना अभिप्राय व्यक्त करें।

१. [२]परापरत्वेन विभज्यमाना, विद्याद्वयीयं विदुषां समस्ति।
परत्वमेतत् प्रियतामुपैति, केषाञ्चिदेवाप्यपराऽत्र विद्या॥

विद्वानों में दो विद्याएं सम्मत हैं-परा और अपरा। इस संसार में कुछेक मनुष्यों को परा विद्या प्रिय होती है और कुछेक लोगों को अपरा विद्या प्रिय होती है।

२. [३]ये सूक्ष्मभावा मनुजा भवन्ति, सूक्ष्मां परां ते सततं स्पृशन्ति।
ये स्थूलदृष्टिं स्थितवन्त एव, विद्या हि तेषामपरा विभाति॥

जो मनुष्य सूक्ष्म विचार वाले हैं, वे सतत परा विद्या का स्पर्श करते हैं और जो स्थूल दृष्टि वाले हैं, वे अपरा विद्या का आश्रय लेते हैं।

३. [४]आत्मास्ति दृष्टो विबुधैः प्रकामं, दृष्टिश्च येषां विशदत्वमाप्ता।
अध्यात्मभाजो मनुजा विशिष्टाः, परासु विद्यासु भृशं यतन्ते॥

जिनकी दृष्टि विशदता को प्राप्त हो गई है, उन मनीषियों ने आत्मा को देखा है। जो मनुष्य विशिष्टरूप से आध्यात्मिक होते हैं, वे परा विद्याओं में अत्यधिक प्रयत्नशील रहते हैं।

४. देहेषु बुद्धिश्चरतीह येषां, देहस्पृशस्ते मनुजा भवन्ति।
ते स्थूलदृष्ट्या सततं लभन्तेऽपरां च विद्यामविकम्पमानाः॥

जिनकी बुद्धि जड़ शरीर में ही विचरण करती है, वे मनुष्य शरीर का स्पर्श करने वाले होते हैं। वे अपनी स्थूल दृष्टि से निश्चलभाव से सदा अपरा विद्या को ही प्राप्त होते हैं।

---

१. अनुष्टुप्।
२. उपजाति।
३. इन्द्रवज्रा।
४. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१६. (ख) भूकम्पः

१. [१]या स्यात्प्राकृतिकी प्रकोपपटली तस्या भवेद् रक्षणं,
चेष्टा मानसिकी तथैव सकला वृत्तिः समायोजिता।
के के देहभृतो[२] न कम्पनयुताः स्युश्चित्तवृत्तिं श्रिताः,
कम्पं स्वात्मगतं न यावदतुलं पश्यन्ति रक्षा कुतः?॥

जो प्राकृतिक प्रकोप होता है, उससे रक्षा करने के लिए मानसिक चेष्टा और सारी प्रवृत्तियां समायोजित होती हैं। चित्तवृत्ति के पीछे चलने वाले ऐसे कौन-से मनुष्य हैं, जो कम्पनयुक्त नहीं हैं? जब तक मनुष्य अपने आत्मगत अतुल कम्पन को नहीं देख पाते, तव तक रक्षा कैसे हो सकती है?

२. [३]चेत्सत्यबुद्ध्या स्थिरचेतसः स्युर्न नाम भूकम्प इहास्तु भूयः।
तदा स्वकम्पात् विरता भवेयुः, रक्षाऽभ्युपायो गदितो[४] मयात्र॥

यदि मनुष्य सत्यबुद्धि से स्थिरचित्त वाले हो जाएं तो फिर यहां भूकम्प नहीं होने वाला है। तभी वे अपने कम्पनों से विरत हो सकते हैं। भूकम्प से रक्षा का यह उपाय मैंने प्रतिपादित किया है।

३. भूमौ प्रकम्पः क्वचिदेव जातश्चिन्ता समस्तानुगता समेषाम्।
प्रकम्प एवात्मनि जायमानश्चिरं न चिन्ता परिलक्ष्यतेऽत्र॥

भूमी का कम्पन कहीं एक क्षेत्र में हुआ है, किन्तु सभी व्यक्ति इससे चिन्तित हो गए हैं। आत्मा में प्रकम्पन हो रहा है, इसकी कोई चिन्ता परिलक्षित नहीं हो रही है।

४. क्रोधस्य कम्पश्च तथैव माया, प्रकम्पमाना नितरां प्रभाति।
लोभश्च गृद्धिश्च परानुभूतिर्भूकम्प एवास्ति कथं न तत्र?॥

जहां निरन्तर क्रोध, माया, लोभ, गृद्धि और परानुभूति के प्रकम्पन हो रहे हैं, वहां भूकम्प कैसे नहीं होगा?

५. असत्प्रवृत्तिर्मनुजस्य वृद्धा, पापस्य चौर्यस्य महान् प्रयत्नः।
व्यापारकार्येऽपि तथा प्रवृत्तिः, स्याच्चौर्यकार्यानुगता बहूनाम्॥

आज मनुष्य में असत् प्रवृत्ति बढ़ रही है। पाप और चोरी का महान् प्रयत्न हो रहा है। व्यापार में भी चोरी की प्रवृत्ति वृद्धिंगत हो रही है।

---

१. शार्दूलविक्रीडितम्।
२. देहभृत्-प्राणी।
३. उपजाति।
४. गदितः-कथित।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६. लञ्चाग्रहोप्यस्ति च लोकमध्ये, विश्वासघातः प्रबलोऽस्ति पुंसाम्।
तथापि भूकम्प इहास्तु मा मा, केयं प्रवृत्तिः खलु भाति पुंसाम्॥

लोगों में रिश्वत और विश्वासघात की प्रबलता है। फिर भी लोग चाहते हैं कि 'भूकम्प न हो', 'भूकम्प न हो'। मनुष्यों की यह कैसी प्रवृत्ति है?

७. नात्मा विशुद्धो भवितास्ति यावत्, न कर्म शुद्धं खलु विद्यमानम्।
तावत् प्रकम्पो भवितास्ति नूनं, रक्षां कथं नाम करोतु देवः॥

जब तक आत्मा पवित्र नहीं होती और बंधे हुए कर्म नहीं टूटते, तब तक प्रकम्प होता रहेगा। देव भी रक्षा कैसे कर सकते हैं?

८. पापप्रवृत्तिं च समाचरन्तः, फलं वरेण्यं स्पृहयन्ति लोकाः।
विरोधिकार्यं कथमस्ति भावि, भूयात्तदानीं जगदेव लुप्तम्॥

मनुष्य पाप की प्रवृत्ति करते हुए भी अच्छे फल पाने की इच्छा करते हैं। यह विरोधी बात कैसे हो सकती है? यदि ऐसा हो जाए तो जगत् ही लुप्त हो जाए।

(वि. सं. २०२४, फाल्गुन कृष्णा १४ (२७ फरवरी, १९६८), तिलक विद्यापीठ, पूना)

१७. सामञ्जस्यम्

(तिलक विद्यापीठ, पूना में पंडित द्वारा प्रदत्त विषय–)

(तत्त्वज्ञानस्य भेदानां, सामञ्जस्यं कथं भवेत्?)

तत्त्व–ज्ञान के भेदों का सामंजस्य कैसे हो?

१. [1]भेदोऽस्ति बुद्धौ न चिदीह भेदोऽभेदेपि भेदं वयमाश्रयामः।
बुद्धिं तिरस्कारपदं नयामः, समन्वयोऽयं सुलभोऽस्ति सर्वः॥

भेद बुद्धिगत है, चैतन्यगत नहीं। हम अभेद में भी भेद को स्वीकार करते हैं। यदि हम बुद्धि को छोड़ दें, तो सारा समन्वय सुलभ हो जाता है।

२. सत्यं द्वयं नास्ति कदापि लोके, तदस्ति बुद्धौ च विभज्यमानम्।
अतिक्रमं बुद्धिगतं विधाय, भेदस्य मूलं परिपोषितं स्यात्॥

संसार में सत्य कभी दो नहीं होता। बुद्धि में प्रवेश पाकर वह सत्य विभक्त हो जाता है। बुद्धिगत–विभक्त सत्य का सहारा लेकर ही भेद की जड़ें परिपुष्ट होती हैं।

३. ज्ञानं यदा शब्दगतं प्रकाशं, जनानशेषान् नयमानमस्ति।
तावन्न भेदस्य भवेद् विलोपः, शब्देन लोकाः सकला विभक्ताः॥

१. इन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब तक ज्ञान शब्दगत प्रकाश में सारे लोगों को ले जाता रहेगा, तब तक भेद नहीं मिट सकता। सारे लोग शब्दों के माध्यम से ही बंटे हुए हैं।

४. [१]आत्मप्रकाशी भविता प्रबोधः, दृष्टिश्च वैशद्यमुपाश्रिताऽसौ।
प्रत्यक्षबोधे रममाण एष भेदं न कुत्राऽपि करोतु सत्ये॥

जब मनुष्य का प्रबोध आत्मप्रकाशी और दृष्टि विशद होगी, तब वह प्रत्यक्ष ज्ञान में विचरण करता हुआ सत्य को कभी विभक्त नहीं करेगा।

५. [२]आरोपबुद्धिर्गलिता यतः स्यात्, ततो मिथः स्याद् मिलनं च वार्ता।
स्वतन्त्रभावोऽपि विचारकार्ये, समन्वयस्यैष महानुपायः॥

समन्वय के ये तीन महान् उपाय हैं–

१. एक-दूसरे पर आरोप लगाने की वृत्ति का अभाव।

२. परस्पर मिलन और वार्ता।

३. विचार और कार्य में स्वतन्त्रता।

(वि. सं. २०२४, फाल्गुन कृष्णा १४ (२७ फरवरी, १९६८), तिलक विद्यापीठ, पूना)

१८. अहिंसायाम् अपवादः

(तिलक विद्यापीठ, पूना में किसी पंडित द्वारा प्रदत्त विषय–)

१. [३]दुर्बलत्वं भवेद् यत्र, तत्रापवादकल्पना।
प्रबलत्वं यदा स्वस्यापवादाः फल्गुतां[४] गताः॥

जहां दुर्बलता होती है वहीं अपवाद की कल्पना होती है। जहां अपनी प्रबलता होती है वहां अपवाद निरर्थक हो जाते हैं।

२. अहिंसाकाशरूपेण सर्वत्रास्त्येकरूपगा।
दुर्बला जायते भित्तिः, विवरं जायते तदा॥

अहिंसा आकाश की भांति सर्वत्र एकरूप है। जब दीवार दुर्बल होती है, तब उसमें छेद होता है।

३. भित्तौ विवरभावोऽपि, न च स्वाभाविको भवेत्।
नापवादस्य चर्चाऽपि, क्रियते श्रूयते क्वचित्॥

---

१. इन्द्रवज्रा।
२. उपजाति।
३. अनुष्टुप्।
४. फल्गुता–निरर्थकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भित्ति में छिद्र स्वाभाविक नहीं लगता। इसी प्रकार अहिंसा में अपवाद की चर्चा भी न कही की जाती है और न सुनी जाती है।

(वि. सं. २०२४, फाल्गुन कृष्णा १४ (२७ फरवरी, १९६८), तिलक विद्यापीठ, पूना)

१९. अतुल-तुलना

(तिलक विद्यापीठ, पूना में किसी पंडित के द्वारा प्रदत्त श्लोकमय विषय–)

[१]सर्वव्याप्यप्यनाधारं जगदाधारकं महत्।
अनाद्यनन्तमतुलं, सर्वाश्चर्यमयं नभः॥

तदिदं परमेशस्य[२], ब्रह्मणो वा जिनस्य वा।
रूपेण तुलनां कृत्वा गैर्वाण्यै[३]वात्र वर्ण्यताम्॥

सर्वव्यापी और निराधार होते हुए भी जगत् को आधार देने वाले, महान् अनादि-अनन्त, अतुलनीय और सबके लिए आश्चर्यकारी आकाश की परमेश्वर, ब्रह्मा और जिनेश्वर के रूप से तुलना करते हुए संस्कृतभाषा में उसका वर्णन करें।

१. [४]परत्वबुद्ध्या प्रभृतं मनः स्यात्, तदावकाशं न परे लभन्ते।
आधारभूतो भुवने स एव, यस्यास्ति रिक्तं च मनः समस्तम्॥

जब मन 'परत्व' की बुद्धि से भरा होता है, तब उसमें दूसरे (पर) प्रवेश नहीं पा सकते। जिसका मन पूर्णतः खाली है, वही जगत् का आधार बन सकता है।

२. [५]देवो भवेद् वापि जिनो भवेद् वा, स एव लोके शरणं ददीत।
शून्यत्वमाप्तो हि परं बिभर्त्ति, भृतो न वा क्वापि करोति निष्ठाम्॥

देव हो या जिन, वही लोक में शरणभूत होता है, वही विकल्प से शून्य है। जो शून्य होता है, वही दूसरे को धारण कर सकता है। जो स्वयं भरा हुआ है, वह दूसरे को कभी निष्ठा (आधार) नहीं दे सकता।

३. लोकस्य नादित्वमिदं गृहीतं, तथैव देवस्य न वा गृहीतम्।
यत्रैतदस्ति प्रवरं तदानीं, तुलाऽतुला वा न च वर्णनीया॥

लोक का आदि-काल ज्ञात नहीं है। इसी प्रकार देव का आदि-काल भी ज्ञात नहीं है। जहां अनादित्व प्रवर है, वहां तुलना और अतुलना वर्णित नहीं हो सकती।

---

१. अनुष्टुप्।
२. परमेशः–परमेश्वर।
३. गैर्वाणी (गीर्वाणस्येयम्)–देवभाषा।
४. उपेन्द्रवज्रा।
५. इन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. आकाशमेतद् न कदापि बद्धं, शून्यं ततश्चापि च वर्ण्यमानम्।
तथैव भूयो भगवत्स्वरूपं, भवेच्च चित्रं तदिदं विशिष्टम्॥

यह आकाश है, ऐसा कभी ज्ञात नहीं हुआ। इसीलिए वह शून्यरूप से वर्णित हो रहा है। उसी प्रकार भगवान् का स्वरूप भी कभी ज्ञात नहीं होता, फिर भी वह शून्य के रूप में वर्णित होता है, यह बहुत आश्चर्य की बात है।

५. सीमां गतः कोऽपि जनो जगत्यां, नाधारकत्वं न तथाऽतुलत्वम्।
प्राप्नोति तेनाऽथ जनोऽपि देवः, स्याच्चित्रकारीति तनोमि भावम्॥

सीमा में रहने वाला कोई भी मनुष्य इस जगत् में न आधार बनता है और न अतुलनीय होता है। इसीलिए मनुष्य देव बनना चाहता है, यह आश्चर्यकारी है, ऐसा मैं कहता हूं।

६. [1]भूमिर्विशाला च ततः समुद्रः, ततो नभः स्याद् भगवांस्ततोऽपि।
भक्तस्य चित्तं च ततोऽपि बाढं[2], नाश्चर्यमेतद् भुवने किमस्ति?॥

भूमि विशाल है। उससे विशाल है समुद्र। समुद्र से आकाश और आकाश से भगवान् विशाल है। किन्तु भक्त का चित्त भगवान् से भी विशाल है। क्या यह संसार में आश्चर्य नहीं है?

(वि. सं. २०२४, फाल्गुन कृष्णा १४ (२७ फरवरी, १९६८), तिलक विद्यापीठ, पूना)

२०. त्रिनेत्रः

(संस्कृत कॉलेज, मद्रास में विद्वानों द्वारा आशुकविता के लिए प्रदत्त विषय-)

१. [3]दृष्टिर्यस्यास्ति निद्रामपि च गतवती द्रष्टुमर्हेन्न सत्य-
मेकं नेत्रं विनिद्रं भवति परिचितं किञ्चिदालोकतां तत्।
नेत्रे द्वे स्ते विनिद्रे प्रतिपलमसौ मज्जतात् सत्यसिन्धौ,
सप्तः सप्तार्कनुन्नाऽरुणकिरणनिभः[4] पातु बिभ्रन्[5] त्रिनेत्रः॥

जिसकी दृष्टि सुप्त है, वह सत्य को नहीं देख पाता। जिसकी एक आंख खुली है, वह कुछ परिचित पदार्थों को देख सकता है। जिसकी दो आंखें खुली हैं, वह प्रतिपल सत्य के समुद्र में डुबकियां लेता रहता है। किन्तु त्रिनेत्र, जो सात घोड़ों से प्रेरित सूर्य की किरणों के समान तेजस्विता को धारण करता हुआ सत्य का पारगामी है, वह हमारी रक्षा करे।

(वि. सं. २०२५, असोज शुक्ला ३/४ (२५ सितम्बर, १९६८), संस्कृत कॉलेज, मद्रास)

१. उपजाति।
२. बाढम्-अत्यधिक।
३. स्रग्धरा।
४. अरुणकिरणनिभः-सूर्य की किरणों के समान।
५. बिभ्रन्-धारण करता हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२१. कलशः

(त्रिवेन्द्रम् (केरल) राजप्रासाद में राजमाता सेतुपार्वती द्वारा प्रदत्त विषय–कलश।)

१. [१]मांगल्यधाम परमः कलशो विभाति, सर्वत्र पूजितजनैः विहितो यतश्च।
पूर्णत्वभावगुरुतां वृणुते तदैव, यद् व्यापृतो जलभृतश्चलितो न किञ्चित्॥

कलश परम मंगलकारी अधिष्ठान है। यह सर्वत्र पूजित-जनों (पूर्वजों) द्वारा सम्मत और विहित है, क्योंकि यह पूर्णता का द्योतक हैं। पूर्णता और भावों की गरिमा उसी को प्राप्त होती है, जो जलभृत-व्यापृत होने पर भी कभी नहीं छलकता।

२. [२]कल्याणमेतत् किल धातुपात्रं, पात्रं पवित्रं हृदयं भवितृ।
आचार्यवर्याः हृद्यानुभूतिप्रपूतचित्ताः परमाः पवित्राः॥

यह धातु-पात्र कलश मंगल माना जाता है। पवित्र हृदय तो सबसे बड़ा मंगल पात्र है। हृदय की अनुभूति से पवित्र चित्तवाले आचार्यवर्य परम पवित्र हैं।

(वि. सं. २०२५ चैत्र कृष्णा अमावस्या (१८ मार्च, १९६९), त्रिवेन्द्रम् (केरल)

२२. वाक्-संयमः

(गोपुरी में विनोबा भावे द्वारा प्रदत्त विषय–वाक्संयम।)

१. [३]पश्यामि साक्षाद् विषये विरोधं, करोमि किं वा किमिदं विचित्रम्।
वक्तुं प्रदत्तो विषयो ममाऽसौ, वाक्संयमस्याऽत्र महत्त्वमस्ति॥

मुझे आशुकविता करने के लिए विषय दिया गया है–'वाक्संयम का महत्त्व'। मैं इस विषय में साक्षात् विरोध देख रहा हूं। यह विचित्र है? अब मैं क्या करूं?

२. [४]वदाम्यहं तन्नहि वाग् यथा स्याद्, वदामि नाहं विषयस्य पूर्तिम्।
प्रायो विरोधे समुपस्थिते हि, मार्गो नवः स्याच्च पुरस्कृतोऽपि॥

यदि मैं बोलता हूं तो वाक्संयम नहीं रहता और यदि नहीं बोलता हूं तो विषय की पूर्ति नहीं होती। प्रायः विरोध उपस्थित होने पर ही नया मार्ग निकलता है।

३. [५]आकाशमेतत् सकलं समग्रं, तत्रापि निर्माणमभूद् गृहाणाम्।
गृहं न चाकाशमथेतरन्न, तथैव वच्मीति न वापि वच्मि॥

---

१. वसन्ततिलका।
२. उपजाति।
३. इन्द्रवज्रा।
४. उपेन्द्रवज्रा।
५. इन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह सम्पूर्ण आकाश एक है, अखण्डित है तो भी घरों का निर्माण हुआ है। घर न पूर्ण आकाश है और न आकाश से भिन्न है। उसी प्रकार मैं बोल भी रहा हूं और नहीं भी बोल रहा हूं।

४. [1]आचार्यप्रोक्तं मुखवस्त्रिकेयं, वाक्संयमस्यास्ति प्रतीकमच्छम्।
उच्छृंखला वाग् बहुवर्ततेऽत्र, ग्रामेष्वरण्येऽपि च संसदीह॥

आचार्यश्री ने कहा है–यह मुखवस्त्रिका वाक्संयम का अच्छा प्रतीक है। गांव में, जंगल में और संसद में–सर्वत्र आज वाणी की उच्छृंखलता दीख रही है।

५. [2]नात्मश्लाघा पण्डितेनात्र कार्या, दोषा वाच्या नो परेषां कदाचित्।
एतत् स्पष्टं साम्प्रतं जायमानं, वैचित्र्यं तद् व्यत्ययो नाम जातः॥

अपनी प्रशंसा और दूसरों का दोषाख्यान पंडित व्यक्ति को नहीं करना चाहिए, किन्तु आज स्पष्टरूप से इसका व्यत्यय हो रहा है, यह आश्चर्य की बात है।

(वि. सं. २०२६, चैत्र कृष्णा १२ (३ अप्रैल, १९७०), गोपुरी)

२३. आत्मोत्थानं कथं भूयात्?

(मलहोत्रा स्थल–सेनाध्यक्ष द्वारा प्रदत्त विषय–आत्मिक उत्थान कैसे हो?)

१. [3]नोत्थानमात्मा लभते कदाचिद्, न चापि पातं लभते कदाचित्।
सर्वोपचारोऽयमिति प्रपन्ना उत्थानपातं च वदन्ति लोकाः॥

आत्मा का न कभी उत्थान होता है और न कभी पतन। आत्मा का उत्थान और पतन–यह सारा उपचार है। उपचारपद्धति से चिन्तन करने वाले कुछ लोग कहते हैं-आत्मा का उत्थान होता है और पतन होता है।

२. [4]यदा यदा दृष्टिरियं विपन्ना, बहिर्मुखत्वं भजते तदा तत्।
अन्तर्मुखी स्यान्मनुजः तदानीं, यदा स्वनिष्ठाभ्युदयं प्रयाति॥

जब–जब आत्मा का उत्थान और पतन की दृष्टि विपन्न–असम्यक् होती है तब मनुष्य बहिर्मुखी बनता है। जब स्वनिष्ठा का अभ्युदय होता है, उस समय मनुष्य अन्तर्मुखी बन जाता है।

(वि. सं. २०३६, चैत्र शुक्ला ८ (४ अप्रैल, १९७९), मलहोत्रा स्थल, दिल्ली)

---

१. उपेन्द्रवज्रा।
२. शालिनी।
३. इन्द्रवज्रा।
४. उपेन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२४. विशुद्धेसौरभम्

(राज्यसभा उपाध्यक्ष, श्यामलाल यादव द्वारा प्रदत्त विषय–चन्दन की चुटकी भली।)

१. [1]गन्धप्रियोऽयं मनुजः समस्ति, सौरभ्यमन्वेषयति प्रकामम्।
आचारशुद्धिश्च विचारशुद्धिः, स्याच्चन्दनं जीवनसौरभं तत्॥

मनुष्य सुगन्धप्रिय है। वह अतिशयरूप में सुरभि का अन्वेषण करता है। आचार की शुद्धि और विचार की शुद्धि चन्दन है, उससे जीवन का सौरभ प्राप्त होता है।

२. आचार्यवर्यस्य निबन्धनेन, आचारशुद्धिर्व्यवहारशुद्धिः।
अन्तर्विशुद्धेः सुरभिः समन्ताद् आकर्षितास्तेन भवन्ति लोकाः॥

आचार्यवर आचारशुद्धि और व्यवहारशुद्धि के महान् स्रोत हैं। अन्तर् विशुद्धि की सुरभि चारों ओर फैल रही है, इसलिए उनके प्रति मनुष्य आकृष्ट हो रहे हैं।

(वि. सं. २०३७, आसोज कृष्णा प्रथम अमावस्या (८ अक्टूबर, १९८०),
जैन विश्व भारती (तु. अ. नी.), लाडनूं)

२५. किं भारतं संस्कृतभारतीं विना?

(दिल्ली में संस्कृतविदुषी कमलारत्नम् द्वारा प्रदत्त विषय–किं भारतं संस्कृतभारतीं विना?)

१. [2]मूर्च्छागतो जीवति मानवोऽपि, श्वासं विहायापि कदा कदाचित्।
प्रश्नोयमेवापि तथैव भाति, किं भारतं संस्कृतभारतीं विना।।

मनुष्य भी मूर्च्छा की अवस्था में शायद कभी श्वास के बिना भी जीवित रह सकता है, मन्द श्वास से भी जीता रहता है। संस्कृत भाषा के बिना भारत किस स्थिति से गुजर रहा है, इस प्रश्न का उत्तर भी वैसा ही हो सकता है जैसा कि श्वास की स्वाभाविक गति के विलुप्त होने पर जीने वाले का होता है।

२. [3]देशं च कालं च विहाय किञ्चिद् नौचित्यचर्चा विबुधैर्विधेया।
कालस्य माहात्म्यमिदं हि मन्ये, यदाङ्ग्लभाषा प्रचुरा प्रतिष्ठा।।

विद्वान् व्यक्तियों को देश और काल की उपेक्षा कर औचित्य की चर्चा कुछ भी नहीं करनी चाहिए। मैं मानता हूं, यह काल की ही महिमा है कि जिसमें अंग्रेजी भाषा प्रचुर प्रतिष्ठा को प्राप्त हो रही है।

१-२. इन्द्रवज्रा। ३. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. स्थूलस्य कालः सुतरां व्यतीतः, सूक्ष्मस्य माहात्म्यमिदं सुलभ्यम्।
अणुव्रतानां जगतीतलेऽस्मिन्, तथाणुशस्त्रस्य महत्त्वमस्ति।।

स्थूल का समय अत्यन्त समाप्त हो गया है। अब सूक्ष्म का माहात्म्य सुलभ हो रहा है। इस जगतीतल पर आचार के क्षेत्र में अणुव्रतों का और सुरक्षा के क्षेत्र में अणुशस्त्रों का महत्त्व है।

४. [1]यत्रास्ति निष्ठा सुकृतप्रतिष्ठा, वैफल्यमेवास्ति कुतोऽनुरागे?।
तत्राप्यसौ संस्कृतभारतीह, तस्याः विकासे विचिकित्सितं किम्?।।

जहां सम्यक् प्रकार से कृत प्रतिष्ठा वाली निष्ठा होती है तब उसके अनुराग में विफलता ही कहां? वहां भी यह संस्कृत भाषा ही इसका उदाहरण है। तब उसके विकास में सन्देह क्यों?

(वि. सं. २०३८, आसोज शुक्ला ८ (६ अक्टूबर, १९८१), दिल्ली)

४. आशुकवित्वम् : प्रसंगानुबद्धम्

१. एकता

(जयपुर से जोबनेर की यात्रा में राजमार्ग के दोनों ओर वृक्षावली के मिलन को देखकर आशुकवित्व–)

१. [2]रथ्याकूले पार्श्वयोर्भिन्नमूला, वृक्षा व्योम्नि प्रेमलग्ना विभान्ति।
छाया जाता सर्वतो व्यापिनी तद्, भिन्ने मूलेप्येकता श्लाघनीया।।

राजमार्ग के दोनों पार्श्वों में वृक्ष लगे हुए थे। उनके मूल पृथक्-पृथक् होने पर भी वे आकाश में प्रेम से मिल रहे थे। उनकी छाया चारों ओर फैल रही थी। मूल के भिन होने पर भी एकता श्लाघनीय होती है।

(वि. सं. २००६, मार्गशीर्ष कृष्णा ७ (१२ नवम्बर, १९४९), जोबनेर (राजमार्ग)

२. ताजमहलः

(आगरा, ऐतिहासिक एवं विश्व प्रसिद्ध कलापूर्ण ताजमहल के अवलोकन के प्रसंग पर आशुकवित्व–)

१. [3]रक्तोपलाः शिल्पिरुषां प्रतीका अद्यापि शान्तिं न गता इवाऽह।
बहिःप्रदेशे विशतेति बुद्धमेष्वस्ति नूनं हृदयानुभूतिः।।

---

१. इन्द्रवज्रा।
२. शालिनी।
३. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताजमहल के बाहर ये लाल पत्थर शिल्पियों के क्रोध के प्रतीक हैं, जो आज भी शान्त हुए प्रतीत नहीं होते। बाह्य प्रदेश में प्रवेश करने पर यह ज्ञात हुआ कि इनमें निश्चित ही हृदय की अनुभूति है।

२. अन्तर्गतस्ताजमहालयस्य वलक्षता[१]मैक्षिषि भव्यभित्तेः।
अरेऽट्टहासोऽस्ति विलासिबुद्धेर्यत्कारितो ही स्वयमेव राज्ञा॥

मैंने ताजमहल के भीतर सुन्दर भित्ति की धवलिमा देखी, पर वास्तव में यह धवलिमा नहीं थी। आश्चर्य है कि यह तो स्वयं सम्राट् (शाहजहां) द्वारा कृत अपनी विलासितापूर्ण बुद्धि का अट्टहास मात्र था।

३. सलाघवे[२] पाणिघ[३]पाणिभङ्गे, निःश्वासवातेन कलिन्दकन्या[४]।
श्यामा बभूवेति तदूर्ध्वभागे, गतेन नीरं दधता व्यलोकि॥

कुशल शिल्पियों के हाथों के काटे जाने पर उनकी निःश्वास वायु से यमुना का जल श्यामल हो गया। ताजमहल के ऊर्ध्वभाग में जाने पर यमुना के जल को अपनी आंखों में धारण करते हुए मैंने यह देखा।

(वि. सं. २००६ चैत्र कृष्णा १२-१३ (१५-१६ मार्च, १९५०), आगरा)

३. त्रिचक्षुः

(आत्मनिवेदन के स्वरों में आशुकवित्व-)

१. [५]श्रद्धां पुरस्कृत्य गतिं करोमि, बुद्धिं पुरस्कृत्य विचारयामि।
आत्मानुभूत्या विदधामि साक्षात्, त्रिचक्षुरेवं भगवन्! भवेयम्॥

श्रद्धा को पुरस्कृत कर गति करता रहूं, बुद्धि को पुरस्कृत कर विचार करता रहूं और आत्मानुभूति से साक्षात्कार करता रहूं-प्रभो! इस प्रकार मैं त्रिचक्षु हो जाऊं।

४. गंगानहरः

(पंजाब, सतलुज नदी से निकली 'गंगानहर' को अधिकृत कर आशुकवित्व। २६ अक्टूबर १९२७ को शिवपुर हैड पर तत्कालीन वायसराय लार्ड इर्विन ने इसका उद्घाटन किया था।)

१. [६]गंगत्तरंगा किमु नाम गंगा, नो नो तदुत्था सलिलप्रणाली[७]।
भगीरथः कोऽपि किमत्र जातो, न ज्ञायते तेऽद्य युगे कियन्तः॥

१. वलक्षता-धवलिमा।
२. सलाघवः-लाघवयुक्त, दक्ष।
३. पाणिघः-शिल्पी, कारीगर।
४. कलिन्दकन्या-यमुना।
५. उपजाति।
६. इन्द्रवज्रा।
७. सलिलप्रणाली-नहर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्ताल तरंगों वाली गंगा को देखकर मन में यह प्रश्न उभरा कि क्या यह गंगा नदी है? नहीं, नहीं, यह तो उससे निकली हुई नहर है। फिर प्रश्न हुआ कि क्या कोई यहां भगीरथ उत्पन्न हुआ है, जो इसको ले आया है? न जाने आज इस युग में कितने भगीरथ विद्यमान हैं।

२. कल्लोलमालाकुलिताभिरद्भिः, द्वारप्रदेशे पतिताभिरुच्चैः।
संघर्षशीलाभिगता सवस्त्रा, विचित्रवेशा किल नर्तकीव॥

वह नहर ऊर्मिमाला से आकुलित तथा ऊपर से द्वारप्रदेश तक गिरते हुए पानी के साथ जूझ रही थी। आगे फेनिल वस्त्र पहन कर बढ़ती हुई वह नहर विचित्र वेशवाली नर्तकी जैसी लग रही थी।

३. घोषोऽतुलस्तद् विपुलं शरीरं, प्रकम्पितं सूचयतीति सत्यम्।
अस्मिन् युगे जल्पति यः स एव, मुख्योऽम्बुनापि प्रतिबुद्धमेतत्॥

उसका अतुल घोष और प्रकंपित विपुल शरीर इस सत्य की सूचना दे रहा है कि इस युग में जो बोलता है, वही मुख्य होता है। पानी ने भी इस रहस्य को समझ लिया था।

४. निम्नं गतं वारि करोत्यनिम्नं, पृष्ठागतं वार्यपरं स्ववेगात्।
ऊर्ध्वंदमं याति पुनश्च निम्नमुद्धारयेत् कः खलु निम्नवृत्तिम्॥

पीछे से आया हुआ पानी अपने वेग से पहले के पानी को ऊपर की ओर ढकेल देता है। ऊपर गया हुआ पानी फिर नीचे चला जाता है। जो निम्नवृत्ति होता है–जिसका स्वभाव नीचे की ओर जाने का होता है, उसका उद्धार कौन कर सकता है?

५. रोमोद्गमं[1] द्रष्टुरिह प्रकृत्या, बिन्दूद्गमो वृद्धिमवाप्तुकामः।
वातेरितो[2] व्योमविहारहारी, स्प्रष्टुं समस्तान् पथिकान् विलोलः[3]॥

ऊपर से गिरती हुई धारा के जलकण बढ़ने को ललचा रहे थे। देखने वालों को ऐसा लग रहा था कि मानो प्रकृति को रोमांच हो आया है। वे जलकण हवा से प्रेरित होकर आकाश में उछल रहे थे और पथिकों को छूने के लिए आकुल हो रहे थे।

(वि. सं. २००८, ज्येष्ठ शुक्ला ६ (११ जून, १९५१), पंजाब, सतलुज बांध)

---

१. रोमोद्गमः–रोमाञ्च।
२. वातेरितः–वायु से प्रेरित।
३. विलोलः–चञ्चल/आकुल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५. त्रिवेणीसङ्गमः

(प्रयाग-त्रिवेणी संगम पर की गई आशुकविता-)

१. [१]स्यात् सङ्गमोऽयं हृदयङ्गमोऽपि, तस्यैव यस्यास्ति मनः पवित्रम्।
प्रकाशशीलं च मलापहारि, प्रक्षालकं भावितवासनायाः॥

जिसका मन पवित्र, प्रकाशवान्, विशुद्ध और संस्कारों का प्रक्षालन करने वाला है, वही इस संगम को हृदयंगम कर सकता है।

२. [२]प्रकाशपुत्री यमुना तदस्ति, प्रकाशपुत्र्या विहितं विधेयम्।
विलीनमस्तित्वमहंत्त्वपूर्णं, विधाय कार्यं विहितं प्रकाश्यम्॥

यमुना प्रकाश की पुत्री है। (यमुना को सूर्यजा माना गया है, इसलिए वह प्रकाशपुत्री है।) प्रकाशपुत्री द्वारा जो कृत है, वह सबके लिए करणीय है। उसने अपने अहंता से पूर्ण अस्तित्व को गंगा में विलीन कर प्रकाशोचित कार्य किया है।

३. [३]व्योमापगा स्वर्गिनदी पवित्रा, सम्प्राप्य पानीयविशालराशिम्।
न खर्वगर्वं वहते कदाचित्तेनैव तस्याश्च समुच्छ्रयोऽयम्॥

गंगा आकाश से आई है, इसलिए वह स्वर्ग की नदी है। वह पवित्र गंगा यमुना जैसी नदी के पानी की विशाल राशि पाकर भी कभी तुच्छ गर्व नहीं करती, इसीलिए उसे यह उच्चता प्राप्त हुई है।

४. भागीरथीयं श्रमताप्रतीकं, परा प्रकाशप्रतिरूपभर्त्री।
एकावदाताम्बुरिहास्ति पुण्या, परा तथा श्यामलतामुपेता॥

गंगा भागीरथी है, श्रम की प्रतीक है और यमुना सूर्यजा है, प्रकाश की प्रतीक है, इसीलिए गंगा का जल धवल और पवित्र है, किन्तु यमुना का जल श्यामल है।

५. स्यादेतयोः सङ्गम एष पुण्यस्तदा समानाः सहजात्मलीनाः।
समन्वयं नैव नराः स्पृशन्ति, तत्रास्ति चिन्त्यं च महद् विचित्रम्॥

जब गंगा और यमुना-इन दोनों का संगम हो सकता है तो समानधर्मा और स्वभावतः आत्मा में लीन रहने वाले मनुष्य समन्वय क्यों नहीं कर पाते? यह चिन्तनीय और अत्यन्त आश्चर्यकारी विषय है।

---

१. उपजाति।
२. उपेन्द्रवज्रा।
३. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६. आणुव्रतीयं विशदास्ति गङ्गा, सरस्वती स्यादुपदेशवाणी।
स्यात् सूर्यजा[1]ऽसौ हृदयप्रकाशस्तीर्थाधिराजस्तुलसीह जातः॥

अणुव्रतों की यह पवित्र गंगा, उपदेशवाणी रूप सरस्वती तथा हृदय के प्रकाशपुंज की यह यमुना–इन तीनों का संगम बनाकर आचार्य तुलसी स्वयं तीर्थाधिराज बन गए हैं।

(वि. सं. २०१५, मार्गशीर्ष कृष्णा १३ (८ दिसम्बर, १९५८), प्रयाग–त्रिवेणी संगम)

६. मिलनम्

(राजगृह के वैभार गिरि के सर्वोच्च शिखर पर आशुकवित्व–)

१. [2]अतीतमद्यास्ति विवर्तमानं, वाचोऽपि वाग्भिर्मिलिता भवन्ति।
रजांस्यपि स्पर्शमुपागतानि, मस्तिष्कमद्यास्ति हृदा सहैव॥

आज अतीत वर्तमान में समा रहा है। वाणी वाणी से मिल रही है। यहां के रजकण भी आज स्पृष्ट हो रहे हैं और मस्तिष्क भी हृदय का साथ दे रहा है। इस मिलन की अपूर्ववेला में सब परस्पर मिल रहे हैं।

(वि. सं. २०१५, पौष शुक्ला १० (१९ जनवरी, १९५९), राजगृह, वैभार पर्वत)

७. सम्मेदशिखरम्

(जैनों के ऐतिहासिक स्थल पारसनाथ पर्वत के सर्वोच्च शृंग पर स्थित पार्श्वनाथ मन्दिर में आशुकवित्व–)

१. [3]न वा स्वभावः परिवर्तितः स्यात्, सुनिश्चितं सत्यमिदं ब्रवीमि।
वनं विहायैव गता मनुष्याः, वनं श्रिता मोदमवाप्नुवन्ति॥

मैं इस वास्तविक सचाई को प्रकट कर रहा हूं कि स्वभाव परिवर्तित नहीं होता। वन को छोड़ कर ही मनुष्य नगरों में गए, किन्तु आज वे पुनः वन में आकर प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

२. [4]सदा ऋजुत्वं पुरुषैः प्रशस्तं, परन्तु वक्रत्वमपि क्वचित् स्यात्।
वक्रैश्च मार्गैर्वयमत्र याताः, पन्था ऋजुर्नैव सहायकोऽभूत्॥

मनुष्य ने सदा ऋजुता की प्रशंसा की है, किन्तु कहीं–कहीं वक्रता भी प्रशस्त होती है। मार्ग वक्र थे, इसीलिए हम यहां (पर्वत पर स्थित पार्श्वनाथ के मन्दिर) तक आ गए। यहां पहुंचने में ऋजु मार्ग (सीधा मार्ग) हमारा सहायक नहीं हुआ।

(वि. सं. २०१६ मार्गशीर्ष शुक्ला ६ (५ दिसम्बर, १९५९), पार्श्वनाथ मन्दिर, सम्मेदशिखर)

---

१. सूर्यजा–सूर्यपुत्री (यमुना)।
२–३. उपेन्द्रवज्रा।
४. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८. दीपमाला

(दीपावली के पुण्य अवसर पर भगवान् महावीर के निर्वाणोत्सव के उपलक्ष्य में कृत आशुकवित्व–)

१. [1]यथा प्रकाशः क्षणभङ्गुरो हि, तथा जगत् सर्वमिदं विभाव्य।
स्थायिप्रकाशाय सृजन्तु यत्नमिति प्रदीपाः प्रकटं ध्वनन्ति॥

जैसे प्रकाश क्षणभंगुर है, वैसे ही यह संपूर्ण जगत् क्षणभंगुर है। यह चिन्तन कर स्थायी प्रकाश के लिए प्रयत्न करो। दीपावली के अवसर पर यह प्रदीप की पंक्ति स्पष्ट ध्वनित कर रही है।

२. [2]अहह चतुरचेता दीपमालामिषेण,
दिवसयति निशैवं मा स्म निन्दन्तु लोकाः।
जगति भगवतः स्वालोकवीरस्य जातो,
विरह इह वसत्यां भानुभाया[3]मसत्याम्॥

अमावस्या की रात ने सोचा–खेद है। मेरी सत्ता में, सूर्य के प्रकाश के अभाव में स्वयं प्रकाशमान् वीर भगवान् का इस जगत् से विरह–निर्वाण हो गया। लोक मेरी निन्दा न करें, ऐसा सोचकर उस निपुणचेता अमावस्या ने दीपमाला के बहाने रात को दिन बना दिया।

३. [4]लोका न वक्राः स्थितिरप्यवक्रा,
कालोऽनुकूलः सुखितो जनोऽपि।
देवार्यदेवा[5] वतरेस्तदातो,
भाग्योदयो वच्मि कलेः किमन्यत्?॥

हे देवार्यदेव! जिस समय लोग वक्र नहीं थे, स्थिति भी वक्र नहीं थी, काल अनुकूल था, जनसमुदाय भी सुखी था उस समय आपने अवतार लिया। इसे मैं उस युग का भाग्योदय मानता हूं। इस कलिकाल के लिए अन्य क्या कहा जाए? क्योंकि इस युग में आपका अवतार ही नहीं हुआ।

४. [6]श्रेयो यदेकं मिलितं तदानीं, यागस्य हिंसाप्रतिरोधनस्य।
कियन्ति तान्यद्ययुगे मिलिष्यन्नत्रानुमाया अपि नानुमा स्यात्॥

उस युग में आपको एक श्रेय मिला–आपने यज्ञ की हिंसा का प्रतिरोध किया। यदि आप इस युग में जन्म लेते तो आपको आज के युग में कितने श्रेय मिलते, इस अनुमान का भी अनुमान नहीं हो सकता।

(वि. सं. २०१८, कार्तिक अमावस्या (८ नवम्बर, १९६१), बीदासर)

---

१. उपजाति।
२. मालिनी।
३. भानुभा–सूर्यकिरण।
४. इन्द्रवज्रा।
५. देवार्यदेवः–महावीर प्रभु।
६. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९. अन्तर्दर्शनम्

(महाराजा करणीसिंह, बीकानेर हाउस, दिल्ली में आचार्यवर के निर्देशानुसार आशुकविता–)

१. [१]बाह्यं च सौन्दर्यमहं विलोके, तदा प्रमोदे मनसि प्रगाढम्।
अन्तर्यदा सुन्दरतां न लोके, तदा विषादो मनसि प्रबुद्धः।।

जब मैं बाह्य सौन्दर्य को देखता हूं तब मन में परम प्रमोद होता है, किन्तु जब अन्तः सौन्दर्य को नहीं देखता हूं तब मन विषाद से भर जाता है।

२. यथा बहिस्ताच्च तथान्तरेव, सौन्दर्यसीमा कलितावकाशा।
पूर्णत्वमत्रैव विलोकयामि, सौन्दर्यमन्यत्र न लोकयामि।।

बाह्य सौन्दर्य की तरह अन्तर् सौन्दर्य की सीमा जहां आकलित होती है, वहीं मैं पूर्णता देखता हूं और उससे अन्यत्र कहीं भी सौन्दर्य का दर्शन नहीं कर पाता।

३. हसन्ति पुष्पाणि लतागतानि, चेतांसि सुप्तानि तदीक्षकाणि।
दुर्वापि हारित्यमुपाश्रितास्ति, चित्तस्थितिः स्यात् कलुषेति चित्रम्।।

पौधों पर लगे हुए फूल खिल रहे हैं। उन्हें देखने वाले चित्त सो रहे हैं। दूर्वा की भी हरितमा दीप्त हो रही है, पर चित्त की स्थिति कलुषित है, यह आश्चर्य की बात है।

४. आचार्यवर्यैर्भणितं यदेतद्, दृष्टं मयान्तर्विषयस्वरूपम्।
तथान्तरं दर्शनमाशु लोकैः, कृतं भवेत् सुन्दरता स्फुरेत्तत्।।

आचार्यवर्य ने कहा–मैंने देश के भीतरी रूप को देखा है। उसी तरह सारे लोग यदि अन्तर्दर्शन करने लग जाएं तो सुन्दरता फूट पड़े।

५. सर्वे स्वतन्त्रा यदिह स्वतन्त्रे, राष्ट्रे स्वतन्त्रं च दलं किमर्थम्।
न राजनीतिः परतन्त्रताया, बन्धं छिनत्तीति मयानुभूतम्।।

स्वतन्त्र पार्टी के नेता प्रोफेसर एन. जी. रंगा और अणे साहब की ओर लक्ष्य करते हुए[२]–जब स्वतंत्र राष्ट्र में सब स्वतन्त्र हैं, फिर स्वतन्त्र दल अलग किसलिए हैं? राजनीति परतन्त्रता के बन्धन नहीं काट सकती, यह अनुभव की बात है।

६. प्रोक्तं यथाचार्यवरैरिहैव, दलैर्विभक्ता मनुजा इदानीम्।
अखण्डतां नेष्यति नाम राष्ट्रं, स एव यो निर्दलतां गतोऽस्ति।।

---

१. इन्द्रवज्रा।
२. उस समय वहां स्वतन्त्र पार्टी के नेता प्रोफेसर एन. जी. रंगा तथा भाऊ साहब अणे भी उपस्थित थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभी अभी आचार्यवर ने कहा–इस समय सब लोग पृथक्-पृथक् दलों में विभक्त हो रहे हैं, पर राष्ट्र की अखण्डता वही प्राप्त कर सकेगा, जो निर्दली होगा।

(वि. सं. २०२१, प्रथम चैत्र शुक्ला १२ (२५ मार्च, १९६४), महाराजा बीकानेर हाउस, नई दिल्ली)

१०. मैत्रीभावना

(दीपावली के पावन अवसर पर समर्पण और मैत्री भावना को संजोते हुए आशुकवित्व–)

१. [1]विरागः सर्वदोषेभ्योऽनुरागस्तव पादयोः।
निपातः सर्वपापानां, प्रणिपातस्तयोः महान्॥

प्रभो! मैं सर्व दोषों से विरक्त हो जाऊं, आपके चरणों में अनुरक्त हो जाऊं, मेरे सभी पाप नष्ट हो जाएं और मैं आपके चरणयुगल में प्रणत हो जाऊं, यह उत्तम है, श्रेयस्कर है।

२. मैत्र्यममित्रभावेषु मृदुता सकलेष्वपि।
अवक्तव्ये ध्रुवं मौनमाप्तं स्यात्त्वत्प्रसादतः॥

प्रभो! मैं आपके प्रसाद से अमित्र भाव में भी मैत्री करूं, सभी जीवों के प्रति मृदुता का व्यवहार करूं और अवक्तव्य के प्रति मौन रहूं।

(वि. सं. २०२३, कार्तिक अमावस्या (१२ नवम्बर, १९६६), बीदासर)

११. अभयस्थानं समुद्रः

(गोलवड़ (महाराष्ट्र) में आचार्यवर के प्रवासस्थान के सामने ही अथाह समुद्र लहरा रहा था। उसे देखकर कवि-मानस में आशुकवित्व स्फुरित हो उठा। उसका चित्रण इस प्रकार है–)

१. [2]सिन्धुर्गर्जि व्यधित विपुलां विक्षिपन् वीचिमालां,
शान्ता श्यामा[3] विधुधवलिता तत्सहाया प्रजाता।
प्रासादानामपि विटपिनां[4] तीरदेशे स्थितानां,
भीतिर्दृष्टा न खलु वदने तत्र हेतुः समुद्रः॥

समुद्र ऊर्मिमाला को उछालता हुआ जोर से गर्जन कर रहा था। चांद की चांदनी से धवलित अंधेरी रात मौनभाव से समुद्र के गर्जारव को फैलाने में सहायक हो रही थी,

१. अनुष्टुप्।
२. मन्दाक्रान्ता।
३. श्यामा–अंधेरी रात्रि।
४. विटपी–वृक्ष।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु तट पर स्थित बड़े-बड़े मकान और वृक्ष निष्प्रकम्प खड़े थे। उनमें भय का लवलेश नहीं था। इसका मूल कारण था समुद्र। क्योंकि समुद्र अपनी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करता।

(वि. सं. २०२४, पौष कृष्णा ३ (२० दिसम्बर, १९६७), गोलवड़ (महाराष्ट्र)

१२. वृक्षलयनम्

(गोलवड़ (महाराष्ट्र), डाक बंगले में 'चोरुमला' का एक वृक्ष था। उसका तना ५३ फुट का था। इसके तने में एक कोठरी बनाई गई थी और सीढ़ियां बनाकर ऊपर तक जाने का रास्ता भी निर्मित्त था। उसे देखकर आशुकवि का मानस बोल पड़ा-)

१. [1]उत्कीर्याद्रिं[2] लयननिवहः[3] संस्कृतो दृष्टपूर्वः,
छित्त्वा स्कन्धं वरशिखरिणो[4] निर्मितो नोटज[5]श्च।
दृष्टादृष्टे यदिह तुलनाऽऽधीयते तर्हि दृष्टं,
नादृष्टस्यार्हति किल कलां षोडशीं चापि विश्वे॥

पहाड़ को कुरेदकर बनाई गई गृहपंक्ति हमने पहले देखी थी, किन्तु तरुवर के तने को छीलकर बनाई गई कोटर हमारे लिए अदृष्टपूर्व थी। अदृष्ट की दृष्ट के साथ यदि तुलना की जाए तो जो दृष्ट है, वह अदृष्ट के सोलहवें भाग में भी नहीं आ सकता।

(वि. सं. २०२४, पौष कृष्णा ३ (२० दिसम्बर, १९६७), गोलवड़ (महाराष्ट्र)

१३. कलाक्षेत्रम्

(अडियार (मद्रास), रुक्मणी देवी अरूंडेल के कलाक्षेत्र में प्रस्तुत आशुकाव्य-)

१. [6]सरस्वतीयं वरदा विभाति, आचार्यवर्या वरतो विभान्ति।
कक्षावलीयं ललिता मनोज्ञा, कलाकलापः कुरुते प्रमोदम्॥

इधर वरदायी सरस्वती की प्रतिमा और इधर आचार्य तुलसी शोभायमान हैं। यह कक्षावली ललित और मनोज्ञ है। यहां का सारा कलाकलाप प्रमुदित कर रहा है।

२. [7]चित्तं कलायां ललितं प्रसन्नं, कलाविदां कान्ततरः स एव।
न षोडशीं नाम कलां च सोऽर्हेत्, चित्तं विलुप्तं वरिवर्ति यस्य॥

---

१. मन्दाक्रान्ता।
२. अद्रिः-पहाड़।
३. लयननिवहः-गृहपंक्ति।
४. शिखरी-वृक्षः।
५. उटजः-पर्णशाला, कोटर।
६. उपेन्द्रवज्रा।
७. इन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलाविदों में वही श्रेष्ठ है, जिसका चित्त कलाओं से ललित और प्रसन्न हो चुका है। जिसका चित्त विलुप्त है, वह कला की सोलहवीं कला को भी नहीं पा सकता।

३. **सर्वा कला धर्मकलाप्रविष्टा, चित्तं यतः स्वास्थ्यमुपैति भव्यम्।**
चित्तस्य नाशेन कलाऽकला स्यात्, सर्वस्तथैवाभिनयोऽभिनीतः॥

सारी कला धर्म-कला में प्रविष्ट है। इससे चित्त प्रसन्न होता है। चित्त के नष्ट होने पर कला अ-कला हो जाती है। इसी प्रकार सारा अभिनीत अभिनय अनभिनीत हो जाता है।

४. **[1]स्वराः कलास्थानमुपाव्रजन्ति, तथा शरीरावयवा अशेषाः।**
कलामयं विश्वमिदं समस्तं, कलामयं यस्य मनो विभाति॥

जिसका मन कलामय है, उसके सारे स्वर और शरीर के सभी अवयव कला बन जाते हैं तथा यह सारा विश्व कलामय हो जाता है।

५. **[2]केशावलीयं ललिता सुरम्या, चक्षुः प्रसन्नं विमला प्रवृत्तिः।**
सौन्दर्यमेतत्सहजं वरेण्यं, क्षेत्रं कलायाश्च भवेत्तदेव॥

ललित और सुरम्य केशराशि, प्रसन्न चक्षु और निर्मल प्रवृत्ति-यह व्यक्ति का सहज श्रेष्ठ सौन्दर्य है और वस्तुतः वही कलाक्षेत्र है।

(वि. सं. २०२५, आसोज शुक्ला ५ (२६ सितम्बर, १९६८), अडियार, मद्रास (तमिलनाडु)

१४. चिदम्बरम्

(दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध, पांच तीर्थ क्षेत्रों में से एक नटराज मन्दिर, चिदम्बरम् में आशुकवित्व-)

१. **[3]चिदम्बरे भानुरुदेति पूषा[4], चिदम्बरे गच्छति मेघमाला।**
सर्वेऽपि लोकाः विहिताशयाः स्युश्चिदम्बरत्वं न वृतं यदा स्यात्॥

चिदाकाश में प्रभास्वर सूर्य उदित होता है और चिदाकाश में ही मेघमाला उमड़ती है। जब चिदाकाश आवृत नहीं होता, तब सारे लोग अच्छे विचारों वाले होते हैं।

२. **सर्वा तपस्यापि च साधनापि, सर्वोऽपि पुंसां श्रम एव लोके।**
चिदम्बरत्वं खलु लब्धुमेव, विना तदेतत्सकलं विसारम्॥

---

१. उपेन्द्रवज्रा।
२. इन्द्रवज्रा।
३. उपजाति।
४. पूषा (पूषन्)-सूर्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसार में पुरुषों का सारा पुरुषार्थ, सारी तपस्या और सारी साधना केवल चैतन्याकाश को पाने के लिए ही होती है। उसके बिना सब कुछ निस्सार है।

३. [1]आचार्यवर्यास्तुलसीवरेण्याः, चिदम्बरादाप्तशरीरपोषाः।
ज्ञानं विवेकस्य विलब्धुमत्र, चिदम्बरे सम्प्रति प्राप्तवन्तः॥

पूजनीय आचार्यवर्य श्रीतुलसी उसी चिदाकाश से शरीर में पोषण पा रहे हैं। वे विवेक का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यहां अभी चिदम्बरम् में आए हैं।

४. रूपं न रूपं यदि नास्ति दृष्टं, न नामरूपे विहिते हि काम्ये।
क्व पारदर्शी स्फटिकावदात, आत्मा मदीयस्त्विति दर्शनार्थी॥

वह रूप रूप नहीं है, जो दृष्ट नहीं होता तथा नाम और रूप अभिलषणीय रूप में विहित नहीं है। 'मेरी स्फटिक की भांति निर्मल और पारदर्शी आत्मा कहां है'-यह देखने का इच्छुक मनुष्य चिदम्बरम् में घूम रहा है।

५. रूपं विलोक्यापि न दृष्टमत्र, दृश्यं यदत्रास्ति च चक्षुषापि।
अदृश्यमाद्रष्टुमिहाव्रजन्ति, लोकाः स्वचक्षुर्विहितावभासाः॥

मनुष्य ने रूप को देखकर भी उसे यहां नहीं देखा, जो चक्षु के द्वारा दृश्य है। इसलिए मनुष्य अपनी आंखों में ज्योति संजोकर अदृश्य को देखने के लिए यहां 'चिदम्बरम्' में आते हैं।

(वि. सं. २०२५, माघ शुक्ला ८ (२५ जनवरी १९६९),
नटराज मंदिर, चिदम्बरम्, (तमिलनाडु)

१५. समागमनम्

(त्रिवेन्द्रम् (करल) राजप्रासाद में आचार्य तुलसी के आगमन की स्मृति को गुम्फित करते हुए आशुकवित्वम्–)

१. मध्याह्नवेला परमा प्रशस्ता, मित्रानुभूतेः स्मृतिरत्र पूर्णा।
अतीतभावोऽपि च वर्तमाने, समन्वितः स्यात् क्वचिदेव लब्धः॥

यह प्रशस्त मध्याह्न वेला है। यहां मित्रता की अनुभूति की स्मृति भी सम्पन्न हुई है। वर्तमान में अतीत का सामंजस्य कहीं-कहीं ही प्राप्त होता है।

२. पद्भ्यां विहारं विदधन् मुमुक्षुः, प्रासादमध्ये स्थितिमान्नरेशः।
यद् वायुयाने विदधच्च यात्रां, त्रिसंगमं पुण्यमिदं विभाति॥

१. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आचार्यश्री मुमुक्षु हैं, ये भूमि का स्पर्श कर चलते हैं। नरेश प्रासाद में रहते हैं और तीसरे ये शुभकरणजी दसानी हैं, जो वायुयान से यात्रा करते हैं। इस प्रकार भूमि (आधार), मध्य और ऊर्ध्व–इन तीनों का यह पवित्र संगम है।

(वि. सं. २०२५, चैत्र कृष्णा अमावस्या (१८ मार्च, १९६९), राजप्रासाद, त्रिवेन्द्रम्)

१६. समाधिः

(अलनूर से कोयलमन्नम् के मध्यवर्ती मार्ग में 'सिद्धाश्रम' के स्वामी निर्मलानन्दजी के गुरु ब्रह्मानन्दजी के समाधिस्थल पर आचार्य तुलसी द्वारा आशुकविता करने का निर्देश–)

१. [1]ध्यानयोगं समालम्ब्य, ब्रह्मानन्दोऽनुभूयते।
यस्य ध्यानपदं नास्ति, नानन्दस्तस्य जायते॥

ध्यान–योग के आलंबन से ब्रह्म के आनन्द का अनुभव प्राप्त होता है। जो ध्यान में आरूढ़ नहीं है, उसे आनन्द की अनुभूति नहीं हो सकती।

(वि. सं. २०२६, वैशाख कृष्णा ५ (७ अप्रैल, १९६९), अलनूर (केरल)

१७. मैसूर–राजप्रासादः

(मैसूर के महाराजा जयचामराज वाडियार के राजप्रासाद में आशुकवित्व–)

१. [2]आचारवन्तः स्वयमुद्वहन्ति, सदा प्रचारं प्रथयन्ति तस्य।
आचारनिष्ठानपरान् सृजन्ति, आचार्यसंज्ञामुपयान्ति ते हि॥

जो स्वयं आचारवान् हैं, सदा आचार का प्रचार करते हैं और दूसरों को आचारवान् बनाते हैं, वे ही 'आचार्य' कहलाते हैं।

२. आचारनिष्ठा प्रबला यदा स्यात्, तदा मनुष्या इह सत्यनिष्ठाः।
आधारशून्यं न गृहं गृहं स्यान्नाचारशून्यो मनुजोऽपि तद्वान्॥

जब आचार–निष्ठा प्रबल होती है, तब मनुष्य सत्यनिष्ठ होते हैं। जिस प्रकार आधार–शून्य गृह गृह नहीं होता, उसी प्रकार आचार–शून्य मनुष्य मनुष्य नहीं होता।

३. आचार्यवर्याश्च विराजमाना, यत्सम्मुखीनो नरनायकोऽपि।
स लौकिकश्चापि तथेतरोऽपि, संयोग एष प्रकृतः प्रकृष्टः॥

एक ओर आचार्य तुलसी विराजमान हैं और उनके सम्मुख महाराजा बैठे हुए हैं।

---

१. अनुष्टुप्। २. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये महाराजा लौकिक विद्याओं और आचार्य तुलसी पारलौकिक विद्याओं में निपुण हैं। यह एक उत्कृष्ट संयोग मिला है।

४. इतश्च संघो यमिनां विभाति, वनस्पतेः साक्ष्यमिदं च मध्ये[1]।
स्वामी स्थितः सम्मुख एष पुण्यः, सर्वोऽपि योगः सहजोऽस्ति लब्धः॥

इधर साधु-साध्वियों का समूह है। बीच में फल-फूलों से भरे हुए थाल हैं। सामने राजपुरोहित बैठे हुए हैं। यह सारा योग सहज रूप से प्राप्त हुआ है।

(वि. सं. २०२६, वैशाख शुक्ला पूनम (२ मई, १९६९), मैसूर, राजप्रासाद)

१८. बाहुबली

(श्रवणबेलगोला (कर्नाटक), बाहुबली की प्रतिमा के सम्मुख आशुकवित्व-)

१. [2]शक्तिर्व्यक्तिं याति बाहुद्वयेन, ज्ञानालोको मस्तकस्थो विभाति।
आलोकानां माध्यमं चक्षुरेतत्, मोहाऽभावो व्यज्यते पुंस्कचिह्नैः॥

मनुष्य अनन्त शक्ति का स्रोत है। उसकी मुख्य शक्तियां चार हैं-ज्ञान, दर्शन, वीर्य और पवित्रता। मनुष्य के शरीर में इन चारों शक्तियों की अभिव्यक्ति के चार स्थान हैं-

१. ज्ञान का स्थान है-मस्तक।
२. दर्शन का स्थान है-चक्षु।
३. वीर्य का स्थान है-बाहुद्वय।
४. पवित्रता का स्थान है-पुंस्कचिह्न।

२. [3]शक्तिः समस्ता त्रिगुणात्मिकेयं, प्रत्यक्षभूता परिपीयतेऽत्र।
स्फूर्त्ताः स्वभावाः सकलाश्च भावाः, मूर्त्ता इहैवात्र विलोक्यमानाः॥

आज हम त्रिगुणात्मिका शक्ति-ज्ञान, दर्शन और पवित्रता का साक्षात् अनुभव करते हुए बाहुबली की इस विशाल मूर्ति को आंखों से पी रहे हैं। यहां सारे स्वभाव और भाव स्फूर्त और मूर्त हुए से लगते हैं।

३. [4]स्वतन्त्रतायाः प्रथमोऽस्ति दीपोः, नतो न वा यत्स्खलितः क्वचिन्न।
त्यागस्य पुण्यः प्रथमः प्रदीपः, परम्पराणां प्रथमा प्रवृत्तिः॥

---

१. मैसूर के महाराजा ने आचार्यश्री को भेंट देने के लिए फल-फूलों से भरे थाल वहां सजा रखे थे।
२. शालिनी।
३. इन्द्रवज्रा।
४. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महान् बाहुबली स्वतन्त्रता के प्रथम दीप थे। वे न तो कहीं झुके और न कहीं स्खलित हुए। त्याग के वे प्रथम प्रदीप और परम्परा-प्रवर्तन में अग्रणी थे।

४. समर्पणस्याद्यपदं विभाति, विसर्जनं मानपदे प्रतिष्ठम्।
शैलेशशैलीं विदधत्स्वकार्ये, शैलेश एष प्रतिभाति मूर्त्तः॥

महान् बाहुबली समर्पण के आद्य प्रवर्तक और विसर्जन के मानदंड थे। ये शैलेश बाहुबली पर्वतराज की सारी संपदा को स्वगत किए हुए आंखों के सामने खड़े हैं।

(वि. सं. २०२६, ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी (१५ मई, १९६९), श्रवणबेलगोला (मैसूर)

१९. किं माधुर्यम् ?

('माधुर्य क्या है'?—इस प्रश्न को सापेक्ष दृष्टिकोण से समाहित करने वाला आशुकवित्व-)

१. [१]माधुर्यप्रश्नोऽस्ति पदार्थराशौ, विभिन्नधाराऽस्ति विचारपुण्या।
क्षीरं मधु स्याद् मधुरं दधि स्यादन्ये पदार्था मधुरा भवन्ति॥

पदार्थसमूह में मधुर कौन है, यह एक प्रश्न है। विचार की विभिन्न धाराएं हैं, एक धारा नहीं है। कोई कहता है—दूध मधुर है, कोई कहता है—दही मधुर है। इस प्रकार अन्य अनेक पदार्थों को भी मधुर मानने की कल्पनाएं जुड़ी हुई हैं।

२. परं तु मन्येऽहमतो वरेण्यं, माधुर्यमस्मिन् भुवने समस्ति।
अतीतगाथा मधुरा ततोऽपि, स्मृतिश्च माधुर्यमुपैति तस्मात्॥

किन्तु मैं मानता हूं कि इस जगत् में अन्य वस्तुएं भी दूध और दही से मधुर हैं। अतीत की गाथा उनसे भी अधिक मधुर है और अतीत की गाथा से भी अधिक मधुर है—स्मृति।

३. [२]स्याद् जीवनस्यानुभवस्ततोऽपि, तन्निर्मितिः स्यान्मधुरा ततोऽपि।
माधुर्यगाथा तत एव पुण्या, सर्वत्र माधुर्यमिदं विभातम्॥

जीवन का अनुभव स्मृति से भी अधिक मधुर है और अनुभव से भी उसकी निर्मिति (जिससे वह निर्मित होता है) अधिक मधुर है। माधुर्य की गाथा इसीलिए पवित्र है कि उससे सर्वत्र माधुर्य का अनुभव होता है।

४. सोऽयं शुभोऽयं समयोऽपि लब्धः, माधुर्यमत्रापि दिशानुगामि।
देशेऽपि कालेऽपि तथा क्षणेऽपि, माधुर्यवर्षा परितो विलोके॥

१. उपजाति। २. इन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह शुभ समय उपलब्ध हो गया है। यहां हर दिशा से माधुर्य आ रहा है। देश, काल और क्षण-क्षण में माधुर्य की वर्षा हो रही है, उसे मैं देख रहा हूं।

(वि. सं. २०३२, चैत्र कृष्णा ५ (२० मार्च, १९७६), सुजानगढ़)

२०. संयमः

(संयम के माहात्म्य को प्रकट करने वाला आशुकवित्व-)

१. [1]दुःखार्त्तं जगतीतलेऽत्र भविनामालम्बनं संयमः,
दुःखार्त्तैर्विदितं न तत्त्वमधुना गीतं भृशं कोकिलैः।
वित्ताढ्या मनुजाः सशक्तमनसो दुःखं सुखं मन्वते,
वित्ताभावपरा विपर्ययमिताः क्वालम्बनं संयमः।।

यह जगत् दुःख से पीड़ित है। इसमें भव्यजनों के लिए आलम्बन है-संयम। दुःख से पीड़ित लोग अभी भी इस तत्त्व को नहीं जान पाए, इस स्वर को कोकिल बार-बार गा रही है। धनिक लोगों का मन इतना सशक्त हो गया है कि वे दुःख को सुख मान रहे हैं। धन के अभाव में रहने वाले लोगों की मान्यता इससे विपरीत है-वे सुख को दुःख मानते हैं। ऐसी स्थिति में संयम आलम्बन कहां बनता है?

२. [2]यावच्चित्ते स्फुरति सुतरां कल्पनाकल्पवृक्षो,
यावद् दुग्धं स्त्रवति सततं कामनाकामधेनुः।
तावत् स्वार्थैः स्वमतिरचितैः संकटे क्वाशये स्याद्,
आपन्नार्त्तिप्रशमनफलः संयमः कल्पवृक्षः।।

जब तक चित्त में कल्पना का कल्पवृक्ष सदा स्फुरित होता रहता है, जब तक कामनारूपी कामधेनु सतत दूध का स्त्रवण करती रहती है तब तक स्वमति से रचित स्वार्थों के द्वारा संकीर्ण बने हुए आशय में संयम का कल्पवृक्ष कहां होगा? जिसका फल आपद् और अर्त्ति का प्रशमन करने वाला होता है।

(वि. सं. २०३३, फाल्गुन शुक्ला दूज (२० फरवरी, १९७७), छापर, कालूजन्मशताब्दी)

२१. सन्निधेः प्रभावः

(दिल्ली, टी.वी. समाचार-संपादक, कुबेरदत्त के सम्मुख आशुकवित्व-)

१. [3]कुबेरदत्तस्य धनाधिपत्वमीशानकोणे प्रतिमा प्रतिष्ठा।
आचार्यवर्यस्य सुसन्निधाने, सर्वे प्रफुल्ला मनुजा विभान्ति।।

१. शार्दूलविक्रीडितम्।
२. मन्दाक्रान्ता।
३. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धनाधिपतित्व कुबेर के द्वारा प्रदत्त है। ईशान कोण में प्रतिमा प्रतिष्ठित है। आचार्यवर्य की सुखद सन्निधि में सब मनुष्य प्रफुल्लित लग रहे हैं।

(वि. सं. २०३८, मार्गशीर्ष कृष्णा १० (२१ नवम्बर, १९८१), दिल्ली)

२२. शतजीवी चिरं भूयात्

(आमेट (मेवाड़) का वर्षावास। कार्तिक शुक्ला दूज का दिन। आचार्य तुलसी का जन्म दिन। लगभग पांच बजे का प्रातःकालीन समय। मैंने जन्मदिन के उपलक्ष्य में समग्र धर्मसंघ की ओर से मंगलभावना प्रस्तुत करते हुए आशुकविता के रूप में दो श्लोक प्रस्तुत किए–)

१. [1]शतशाखी यतो जातः, संघकल्पतरुर्महान्।
शतजीवी चिरं भूयाद्, आचार्यस्तुलसीप्रभुः।।

जिनसे संघ का कल्पवृक्ष महान् और शतशाखी बना है, वे प्रभु आचार्य तुलसी शतजीवी होकर चिरकाल तक अनुशासना करें।

२. सोच्छ्वास विजयोल्लासा, सापेक्षा सुसमन्विता।
सायासा सहजानन्दा, श्रीर्धीः कीर्त्तिः प्रवर्धताम्।।

आपने धर्मसंघ को विजय के उल्लास से प्राणवान् बनाया है। आपके सारे कदम सुसमन्वित और सापेक्ष हैं। नए-नए आयामों को मूर्त्तरूप देने में आपका अथक श्रम लगा है। फिर भी आप सहजानन्द से परिपूर्ण हैं। आप श्री, बुद्धि और कीर्त्ति से प्रवर्धमान रहें।

(वि. सं. २०४२, कार्तिक शुक्ला दूज (१४ नवम्बर, १९८५), आमेट (मेवाड़)

२३. विश्वविद्यालयः

(जैन विश्वभारती संस्थान में विश्वविद्यालय की नींव रखे जाने के मंगल अवसर पर आशुकवित्व–)

१. [2]सुनिर्मलं व्योम पवित्रवायुः, चित्तं समेषां विमलं विभाति।
विद्यालयो विश्वकृते प्रतिष्ठां, सम्यग् नयेतेति समैर्विचिन्त्यम्॥

आकाश सहज निर्मल है। वायु पवित्र है। सबका चित्त विमल लग रहा है। यह विश्वविद्यालय विश्व के लिए सम्यक् प्रतिष्ठा को प्राप्त करे, सब लोग ऐसा चिन्तन करें।

---

१. अनुष्टुप्। २. उपेन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. [१]भूमेः कणाः सन्ति यथा पवित्राः, तथा हि विद्या विमलावदाता।
न तादृशीं श्रेणिमवाप्नुयात् सा, या विप्रकृष्टा खलु जीवनात् स्यात्॥

जैसे भूमि के कण पवित्र हैं, वैसे ही विद्या विमल और उज्ज्वल बने। वह विद्या की उस प्रकार की श्रेणी को प्राप्त हो जो जीवन से दूर चली जाए।

३. यस्यां धरित्र्यामपि शुद्धविद्या, विराजमाना मनसेन्द्रियेण।
विद्या परा सा समुपासनीया, विद्यालयो यातु वरां प्रतिष्ठाम्॥

जिस भूमि पर मन और इन्द्रियों से पवित्र बनी हुई विद्या विद्यमान है, वह परा विद्या उपासना के योग्य है, उसके द्वारा यह विश्वविद्यालय श्रेष्ठ प्रतिष्ठा को प्राप्त करे।

(वि. सं. २०४६, चैत्र कृष्णा ८ (२० मार्च, १९९०), लाडनूं, जैन विश्वभारती)

२४. सूर्यास्तम्

(केलवा बीच, मुंबई का मनोहारी सामुद्रीय स्थल। मकर संक्रान्ति का पावन दिन। आदर्श विद्या मन्दिर में ससंघ आचार्यप्रवर का एक दिन का प्रवास। सायंकालीन समय। समुद्र के तट पर चतुर्विध धर्मसंघ के बीच 'सूर्यास्त' विषय पर आशुकविता-)

१. [२]जलेऽपि सूर्यो गगनेऽपि सूर्यः, सूर्यद्वयं चित्रमलं तनोति।
बिम्बं यदुच्चैः प्रतिभाति नित्यं, निम्नास्पदं तत् प्रतिबिम्बमेति॥

आकाश में भी सूर्य है और समुद्र के जल में भी सूर्य दिखाई दे रहा है। दो सूर्यों का होना विचित्रता उत्पन्न कर रहा है। यह सत्य है कि बिम्ब सदा ऊपर होता है और वही निम्नास्पद होकर प्रतिबिम्ब हो जाता है।

२. [३]वृद्धिर्जलस्याऽस्ति ततोऽनुबन्धः, चन्द्रस्य किन्नाम विचित्रमेतत्।
एकः सदाऽलं गगने विहारी, एकः पृथिव्यां खलु कोऽनुबन्धः॥

यह कैसी विचित्रता है कि समुद्र में जल की वृद्धि का अनुबन्ध चन्द्रमा के साथ है। चन्द्रमा सदा आकाश-विहारी है तो समुद्र का जल पृथ्वी-विहारी। फिर भी दोनों में यह कैसा अनुबन्ध?

३. [४]संघेन सार्धं वयमागताश्च, सन्तोऽपि सन्तीह विभान्ति साध्व्यः।
इतः समण्य इत एव सन्ति, सच्छ्रावकाः संघचतुष्टयोऽयम्॥

---

१. इन्द्रवज्रा।
२. उपजाति।
३. इन्द्रवज्रा।
४. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम संघ के साथ यहां आए हैं। एक ओर साधु हैं तो दूसरी ओर साध्वियां हैं। इधर समणियां हैं तो उधर श्रावक। इस प्रकार संघचतुष्टय यहां सुशोभित है।

४. संक्रान्तिरद्यास्ति निशान्तमेतत्, संक्रान्तिरेषाऽस्ति सदैव मर्त्त्ये।
असंक्रमस्य स्थितिमाप्नुयामः, सदैव सर्वैरपि चिन्तनीयम्॥

आज मकरसंक्रान्ति का दिन है, ऐसा सुना है। यह संक्रान्ति मनुष्य में सदा रहती है। हम असंक्रमण (स्थिरता) की स्थिति को प्राप्त करें, यह चिन्तन सभी को करना चाहिए।

५. शनैः शनैः नीरमुपैति पार्श्वे, गम्भीरताया इदमेव चिह्नम्।
परां स्पृशन्तीह जना न ते स्युः, गाम्भीर्यभाजो भुवने कदापि॥

समुद्र का जल धीरे-धीरे निकट आ रहा है, यही गम्भीरता का लक्षण है। जो व्यक्ति एक साथ वेग से उत्कर्ष का स्पर्श करते हैं वे कभी इस संसार में गंभीर नहीं हो सकते।

६. [1]सुन्दरं दृश्यमाभाति, सुन्दरं दृश्यते मनः।
प्रकृतौ विद्यमानानां, सौन्दर्यं जायते ध्रुवम्॥

समुद्र का दृश्य सुन्दर लग रहा है, सबका मन भी सुन्दर-प्रसन्न दिखाई दे रहा है। जो लोग प्रकृति में रहते हैं, उनके लिए सौन्दर्य ध्रुव होता है।

(वि. सं. २०५९, पौष शुक्ला ११ (१४ जनवरी, २००३), केलवा बीच, मुंबई)

२५. किं तया दीक्षया?

(आचार्यवर नवसारी, सूरत के निकट गडत ग्राम में प्रवासित थे। आचार्यवर ने नीति का एक श्लोक सिखाया-)

(किं तया क्रियते धेन्वा, या न सूते न दुग्धदा।
किं तेन जातपुत्रेण, यो न विद्वान् न धार्मिकः॥)

उस गाय से क्या? जो न प्रसव करती है और न दूध देती है। उस पुत्र से क्या? जो न विद्वान् है और न धार्मिक।

(इस श्लोक के संदर्भ में मैंने (साध्वी विश्रुतविभा ने) अनुरोध किया-गुरुदेव! इस श्लोक के आधार पर कोई नया श्लोक बनाएं। जिससे हम सबको एक नया संबोध मिले। इस अनुरोध को स्वीकार कर आचार्यवर ने आशुकविता की-)

१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. [1]किं तया दीक्षया यस्यां स्वाध्यायो नैव विद्यते।
नैव मौनं न वा ध्यानं, न मनःशान्तिरुत्तमा।।

उस दीक्षा से क्या? जिसमें स्वाध्याय नहीं है, मौन नहीं है, ध्यान नहीं है और मन की अच्छी शान्ति नहीं है।

(वि. सं. २०६०, ज्येष्ठ शुक्ला ९ (९ जून, २००३), गडत, (नवसारी))

२६. किमर्थं ध्यानम्?

(वि. सं. २००३, सूरत (गुजरात) में चातुर्मासिक प्रवास। आचार्यवर के सामने थोड़ी दूरी पर दो समणियां ध्यान कर रही थीं। उन्हें देखकर आचार्यवर ने अनुष्टुप् छन्द में श्लोक के दो चरण बनाए। मैंने (साध्वी विश्रुतविभा ने) श्लोकपूर्त्ति के लिए प्रार्थना की। आचार्यवर ने मेरी विनती पर पूरे श्लोक की रचना कर दी-)

१. [2]ध्यानं तु परमानन्दः, परमसौख्यकारणम्।
दुःखमुक्तिर्भवेत् ध्यानं, तस्मात् ध्यानं समाचरेत्।।

ध्यान परम आनन्द देने वाला है, परम सुख का कारण है। ध्यान व्यक्ति को दुःख-मुक्त करता है, इसलिए ध्यान का आचरण करना चाहिए।

(वि. सं. २०६०, (सन् २००३), सूरत चतुर्मास (गुजरात)

२७. स किं करिष्यति?

(एक बार मैं (साध्वी विश्रुतविभा) आचार्यवर की एक डायरी देख रही थी। उसमें एक श्लोक था। मैंने उसे पढ़कर सुनाया-)

(नाधीतश्चरको येन, सुश्रुतं नैव सुश्रुतम्।
वाग्भटे वाग्भटो नास्ति, स वैद्यो यमकिङ्करः।।)

जिसने 'चरक सूत्र' को नहीं पढ़ा और न ही 'सुश्रुत-संहिता' को सुना, वह वाग्भट होने पर भी वाग्भट नहीं है, वह वैद्य यम का दूत होता है।

(श्लोक को सुनते ही आचार्यवर के अन्तःकरण में प्रेरणा स्फुरित हुई। चिन्तन की धारा आयुर्वेद से हटकर साधु पर केन्द्रित हो गई। उस श्लोक का अनुसरण करते हुए तत्काल एक नया श्लोक बना दिया-)

१. [3]आचारो येन नाधीतः, दशवैकालिकं तथा।
सार्थो नावश्यकोऽधीतः, स मुनिः किं करिष्यति?।।

१-३. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसन आचारांग और दशवैकालिक को नहीं पढ़ा, आवश्यक (प्रतिक्रमण) को अर्थ सहित नहीं जाना, वह मुनि क्या करेगा?

(वि. सं. २०६०, (सन् २००३), सूरत चतुर्मास)

२८. श्रमनिष्ठा

(युवाचार्य महाश्रमण नाल से विहार कर पूज्यवर आचार्य महाप्रज्ञ की सेवा में बीकानेर पहुंचे। आचार्यवर ने उनकी श्रमनिष्ठा का उल्लेख करते हुए आशुकविता में कहा-)

१. [1]का स्यात् प्रतीक्षा श्रमजीवितानाम्,
का स्यात् प्रतीक्षा शमजीवितानाम्।
का स्यात् निरीक्षा पथगामिनां च,
श्रमः शमो यत् सहगामिनौ स्तः।।

श्रम का जीवन जीने वाले व्यक्तियों की क्या प्रतीक्षा की जाए? उपशम का जीवन जीने वाले व्यक्तियों की क्या प्रतीक्षा की जाए? पथ का अनुसरण करने वालों का क्या निरीक्षण किया जाए? क्योंकि श्रम और शम सहगामी होते हैं।

(वि. सं. २०६३, माघ शुक्ला १२ (३० जनवरी, २००७), बीकानेर)

२९. कः श्रेष्ठः?

(आचार्यवर सेमड़ (मेवाड़) में विराज रहे थे। मध्याह्न में आचार्यश्री ने एक श्लोक के दो चरणों की व्याख्या की। मैंने (साध्वी विश्रुतविभा ने) प्रार्थना की- आचार्यवर! इस श्लोक के अग्रिम दो चरणों की भी पूर्त्ति कराएं। आचार्यवर ने तत्काल दो चरणों की रचना कर श्लोक की पूर्त्ति कर दी-)

१. [2]स एव भिषजां श्रेष्ठः, रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्।
स एव यमिनां श्रेष्ठो, मानसं यो विशोधयेत्।।

वही वैद्य वैद्यों में श्रेष्ठ होता है जो रोगी को रोगों से मुक्त करे। वही साधु साधुओं में श्रेष्ठ होता है जो मन का विशोधन करे।

(वि. सं. २०६४, प्रथम ज्येष्ठ कृष्णा ८ (१० मई, २००७), सेमड़, मेवाड़)

३०. कः श्रेष्ठो लेखकः?

(उदयपुर चातुर्मासिक प्रवास। प्रातराश के बाद मैंने (साध्वी विश्रुतविभा ने) आचार्यवर के समक्ष एक प्रश्न उपस्थित करते हुए पूछा-गुरुदेव! अच्छा लेखक कौन होता है?

१. इन्द्रवज्रा। २. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे प्रश्न के उत्तर में आचार्यवर ने दो संस्कृत-श्लोकों का निर्माण कर दिया।)

१. [1]सूक्ष्मं रहस्यं प्रकृतेः प्रवेत्ति, भावं स्वभावं परिवर्तमानम्।
शब्दार्थमैत्रीं प्रकरोति कामं, स लेखकः पाठकमानसस्य।।

जो प्रकृति के सूक्ष्म रहस्य को जानता है, जो मनुष्य के बदलते हुए भाव (संवेग) और स्वभाव का अध्ययन करता है, जो शब्द और अर्थ में मैत्री स्थापित करता है वह लेखक पढ़ने वालों के मन को अच्छा लगता है।

२. यथार्थवादे प्रवणा मनीषा, सूते समाधानमतिं प्रकृष्टाम्।
प्रत्नां नवां नैति विवादभूमिं, स लेखकः पाठकमानसस्य।।

यथार्थवाद में जिसकी प्रवण मनीषा है, जो प्रकृष्ट समाधान बुद्धि को उत्पन्न करता है, जो नए पुराने के विवाद के अखाड़े में नहीं जाता वह लेखक पढ़ने वालों के मन को अच्छा लगता है।

(वि. सं. २०६४ (सन् २००७), उदयपुर चतुर्मास, भुवाणा)

३१. तपोनिष्ठा गरीयसी

(युवाचार्य महाश्रमण मिलाप भवन, जयपुर से विहार कर अणुविभा पहुंचे। उस समय उनका सारा शरीर पसीने से आर्द्र था। उनकी महान् तपस्या को गुंफित करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने आशुकवित्व में कहा-)

१. [2]परिस्वेदेन निष्णातः, युवाचार्यः समागतः।
तपसा लभ्यते सर्वं, तपोनिष्ठा गरीयसी।।

पसीने से नहाए हुए युवाचार्य महाश्रमण आ गए हैं। तपस्या से सब कुछ प्राप्त होता है। महान् होती है-तप की निष्ठा।

(वि. सं. २०६५, कार्तिक कृष्णा ४ (१८ अक्टूबर, २००८), जयपुर, अणुविभा)

३२. सा धन्या

(जयपुर चातुर्मासिक प्रवास में एक दिन मैं (साध्वी विश्रुतविभा) आचार्यप्रवर की उपासना कर रही थी। अकस्मात् आचार्यवर ने मुझे पूछा-तुम लगभग सत्ताइस वर्षों से मेरे सन्निकट रही हो। इससे तुम्हें क्या लाभ हुआ?

मैंने निवेदन किया-गुरुदेव! आपके आभावलय में रहने से मेरा उत्तरोत्तर विकास हो रहा है। ज्ञान और साधना-इन दोनों क्षेत्रों में मैंने विकास किया है। इनके

---

१. उपजाति। २. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतिरिक्त सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि मैंने जीवन जीने का गुर सीखा है, शुभयोग में रहना सीखा है। इससे मेरी वैचारिक पवित्रता बढ़ रही है।

मेरी बात सुनते ही आचार्यवर ने तत्काल एक संस्कृत श्लोक की रचना कर कहा–)

१. [1]चिन्तनं व्यवहारश्च समीचीनावुभावपि।
विद्येते सा स्वयं धन्या स्मितपूर्वा च विश्रुता।।

जीवन के दो पक्ष हैं–चिन्तन और व्यवहार। दोनों का सम्यक् होना अपेक्षित है। मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभा, जो पहले समणश्रेणी में 'स्मितप्रज्ञा' के नाम से समणी थी में सम्यक् चिन्तन और सम्यक् व्यवहार–दोनों विद्यमान हैं। इसलिए वह अपने आपमें धन्य है।

(वि. सं. २०६५ (सन् २००८), जयपुर चतुर्मास, अणुविभा)

३३. मनःप्रसत्तिः

(सन् २००९, बीदासर में आचार्यवर का प्रवास। अकस्मात् पूज्यप्रवर ज्वरग्रस्त हो गए। अनेक साध्वियों के साथ साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा आचार्यवर की सुखपृच्छा करने पहुंची। वार्तालाप के दौरान सहज ही आशुकवित्व के रूप में एक श्लोक आचार्यवर के मुखारविन्द से स्फुरित हुआ–)

१. [2]वयोनुरूपं समयानुरूपं स्वास्थ्यं च सम्यक् वरिवर्ति मोदे।
मनःप्रसत्तिः यदि साधुरूपा, स्वास्थ्यस्य प्रश्नोऽपि समाधिमेति॥

वय के अनुरूप और समय के अनुरूप स्वास्थ्य अच्छा है, मन प्रमुदित है।

यदि मन की प्रसन्नता अच्छी है तो स्वास्थ्य का प्रश्न सहज समाहित हो जाता है।

(वि. सं. २०६५, फाल्गुन कृष्णा (फरवरी, २००९), बीदासर)

३४. तुलसीप्रसादः

(अपने गुरु आचार्य तुलसी के प्रति आशुकवित्व–)

१. [3]कः कल्पवृक्षः तुलसी ममात्मा,
का कामधेनुः तुलसी ममात्मा।
चिन्तामणिः कः तुलसी ममात्मा,
मोदे प्रकामं तुलसीप्रसादात्॥

१. अनुष्टुप्। ३. इन्द्रवज्रा।
२. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुलसी मेरी आत्मा है, फिर मुझे कल्पवृक्ष से क्या?
तुलसी मेरी आत्मा है, फिर मुझे कामधेनु से क्या?
तुलसी मेरी आत्मा है, फिर मुझे चिन्तामणि से क्या?
मैं तुलसी के प्रसाद से सदा प्रमोद का, प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं।

(वि. सं. २०६६, आसोज शुक्ला दूज, (२० सितम्बर, २००९), जैन विश्वभारती, लाडनूं)

३५. अर्थसम्पदा

(आचार्यप्रवर श्रीडूंगरगढ़ में मर्यादोत्सव हेतु प्रवासित थे। एक दिन युवाचार्य महाश्रमण आचार्यप्रवर को वन्दना करने आए। आचार्यवर ने उनको स्वनिर्मित श्लोक सुनाया–)

(¹आचारो येन नाधीतः, दशवैकालिकं तथा।
सार्थो नावश्यकोऽधीतः, स मुनिः किं करिष्यति?।।)

जिसने आचारांग और दशवैकालिक को नहीं पढ़ा, आवश्यक (प्रतिक्रमण) को अर्थ सहित नहीं जाना, वह मुनि क्या करेगा?

(श्लोक को सुनकर युवाचार्य महाश्रमण ने निवेदन किया–गुरुदेव! यदि 'उत्तराध्ययन' को लेकर ऐसा श्लोक और बना दे तो शैक्ष मुनियों को एक नया दिशा-दर्शन मिल सकता है। आचार्यप्रवर ने तत्काल सद्यःरचित इसी का संवादी श्लोक फरमाया –)

१. ²उत्तराध्ययने यस्य नावगाहोऽर्थसम्पदा।
बहुश्रुतं न जानाति, स मुनिः किं करिष्यति?।।

जिस मुनि ने उत्तराध्ययन का अर्थसम्पदा के साथ अध्ययन नहीं किया और जो बहुश्रुत के तात्पर्य को नहीं जानता, वह मुनि क्या करेगा?

(वि. सं. २०६६, फाल्गुन मास (फरवरी, २०१०), श्रीडूंगरगढ़)

□□□

१-२. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षष्ठः उच्छ्वासः

यात्रावृत्तम्

(वि. सं. १९९४ से २००५ की अवधि में आचार्य तुलसी का अधिकतर प्रवास थली (तत्कालीन बीकानेर राज्य) में हुआ। वि. सं. २००५ के माघ मास से यात्रा का प्रारंभ हुआ। पहली यात्रा जयपुर की हुई। यह कहना उचित होगा कि अग्रिम लम्बी यात्रा की पृष्ठभूमि जयपुर यात्रा बनी। प्रस्तुत उच्छ्वास में यात्रा की व्यवस्था और यात्रा में होने वाली स्थितियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत है।)

१. जयपुर-यात्रा

१. [1]माघे मासे मुनिगणपते राजलद्देसरेऽभूद्
भव्यो वासो वसति मुदितो मूर्तिमान् यत्र धर्मः।
मर्यादाया महसि[2] महति प्राप्तनिर्देशविज्ञाः,
सन्तः सत्यः परिहृतमनोभावभङ्गा व्यहार्षुः॥

वि. सं. २००५ माघ महीने में आचार्यश्री तुलसी का राजलदेसर में भव्य प्रवास हुआ। उस समय ऐसा लग रहा था कि मानो वहां धर्म मुदित होकर मूर्तिमान् हो रहा है। मर्यादा-महोत्सव में निर्देश प्राप्त कर विज्ञ साधु-साध्वियां अपने-अपने मनोभावों को गुरुचरणों में समर्पित कर (गुरु के निर्देशानुसार) अपनी-अपनी दिशाओं में विहार कर गए।

२. मन्त्री मग्नो गुरुमनुचरन् सर्वदा जीवनर्द्धि-
र्देहश्चित्तं पवनमिव वा वारिवाहो[3]ऽनुकूलम्।
नूनं कीदृग् गुरुचरणयोर्दूरतोऽवस्थितिः स्या-
द्दोलां[4] मुञ्चन् गतिमिव शिशुः पूर्वमेवान्वभूत्ताम्॥

जैसे देह चित्त का और बादल अनुकूल पवन का अनुसरण करता है, वैसे ही

१.मन्दाक्रान्ता।
२.महः-उत्सव।
३.वारिवाहः-बादल।
४.दोला-झूला।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन-संपदा से सम्पन्न मंत्री मुनि मगनलालजी सदा गुरु के सान्निध्य में रहते थे। गुरु-चरणों से दूर रहने की अवस्थिति कैसी होती है, इसका मंत्री मुनि ने पहली बार ही अनुभव किया था, जैसे कि बच्चा पालने को छोड़कर पहली बार गति का अनुभव करता है।

३. दृष्टिं पश्यन् सविधवसतिः[१] किं स्मयः[२] पूजयेत्तां,
चित्रं तस्या रचयति तथाऽभ्यर्चनं दूरवर्ती।
इत्याशंसां मनसि निदधच्चम्पकोऽपि व्यहार्षीत्,
किन्त्वादेशे नयनपथगे तत्कथं भावि सिद्धम्॥

गुरु के सान्निध्य में रहने वाला यदि गुरु की दृष्टि की आराधना करता है तो इसमें आश्चर्य ही क्या? आश्चर्य तो यह है कि जो दूर रहकर गुरुदृष्टि की आराधना करता है। इस आशंसा को मन में धारण कर 'चंपकमुनि' (तुलसी के ज्येष्ठ भ्राता) वहां (राजलदेसर) से अन्यत्र विहार कर गए, किन्तु गुरु का आदेश प्रतिपल उनकी आंखों के सामने था तब उनका यह मनोरथ (दूर रहकर गुरु की दृष्टि की आराधना करूंगा) कैसे सिद्ध होगा?

४. क्रूरे मार्गे गतिमति युगे यंत्रपादैरुदग्भि[३]-
र्नम्रा वृत्तिर्मृदुलचरणा पृष्ठगा तत्र जाता।
सेवासक्ता यमिनि नियतं यायिनि प्रेममार्गे,
वन्दारुत्वे[४] विहरणगतेर्दर्शनं जातमस्याः॥

इस गतिशील युग में उबड़-खाबड़ मार्ग पर आधुनिक यान्त्रिक वाहन अपने चरणों से उच्छलते हुए चल रहे थे। किन्तु नम्र वृत्ति के चरण मृदुल होते हैं, इसलिए वह (वृत्ति) उस मार्ग पर नहीं चल सकी-पीछे रह गई। वह निश्चित रूप से प्रेम मार्ग पर चलने वाले साधुओं की सेवा में अनुरक्त हो गई। इसका प्रत्यक्ष दर्शन साधुवर्ग के विहार गति के समय की जाने वाली वन्दना के क्षणों में हो रहा था।

५. शीते शान्तिर्मिलति सुतरां तत्र लोकोऽविवेकी,
दास्यं मृत्तां प्रकृतिजडतामूहते सानुभावम्।
किञ्चिद् ग्रीष्मं समजनि मनो रोदसी[५] प्रापदौष्ण्यम्,
कोपोऽसह्यो भवति महतां यन्मुधारोपजन्यः॥

---

१. सविधवसतिः-निकट रहने वाला।
२. स्मयः-आश्चर्य।
३. उदक्-ऊपर उठना।
४. वन्दारुत्वम्-अभिवादन/प्रशंसा।
५. रोदसी-आकाश और भूमि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शीतलता से सदा शान्ति मिलती है। किन्तु लोग अविवेकी हैं। वे शीतलता पर दासभाव, मिट्टी होने और प्रकृति से जड़ होने का आरोप लगाते हैं। जब शीतकाल का मन इस आरोप से तप्त हुआ तो आकाश और भूमि दोनों तप उठे। यह सच है कि महान् व्यक्तियों का व्यर्थ के आरोप से उत्पन्न कोप असह्य होता है।

६ साङ्गोपाङ्गं नभसि विटपी भूरिशाखां वितन्वन्,
भूम्यां मूलं द्रढयितुमलं किं न वा पादचारी।
आचार्योऽपि प्रथितमहिमा शिष्यवर्गं वितत्य,
दूरं दूरं स्वयमुपसृतः पुर्वरे सारदारे॥

वृक्ष अपने अंग-उपांग रूप प्रचुर शाखाओं को आकाश में फैलाकर अपने मूल को भूमि में मजबूत करने के लिए क्या पादचारी नहीं होता? अर्थात् अपनी जड़ों को भूमि में नहीं फैलाता? उसी प्रकार विस्तृत महिमा से संपन्न आचार्य तुलसी भी सारे भारत में दूर दूर तक अपने शिष्यों को फैलाकर स्वयं विहरण करते हुए सरदारशहर पधारे।

७ पौरे लोके विकचहृदये स्वागतार्थं समेते,
पादे भालं दधति सुमुनेर्धूसरे मार्गधूल्या।
त्यागो भोगं जयति सततं सूक्तिरेषा पुराणा,
सार्थाऽमुष्मिन्नपि कलियुगे केन नेति प्रतीतम्॥

आचार्यप्रवर के पदार्पण से सरदारशहरवासी लोगों का हृदय प्रफुल्लित हो गया। वे सब स्वागत करने के लिए एकत्रित हुए और मार्ग की धूली से सने हुए आचार्यश्री के चरणों में अपना मस्तक रखने लगे। 'त्याग की भोग पर सदा विजय होती है'–यह सूक्ति पुरानी है। इस कलियुग में भी उसकी सत्यता का अनुभव किसने नहीं किया?

८. भूतज्ञानं[1] नयनविकलं यद् यदाविष्करोति,
तत्तद् यूयं युगलनयनाः किं प्रयुङ्ग्ध्वं[2] मनुष्याः!
अस्त्रं नाणोः किमपि भविता शान्तिरक्षाधिकारि,
सत्यं शान्तिं स्पृहयत[3] तदाणुव्रतान्याश्रयध्वम्॥

मनुष्यो! भौतिक-विज्ञान नेत्रहीन है। वह जो-जो आविष्कार करता है, उन सबका तुम दो आंख वाले होते हुए भी क्यों प्रयोग कर रहे हो? अणु-शस्त्र कभी शांति और रक्षा करने वाला नहीं होगा। यदि तुम सत्य और शांति की स्पृहा करते हो तो अणुव्रतों को अपनाओ।

१. भूतज्ञानम्–भौतिक विज्ञान।
२. प्रयुङ्ग्ध्वम्–(प्रपूर्वक युजंन्‌र्–योगे)–प्रयोग करना।
३. स्पृहयत (स्पृहण्–ईप्सायाम्)–स्पृहा करना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९. भव्यालोके विपुलमृदुले तापिते चारुणेन,
पुण्ये मार्गे शम इव सतां मानसे सत्सहिष्णौ।
कामं गच्छन् सगणमुनिपः प्राप्तवान् रत्नदुर्गं[१],
लक्ष्ये दृष्टिं क्षिपति पुरुषे दुर्लभा नार्थसिद्धिः॥

सूर्य द्वारा तप्त, भव्य आलोक वाले और अत्यन्त मृदु पुण्य मार्ग पर निरन्तर चलते हुए आचार्य तुलसी का अपने संघ के साथ रतनगढ़ में वैसे ही अवतरण हुआ जैसे कि सज्जन व्यक्तियों के सुन्दर और सहिष्णु मानस में शान्ति का अवतरण होता है। जिस व्यक्ति की दृष्टि लक्ष्य पर होती है, उसके लिए लक्ष्य-प्राप्ति दुर्लभ नहीं होती।

१०. निःसन्तानः प्रथित[२]धनिकश्चिन्तया चान्तचेताः,
धान्याभावे विकलकृषिको दग्धचेतःक्रियश्च।
नैवाद्राष्टां[३] वियति[४] निकरं केवलं सद्घनानां,
स्याद् वा नो वा सघनजडतापीति पर्यैक्षिषाताम्[५]॥

निःसन्तान, ख्यातिप्राप्त धनिक चिन्तातुर होकर आकाश को देखता है। धान्य के अभाव में व्याकुल किसान का हृदय जल उठता है और वह भी निष्क्रिय होकर आकाश को निहारता है। दोनों ने आकाश में केवल मेघ-समूहों को ही नहीं देखा, किन्तु वे बरसते हैं या नहीं–एतद्विषयक उनकी जड़ता को भी देखा। कहीं मेघ अनावश्यक बरस जाते हैं और कहीं आवश्यक होने पर भी नहीं बरसते।

११. प्रायो ग्रीष्मप्रकृतिरुचितं लङ्घते सावलेप
उष्णस्तापं प्रचुरमतनोच्चैत्रमासे तथापि।
लोकैर्नूनं नवकिसलयैः पुष्पकालः[६] प्रतीतो
लोप्तुं शक्या न खलु सहजा दुर्जनैः सज्जनाभा॥

अभिमानी गर्म प्रकृति के लोग प्रायः औचित्य का उल्लंघन कर देते हैं। ग्रीष्म चैत्रमास में भी भयंकर ताप देने लगा, फिर भी लोगों ने नए किसलयों के कारण उस समय को वसन्त ही माना। सच है कि दुर्जन व्यक्ति सज्जन पुरुषों की सहज आभा को लुप्त नहीं कर सकते।

---

१. रत्नदुर्गः –रतनगढ़।
२. प्रथितः–विख्यात।
३. अद्राष्टाम् (दृशृं–प्रेक्षणे, द्यादि के प्रथम पुरुष का द्विवचन)–देखना।
४. वियत्–आकाश।
५. पर्यैक्षिषाताम् (परिपूर्वक ईक्षङ्–दर्शने, द्यादि के प्रथम पुरुष का द्विवचन)–देखना।
६. पुष्पकालः–वसन्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१२. रे! रे! वह्निं शमयसि सता[1] तेजसेयान्[2] विरोधः,
शैत्यं वारां[3] हृतमिति रुषा ही निदाघेन कोपात्।
तेनाप्यम्भः प्रकृतिरथ किं व्यत्ययं तत्र याता,
दोषान्न स्यात् क्वचन विरतिर्यद् विना भावशुद्ध्या॥

रे जल! तुम आग को बुझा देते हो। उस श्रेष्ठ तेज के साथ तुम्हारा इतना विरोध क्यों? मैं समझ गया, क्रुद्ध ग्रीष्म ऋतु ने क्रुद्ध होकर तुम्हारी (पानी की) शीतलता का हरण कर लिया, तुम्हें गर्म कर दिया। पर इससे तुम्हें क्या? क्या इससे तुम्हारी प्रकृति बदल गई? नहीं बदली। अब भी तुम आग के लिए पानी ही हो। भावना की शुद्धि के बिना दोषों से कहीं विरति नहीं हो सकती।

१३. चूरूपूर्यां गमनमभवत् साधयत् साधुभावान्,
स्थित्यां नास्ते गतिरिह गतावेव सा लब्धरूपा।
मन्ये भाग्यं न गतिविकला यत् स्थितिश्चान्यथा तु,
प्रत्ना नूत्ना अपि च जरिणो[4] नार्भकाः[5] स्युः कदाचित्॥

श्रेष्ठ भावों की साधना करते हुए आचार्यश्री का आगमन चूरू नगर में हुआ। स्थिति में गति नहीं होती, किन्तु गति में ही वह स्थिति लब्ध रूप है। इसे मैं सौभाग्य मानता हूं कि स्थिति गति से विकल नहीं होती, अन्यथा पुराने कभी नए नहीं होते और बालक कभी बूढ़े नहीं होते।

१४. केचिद् ग्रामाश्चरणविषयाः पार्श्वगा अप्यजाताः[6],
किं पार्श्वस्थो भवति विषयो नेत्रयोः पक्ष्मदेशः।
साक्षाद् दृष्टस्तदिह मुकुरे नूनमानन्ददायी,
तत्राप्यासीद् विहरणमलं किन्न तद्रूपकल्प्यम्॥

कई गांव अत्यन्त पास में थे, फिर भी आचार्यप्रवर का वहां पदार्पण नहीं हुआ। क्या आंख के निकटवाला पक्ष्म का भाग कभी आंख का विषय बना है? किन्तु जब वह दर्पण में साक्षात् दृष्ट होता है, तब अवश्य ही आनन्ददायी होता है। दर्पण में पक्ष्मदेश को देखने की भांति उन गांवों में भी विचरण क्यों नहीं हुआ—यह प्रश्न बना ही रहा।

---

१. सत्—श्रेष्ठ।
२. तेजसेयान् (तेजसा+इयान्)—प्रकाश, इतना।
३. वाः—जल।
४. जरी—बूढ़ा।
५. अर्भकः—बालक।
६. अजातः (न जातः)—नहीं होना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१५. नाना ग्रामैर्विविधरुचिगैर्मानवैर्मानरम्यै-
र्नाना मार्गैर्बहुविधमृदां स्पर्शनैर्नैकवातैः।
नाना नीरैर्नवनवगृहैर्नैकचिन्ताप्रवाहैः,
सात्म्यं लब्ध्वा श्रमणपतिभिर्योगिवृत्त्या व्यहारि॥

विभिन्न ग्राम, विचित्र रुचि और श्रेष्ठ मान वाले मनुष्य, विभिन्न मार्ग, नाना प्रकार की मिट्टी का स्पर्श, विविध प्रकार की हवाएं और पानी, नए-नए घर और भिन्न-भिन्न विचार-इन सबके साथ एकात्मकता करते हुए आचार्यश्री योगी की वृत्ति से विहार करने लगे।

१६. [1]जयपुरे जयघोष उदच्छलद्
विजयमागमिनं ध्वनितुं ध्रुवम्।
सपदि तेन च शून्यमपूर्यत,
भवति तद्विलये ह्युदयश्चिदाम्॥

आचार्यश्री जयपुर पधारे। आगन्तुक अतिथि की विजय को शब्दायित करने के लिए जयघोष होने लगा। सहसा सारा आकाश उस जयघोष से पूरित हो गया। उसके विलीन होने पर चैतन्य का उदय होता है।

१७. [2]ये प्रार्थनायां प्रचुराश्रुवाहाः,
सम्प्रत्यहो ते प्रमुद[3]श्रुवाहाः।
हर्षे विषादेऽपि समा प्रवृत्तिः,
द्रष्टुर्महच्चित्रमथानने न॥

आचार्यश्री के पदार्पण की प्रार्थना के समय लोगों की आंखों में जो अश्रुप्रवाह थे, वे अब हर्षातिरेक के प्रवाह में बदल गए। आचार्यप्रवर हर्ष और विषाद में समान प्रवृत्ति वाले हैं, किन्तु दर्शक व्यक्तियों के चेहरे पर वह वृत्ति नहीं थी, यह महान् आश्चर्य है।

१८. [4]आद्यो वासोऽजनि मुनिपतेर्ठोलियावासमध्ये,
तस्मिन्नेको मुनिपसविधं साम्यवादी समेतः।
धर्मव्याख्या सुमतिसुलभा पूज्यपादैरदायि,
सोऽवक् कोऽस्मिन् भवति विमति[5]र्लोककल्याणहेतौ॥

१. द्रुतविलम्बितम्।
२. इन्द्रवज्रा।
३. प्रमुद्-अत्यंत हर्ष।
४. मन्दाक्रान्ता।
५. विमतिः-विपरीत बुद्धिवाला, विमुख।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयपुर में आचार्यप्रवर का पहला प्रवास 'ठोलिया' भवन में हुआ। उस दिन आचार्यश्री के पास एक साम्यवादी व्यक्ति आया। पूज्यपाद ने धर्म की बुद्धिगम्य व्याख्या प्रस्तुत की, उसे सुनकर उसने कहा—इस लोक कल्याणकारी धर्म से कौन व्यक्ति विमुख हो सकता है?

१९. [१]सत्तात्मकेन द्रविणा[२]त्मकेन,
धर्मेण दध्मो नितरां विरोधम्।
हिंसाप्रतीकारकृतेऽपि हिंसा,
ग्राह्या न वा श्वापदवृत्तयः स्मः॥

२०. [३]स्याद् हिंसया हिंसकजीवनाश-
दमौ न हिंसाप्रतिकार एवम्।
अहिंसया जीवनमेत्यहिंसा,
व्याहारि सारं मुनिनायकेन॥

आचार्यश्री ने धर्म का सार प्रस्तुत करते हुए कहा—'सत्तात्मक और अर्थात्मक धर्म के साथ हमारा अत्यन्त विरोध है। हमारा सिद्धांत है कि हिंसा का प्रतिकार करने के लिए भी हिंसा ग्राह्य नहीं होनी चाहिए? यदि वह ग्राह्य होती है तो हम हिंस्र पशुवृत्ति वाले हो जाते हैं। हिंसा से हिंसक जीव का नाश और दमन हो सकता है, किन्तु उसका प्रतिकार नहीं होता। अहिंसा से अहिंसा को प्राण मिलता है।

२१. [४]उच्चैरुच्चैः सघनजलदा आवृतानन्तलीलाः,
प्रादुर्भूताः पदि पदि जनैः सत्कृता भूरिनीराः।
भाराक्रान्ता विहितनतयो वातसंकेतितायां,
विद्युद्दीप्रा दिशि गतिमिता गर्जिनृत्यन्मयूराः॥

आकाश में बहुत ऊंचे, प्रचुर मात्रा में पानी से भरे सघन मेघ उमड़ आए। उन्होंने आकाश को ढंक दिया। स्थान-स्थान पर लोगों ने उनका सत्कार किया। पानी से भारी होने के कारण वे नीचे झुके और वायु के द्वारा संकेतित दिशा में गति करने लगे। वे विद्युद् से प्रभास्वर थे और उनके गर्जन को सुनकर मयूर नाच रहे थे।

२२. वर्षारम्भः शमरसमयः पूज्यवाण्या प्रसूतो
हर्षोल्लोलानकृत मनुजान् सर्वसंतापहारी।
मेघाभावे कृतदृढपदा अन्तरुच्छ्वासवाष्पा,
प्रश्नीभूय न्यधिषततमां बाह्यरूपं समन्तात्॥

१. इन्द्रवज्रा।
२. द्रविणम्—धन, अर्थ।
३. उपजाति।
४. मन्दाक्रान्ता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूज्यप्रवर की वाणी से शान्त रसमय वर्षा का आरंभ प्रसूत हुआ। वह वर्षा का आरम्भ सभी संतापों का हरण करने वाला था। उसने मनुष्यों को हर्षोत्फुल्ल बना दिया। उनके आन्तरिक उच्छ्वास का वाष्प मेघ के अभाव में काफी दृढ़ हो चुका था। उसको उन्होंने प्रश्नों का बाह्यरूप देकर प्रस्तुत किया।

२३. [1]महाविद्यागारे प्रवचनमभूत् सार्वजनिकं,
घनारब्धा स्पर्धा सघनजलधाराभिरुदिता।
नृणां गत्यावेगस्तमपि समबाधिष्ट सुतरां,
यतः स्पर्धा स्पर्धां जनयति निजोद्भूतिनियमात्॥

एक दिन संस्कृत महाविद्यालय में सार्वजनिक प्रवचन रखा गया था। इधर बादलों ने सघन जलधाराओं से स्पर्धा प्रारम्भ की। किन्तु आचार्य तुलसी का प्रवचन सुनने के इच्छुक मनुष्यों की गति की जल्दबाजी उस मेघ की जलधाराओं को भी बाधित करने लगी। क्योंकि स्पर्धा स्पर्धा को जन्म देती है, यह उसी के उद्भव का आन्तरिक नियम है।

(वि. सं. २००६, पौष मास (दिसम्बर, १९४९) भगवतगढ़)

२. रणथम्भोर-यात्रा

(रणथम्भोर प्रसिद्ध क्षेत्र है। वर्तमान में उसे अभयारण्य का रूप दिया गया है। हमने प्राचीन गढ़ को देखा, रातभर उसमें रहे। वह यात्रा आज भी हमारे लिए स्मरणीय है। उस यात्रावृत्त को कुछ पद्यों में आबद्ध किया गया है।)

१ [2]वर्षाकालं युगलमवसद् यत्र भिक्षुर्मुनीश-
स्तन्मार्गोऽयं नयनविषयो नाप्यभूदुत्तरार्यैः।
एतद् युक्तं किमिति सुपथां प्रार्थनां धारयित्वा,
संघेनामा[3] रणदभंवरे पूज्यपादा अगच्छन्॥

तेरापंथ के प्रथम आचार्य भिक्षु ने जहां दो चातुर्मास बिताए थे, वहां उत्तरवर्ती आचार्यों ने उसका रास्ता ही नहीं देखा। वहां पहुंचाने वाले विभिन्न मार्गों ने कहा-'क्या यह उचित है?' उनकी प्रार्थना को हृदय में धारण कर पूज्यपाद आचार्यश्री तुलसी अपने संघ के साथ 'रणदभंवर' पधारे।

२. [4]योगो जातो यामयुग्मं नगेन,
प्रत्येकं स्यान्मूल्यवान् यत्क्षणोऽपि।
नो बुद्ध्यन्ते तद्गतामर्घतां ये,
ते तेनापि त्यज्यमानास्तदैव॥

---

१. शिखरिणी।
२. मन्दाक्रान्ता।
३. संघेनामा (संघेन+अमा)-संघ के साथ।
४. शालिनी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आचार्यश्री 'रणदभंवर' किले पर दो प्रहर तक ठहरे, क्योंकि प्रत्येक क्षण का अपना मूल्य होता है। जो लोग समय के मूल्य को नहीं समझते, वे उसके द्वारा उसी समय ठुकरा दिए जाते हैं।

३. [1]एका गीतिर्व्यरचि मुनिपैर्मन्दिरे पर्शुपाणे[2]:,
स्तोकैः शब्दैः सुकृतिसुलभं वर्णितं दुर्गवृत्तम्।
दूरस्थास्ते वयमिति कुतो दृश्यमानाः सुदृष्ट्या,
वात्सल्यं नो रचयति भिदां[3] दूरतः पार्श्वतो वा॥

आचार्यश्री ने वहां गणेश-मन्दिर में एक गीतिका रची। उसमें थोड़े शब्दों में दुर्ग का वृत्तान्त सुन्दर ढंग से वर्णित था। उस गीतिका-संगान के समय आचार्यवर को हमारी स्मृति हो आई, क्योंकि उस समय हम कुछ दूर (भगवतगढ़[4] में) थे, पूज्यप्रवर की कृपापूर्ण दृष्टि से हम देखे जा रहे थे। यह सच है कि कोई दूर हो या पास, वात्सल्य कभी भेद नहीं करता।

४. [5]दुर्गे नृणां नो सुकरः प्रवेशः,
चित्ते गुरोः शश्वदनाश्रवाणाम्[6]।
मार्गाः समन्तादुपलैरुपेताः,
क्रूरैर्विकल्पैरिव दुष्टसत्त्वाः॥

जिस प्रकार गुरु के चित्त में अविनीत शिष्यों का प्रवेश कभी सुकर नहीं होता, उसी प्रकार उस दुर्ग में मनुष्यों का प्रवेश सुकर नहीं था। जिस प्रकार दुष्ट प्राणियों का मन क्रूर विकल्पों से भरा रहता है, उसी प्रकार वहां के सभी मार्ग चारों ओर प्रस्तरखंडों से भरे हुए थे।

५. [7]भीत्येव यत्रोन्नतपर्वताना-
मन्तर्गतं राजति सर्वतोऽपि।
संरक्षकव्याजमुपेत्य मन्ये,
सेनाधिपोऽन्तःबल[8]संस्थितोऽस्ति॥

---

१. मन्दाक्रान्ता।
२. पर्शुपाणिः-गणेश।
३. भिदा-भेद, अन्तर।
४. आचार्यवर के निर्देशानुसार मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) के साथ कुछ परीक्षार्थी साधु-साध्वियां परीक्षा का कोर्स पूरा करने हेतु अध्ययनार्थ भगवतगढ में रहे थे।
५. इन्द्रवज्रा।
६. अनाश्रवः-अविनीत शिष्य, अनाज्ञाकारी।
७. इन्द्रवज्रा।
८. बलम्-सेना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह दुर्ग मानो भय के कारण चारों ओर घिरी उन्नत पर्वतमाला के बीच में स्थित था और वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो कोई सेनापति संरक्षक होने का बहाना लेकर अपनी सेना के बीच घिरा हुआ बैठा हो।

६. [1]कूर्दद्भिः कपिभिश्चिरं चलदला शाखानुशाखं प्रियं,
कल्लोलैः सरसीव[2] बुद्धिरथवा संकल्पजालैरिव।
मार्गञ्चोभयतो घना खगकुलैश्छन्ना तरूणां तति-
रागच्छत्पथिकैरिव प्रणयतो[3] वार्त्तापरेवानता[4]॥

जैसे ऊर्मियों से सरोवर और संकल्पजाल से बुद्धि प्रकंपित होती है, वैसे ही एक शाखा से दूसरी शाखा पर छलांग भरते हुए बन्दरों द्वारा चलायमान पत्तों वाली, मार्ग के दोनों ओर वृक्षों की सघन श्रेणी जो पक्षीसमूह से आच्छन्न थी, वह मानो आने वाले पथिकों के साथ में प्रेमपूर्ण वार्त्ता करने में तत्पर होकर झुक रही थी।

७. संस्प्रष्टुं सवितुः करा महिमलं संचेष्टमाना अपि,
निश्छिद्रैश्छदनैः प्रसह्य विमुखाः साध्वीं यथा कामिनः।
छिद्रान्वेषणतत्पराः क्वचिदहो! लब्धावकाशाः पुन-
श्छायाभंगमकार्षुरात्मपतनात्तस्या हि धिक्कामुकम्॥

सूर्य की किरणें वहां की भूमि का स्पर्श करने के लिए भी चेष्टा कर रही थीं, किन्तु सघन वृक्षों के पत्तों की निश्छिद्रता के कारण वे उसका स्पर्श करने से हठात् उसी प्रकार विमुख-वंचित हो रही थीं जिस प्रकार कामी पुरुष पतिव्रता स्त्री का स्पर्श करने से विमुख-वंचित होते हैं। आश्चर्य है कि कहीं-कहीं छिन्द्रान्वेषण में तत्पर किरणों ने भूमि-स्पर्श का अवकाश पाकर आत्मपतन से उसकी छाया (पक्ष में शोभा) को भंग कर दिया। धिक्कार है कामुक व्यक्ति को।

८. सालः[5] खण्डहरः पुराणविभुतासाक्ष्यं प्रसर्पन्निव,
लज्जाया अवधेः प्रतीक्षक इव स्वात्मानमारक्षति।
सिंहद्वार[6]गतैश्च राजपुरुषैः संरक्षिते वर्त्मनि,
शक्तो नैव पलायितुं तत इतो झम्पामपि प्राश्रयत्॥

वहां का परकोटा खंडहर था। वह मानो अपने प्राचीन ऐश्वर्य के साक्ष्य को

१. शार्दूलविक्रीडितम्।
२. सरसी-सरोवर।
३. प्रणयतः-प्रेम से।
४. वार्त्तापरेवानता (वार्त्तापरा+इव+आनता)-मानो वार्ता करने में तत्पर होकर झुकी हुई।
५. सालः-परकोटा।
६. सिंहद्वारम्-मुख्य दरवाजा, प्रवेश द्वार।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकट कर रहा था। लज्जा की अवधि की प्रतीक्षा करने वाले की भांति मानो वह अपने आपकी रक्षा कर रहा था। प्रवेश द्वार पर स्थित राजपुरुषों द्वारा संरक्षित मार्ग से वह पलायन नहीं कर सकता था, इसलिए उसने इधर-उधर से झंपापात करने का भी प्रयत्न किया (इस प्रयत्न में उसका कुछ भाग खंडहर हो गया)।

९. तन्मन्ये विजनस्थितैः शिखरिणामभ्रंलिहै[१]: सानुभिः[२],
कामं क्रूरमुखैरसंयतकचैर्वृक्षव्रज[३]व्याजतः।
लब्धुं नागरसभ्यतां बहुगुणामास्थापितो मूर्धनि,
प्राकारः कथमन्यथाऽत्र विषमे तद्भित्तयः संयुताः॥

मैं मानता हूं कि उस निर्जन प्रदेश में स्थित पर्वतों के गगनचुम्बी और तीखी नोक वाले शिखर वृक्षसमूह के बहाने से इधर-उधर बिखरे केशों वाले होकर अनेक गुणों वाली नगरसभ्यता को प्राप्त करने के लिए अपने मस्तक पर प्राकार को धारण किए हुए थे, अन्यथा उस विषम पर्वत पर उसकी दीवारें संयुत कैसे होतीं?

१०. [४]आरोहतां तत्र पदो विचिन्वतां,
श्वासः पुरो धावितुमाशु लग्नः।
ते के यदुच्चैर्व्रजतां जनानां,
न नाम दौत्यं[५] रचयन्ति भक्त्या॥

आरोहण करने वालों के जब पैर आगे बढ़े, तब उनका श्वास इतना तेज हो गया कि वह आगे दौड़ने लगा। संसार में वे कौन हैं, जो ऊपर चढ़ने वालों की भक्ति से दूत का कार्य न करते हों?

११. कथं कुतः केन विचित्रमेतत्,
पदं सुरक्षोचितमन्वशोधि।
अवक्तुकामा अपि तत्र लोका
वाचालतां यान्ति तदीक्षणेन॥

मूक रहने वाले लोग भी वहां उस दुर्ग को देखकर यह कहने लग जाते हैं कि सुरक्षा का यह उचित और विचित्र स्थान कैसे, कहां से और किसने ढूंढ निकाला।

---

१. अभ्रंलिहम्-गगनचुम्बी।
२. सानुः-शिखर।
३. वृक्षव्रजः-वृक्षसमूह।
४. उपजाति।
५. दौत्यम्-दूत का कार्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१२. दुर्गं दिदृक्षा[1] त्वरयत्यजस्रं,
रुणद्धि पादान् सुरभिद्रुमालिः[2]।
एतद्विरोधोपशमेऽन्वगच्छन्,
निजानशक्तान् कवयोऽपि कामम्[3]॥

दुर्ग को देखने की इच्छा निरन्तर गति में त्वरा ला रही थी, किन्तु सुरभित वृक्षों की श्रेणी पैरों को रोक रही थी। इस परस्पर विरोध का उपशमन करने के लिए कवियों ने भी अपने आपको अत्यंत असमर्थ पाया।

१३. [4]धान्याऽभावे वसति न जनस्तत्कुतः क्षुत्समाधि-
रालोच्यैवं मनसि सुतरां यत्र लम्बोदरो[5]ऽपि।
संकोच्य स्वं वपुषि धरते केवलं वारणास्यं[6],
राहू राहोः शिर इति नयो द्वैतमापच्च तेन॥

धान्य का अभाव होने के कारण वहां कोई मनुष्य नहीं रहता। ऐसी स्थिति में भूख शांत कैसे हो—मन में निरन्तर ऐसा सोचकर गणेशजी भी अपने आपका संकोच कर, शरीर पर केवल हाथी का मुंह (सूंड) धारण करने लगे।[7]

तर्कशास्त्रीय न्याय के अनुसार राहु का सिर नहीं कहा जाता। राहु का केवल धड़ ही होता है, वह (सिर) राहु शब्द से गृहीत हो जाता है। किन्तु उस गणेशजी की मूर्ति का केवल शिर देखने के बाद यह लगा कि यह तर्कशास्त्रीय न्याय दोहरा हो गया है—एक राहु के लिए और एक गणेशजी के लिए।

१४. '[8]वप्रान्ते[9] शिखरी तनुं विभजते द्वेधा विशालोदरं,
मन्ये सुस्थिरचेतसोश्च सुहृदोर्दैवाद् द्विधाभून्मनः।
लोकैस्तत्परिखेति नाम कथितं रक्षैव सा साकृति-
र्नीरं नापरथा नु को हि मतिमाँल्लंकासमुद्रं स्मरेत्॥

उस दुर्ग के अन्त में, पर्वत ने अपने विशाल उदर वाले शरीर को दो भागों में विभक्त कर डाला था।[10] वह ऐसा लग रहा था कि मानो भाग्यवश सुस्थिर चित्तवाले दो

१. दिदृक्षा (द्रष्टुमिच्छा)—देखने की इच्छा।
२. द्रुमालिः—पादपपंक्ति।
३. कामम्—अत्यंत।
४. मन्दाक्रान्ता।
५. लम्बोदरः—गणेश।
६. वारणास्यम् (वारण+आस्यम्)—हाथी का मुख (सूंड)।
७. वहां पर्शुपाणि मन्दिर में गणेशजी की मूर्ति है। उसके केवल सूंड ही है, उदर नहीं।
८. शार्दूलविक्रीडितम्।
९. वप्रान्तः—दुर्गभित्ति का अंतिम छोर।
१०. वहां दो पर्वतों के बीच एक प्राकृतिक खाई थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मित्रों का मन टूटकर दो टूक हो गया हो। लोगों ने पर्वतों के बीच के उस स्थान को 'खाई' कहा है। वह स्वयं मूर्तिमती रक्षा के समान थी। वह अत्यन्त विशाल थी। उसमें पानी नहीं था। अन्यथा उसे देखकर कौन बुद्धिमान् मनुष्य लंका के समुद्र का स्मरण नहीं करता?

१५. [1]द्रुमा अहंपूर्विकयोन्नतास्या-
स्तत्पूरणायात्मनि चेष्टमानाः।
विक्रेतुरेषा क्षतिपूर्तिचेष्टा,
क्व सार्थका स्याद् व्यवहारशून्या॥

उन्नतमुख–उन्नतशाखा वाले वृक्ष 'मैं आगे' मैं आगे' इस स्पर्धा से आकाश में फैलते हुए अपने आप में उस खाई को पाटने का प्रयत्न कर रहे थे। किन्तु उनका वह प्रयत्न व्यवहारशून्य होने के कारण सार्थक नहीं हो सका। जैसे कोई वणिक् व्यवहार (व्यापार) को छोड़कर उस घाटे की पूर्ति करना चाहे तो उसकी वह व्यवहारशून्य प्रवृत्ति कहां सार्थक होती है?

१६. [2]एकं तद्दिवसं यदत्र रिपवो हम्मीररक्षास्थले,
द्वारां दर्शनलालसा अतिथयः प्रेताधिप[3]स्याऽभवन्।
एकं साम्प्रतिकं यदत्र गहनं हिंस्राकुलं भ्राजते,
दृष्टा केन न वक्रता हि समये रङ्गस्थले नृत्यता॥

एक दिन वह था जब यहां महाराणा हमीर के इस रक्षास्थल दुर्ग के द्वारों को देखने की लालसा वाले शत्रु यमराज के मेहमान बन जाते थे। एक दिन वर्तमान का है कि यहां यह दुर्ग हिंस्र पशुओं से व्याप्त होकर गहन बना हुआ है। यह सत्य है कि इस रंगभूमि पर नृत्य करने वाला कौन व्यक्ति समय आने पर वक्रता (परिवर्तन) का अनुभव नहीं करता?

१७. [4]स्थाने स्थाने शीर्णकायाः शतघ्न्यः[5],
स्फीतं मृत्योराननं संस्पृशन्त्यः।
नातिक्रान्तो मारकस्यापि मृत्यु-
रित्याख्यातुं व्याददानाः स्वमास्यम्॥

स्थान–स्थान पर उस दुर्ग में जीर्ण–शीर्ण तोपें मौत की तरह मुंह फाड़े दिखाई दे

१. उपजाति।
२. शार्दूलविक्रीडितम्।
३. प्रेताधिपः –यमराज।
४. शालिनी।
५. शतघ्नी–तोप।
'शतघ्नी च चतुस्ताला, लोहकण्टकसंचिता,
अयःकण्टकसंछन्ना, शतघ्नी महती शिला।'
–आप्टे, पृ. १०२९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रही थीं। उनका अपना फटा हुआ मुंह यह कह रहा था कि मारने वाले की भी मृत्यु अतिक्रान्त नहीं होती–उसकी भी मृत्यु अवश्यंभावी है।

१८. गुप्ता गंगा पुष्कराढ्या[1]स्तटाकाः,
स्मारं स्मारं प्राक्तनं वैभवं स्वम्।
कुं[2] सिंचन्ती वाष्पबिन्दुप्रवाहैः,
नो विश्रान्ता विद्युदुत्प्लावियन्त्रैः॥

वहां एक स्थान पर गुप्त गंगा थी। वहां के तालाब कमलों से समृद्ध थे। सरकार ने उस (गुप्त गंगा) को खाली करने के लिए विद्युत् के यन्त्र लगाए, फिर भी वह खाली नहीं हुई। कवि कल्पना करता है कि वह गंगा अपने पुराने वैभव को याद करती हुई अश्रुबिन्दुओं के प्रवाह से भूमि का सिंचन कर रही है, इसलिए उसका जल सूख नहीं रहा है।

१९. क्रूरैर्मेघैर्भूधराणां शरीरे,
वारां पातैरूर्जितानि[3] क्षतानि[4]।
वर्षान्तेऽपि न्यक्[5]क्षिपन्त्यम्बु तज्जं,
के के मुक्ता हा! प्रतीकारबुद्ध्या॥

क्रूर मेघों ने पानी गिरा कर पर्वतों के शरीर पर अनेक गहरे घाव कर डाले। वर्षा ऋतु का अन्त हो जाने पर भी पर्वत के वे रिसते हुए घाव निर्झर के बहाने उस पानी को नीचे फेंक रहे थे। आश्चर्य है कि इस संसार में ऐसे कौन से व्यक्ति हैं जो प्रतिकार की भावना से मुक्त हों?

२०. उच्चैरुच्चैः पर्वतैः पात्यमानं,
मार्गे मार्गे प्रस्तरैरुध्यमानम्।
स्थाने स्थाने सेतुभिर्बध्यमानं,
पादे पादे पांशुना श्लिष्यमाणम्॥

२१. पीनैर्मीनैः संततं क्षुभ्यमाणं,
पान्थैराशूच्छिष्यमाणं तथापि।
स्रोतस्तोयं काममस्ति प्रसन्नं,
न प्राणान्ते यद् विलक्षा[6] महान्तः॥

---

१. पुष्कराढ्यः –कमलों से समृद्ध।
२. कुः–पृथ्वी।
३. ऊर्जितम्–गहरा।
४. क्षतम्–घाव।
५. न्यक्–नीचे।
६. विलक्षः–उदास, व्याकुल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पानी का स्रोत ऊंचे-ऊंचे पर्वतों से नीचे गिराया जाता है, मार्ग-मार्ग पर उसे प्रस्तरों से रोका जाता है, स्थान-स्थान पर उसे बांधों से बांधा जाता है, पग-पग पर रेत से आश्लिष्ट किया जाता है, पुष्ट मत्स्यों द्वारा सदा क्षुब्ध किया जाता है और पथिकों द्वारा उच्छिष्ट किया जाता है, फिर भी वह पानी अत्यन्त स्वच्छ रहता है। यह सत्य है कि प्राणान्त हो जाने पर भी महान् पुरुष व्याकुल नहीं होते।

२२. [1]उच्चैरुच्चैरुपलशकला[2]न्याह्वयन्तेऽध्वनीनान्[3],
दृश्या दृश्या स्फुरितनयनैः खण्डिता राज्यलक्ष्मीः।
को वाऽखण्डः स्फुरति ममतामूर्च्छितो मानवोऽत्र,
नम्रः कम्रो[4] भवति भुवने यो नमेद् भज्यते न॥

वहां के प्रस्तरखण्ड उच्च स्वर से पथिकों को आह्वान कर रहे थे कि तुम खण्डित राज्यलक्ष्मी को विस्फारित नयनों से देखो। यहां ममता से मूर्च्छित कौन मानव अखण्ड रह सका है? जो नम्र होता है, वही इस लोक में कमनीय होता है। जो झुकना जानता है, वह टूटता नहीं है।

(वि. सं. २००६, पौष शुक्ला (जनवरी-फरवरी, १९५०)

□□□

---

१. मन्दाक्रान्ता।
२. शकलम् -खण्ड।
३. अध्वनीनः -पथिक।
४. कम्रः -कमनीय, मनोहर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सप्तमः उच्छ्वासः

कथालोकः

(मूल्यवान् वही होता है, जो जीवन्त होता है। कहानी का मूल्य इसलिए है कि वह जीवन्तता को अभिव्यक्त करती है। आदमी मर जाता है, पदार्थ नष्ट हो जाता है, पर कहानी का सत्य कभी नहीं मरता। नवयुवती की भांति उसका सौन्दर्य, नवयुवक की भांति उसकी गतिशीलता और नए युग की नयी चेतना की भांति उसकी प्रेरकता जगत् के कण-कण को आंदोलित करती रहती है। यहां दर्शन की भाषा को कहानी की भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।)

१. ममत्वम्

(**'ममत्तबंधं च महाभयं'**–ममत्व का बन्धन महान् भयंकर है। आगम के इस वाक्य का आशय प्रस्तुत कथा के माध्यम से समझा जा सकता है और यह भी समझा जा सकता है कि संसार का प्रवाह ममत्व के बिना नहीं चल सकता।)

१. [1]जैनाध्वनीन[2]तुलसीप्रभुणा हि साध्यं,
नित्यत्वमप्यथ तनोरपि वस्तुनो मे।
दीपो विमृश्य मनसीति प्रकाशरूपो
यं चाश्रितः सकलतत्त्वविबोधहेतुः।।

दीप ने सोचा–मैं छोटी वस्तु हूं, फिर भी जैन मार्ग के पथिक आचार्य तुलसी परमाणु रूप में मेरी नित्यता स्थापित कर रहे हैं। मन में यह विमर्श कर प्रकाशरूप दीपक, जो सकल तत्त्व का ज्ञान कराने में हेतुभूत है, उनकी शरण में आ गया।

२. [3]तत्पादपद्मेऽद्भुतताभ्युपेते,
लक्ष्म्या निवासास्पदवत्सुरम्ये।
प्रणम्य सद्यो नतकन्धरोऽहं,
पद्यैः कथां काञ्चिदथो लिखामि।।

१. वसन्ततिलका। ३. उपजाति।
२. जैनाध्वनीनः–जैनमार्ग के पथिक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मी के निवासस्थान (पद्म) की भांति रमणीय और अद्भुतता को प्राप्त उन चरण कमलों में मैं अपनी ग्रीवा झुकाकर, त्वरता से प्रणाम कर पद्यबद्ध किसी कथा की रचना करता हूं।

३. आसीत् पुरे शक्रपुरे पुराढ्ये,
वणिग्वरः कश्चिदनुत्तरश्रीः।
स प्रेरितो दृष्टविशिष्टकार्यैः,
स्वेष्टैर्जनैः शिष्टविचारशीलैः।।

४. गन्तुं प्रवासं सहसा समुत्कः,
पप्रच्छ स स्वच्छमतिः स्वरामाम्।
तया चटूक्तैः पटुताघटाभिः,
निवारितस्तद्गमनात् स्वकान्तः।।

प्राचीनकाल में 'इन्द्रपुर' नामक समृद्ध नगर में अनुत्तर श्रीसम्पन्न कोई एक श्रेष्ठ वणिक् रहता था। वह अपने शिष्ट, विचारशील और अपने विशिष्ट कार्यों को देखने वाले प्रियजनों द्वारा प्रेरित होकर सहसा परदेश जाने के लिए उत्कण्ठित हुआ। जब स्वच्छ मतिवाले उस वणिक् ने अपनी पत्नी से प्रवास पर जाने के लिए पूछा तो उसने प्रियवचनों और पटुतापूर्ण चेष्टाओं से पति को परदेश जाने से रोका।

५. पुनः प्रवासस्थजनैस्तथैव,
निमन्त्रितोऽसौ मुहुरिभ्यधुर्यः।
आश्वास्य माधुर्यभरैर्वचोभिः,
वामां प्रकामं प्रययौ प्रदेशम्।।

प्रवासी जनों ने उस धनिकश्रेष्ठ व्यक्ति को बार-बार आमंत्रित किया। वह अपनी पत्नी को मिठासभरे वचनों से अत्यधिक आश्वस्त कर परदेश चला गया।

६. गतो गतश्चेति जनोक्तिरेषा,
सत्यापिता तत्र गतेन तेन।
इतश्च सा प्रेमसमाकुला हि,
स्थितोर्ध्वमुड्डाययतीह काकान्।।

'जो गया सो गया'—इस लोकोक्ति को परदेश में गए हुए उस श्रेष्ठी ने सत्यापित कर दिया। (वह बुलाने पर भी नहीं आया।) इधर प्रेम से अति व्याकुल बनी हुई उसकी पत्नी ऊपर खड़ी-खड़ी कौओं को उड़ा रही थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७. एवं स्थिताया अभवच्च तस्याः
पुत्रः पितुर्वंशसमुद्रचन्द्रः।
न तर्ह्यपि स्मैति[1] स कार्यपार-
वश्यं गतो लोभविभावनाद्वा।।

प्रतीक्षा के कुछ दिन बीते। इस प्रकार स्थित रहते हुए उसकी पत्नी ने पिता के वंशरूपी समुद्र की वृद्धि के लिए चन्द्रमा के समान पुत्र का प्रसव किया। तब भी परदेश में गया हुआ श्रेष्ठी नहीं आया। संभव है या तो उसके कार्य की परवशता थी अथवा लोभ का प्रभाव था।

८. वर्षा व्यतीता द्व्यधिका दशास्याः,
तस्मान्निराशा च विलक्षितास्या।
स्वकर्मणे धिक्कृति[2]माददन्ती,
चिन्तानले देहमथो अधाक्षीत्।।

पति के वियोग में पत्नी के बारह वर्ष व्यतीत हो गए। उससे वह निराश हो गई। निराशा से उसका मुंह उदासीन हो गया, पहचान से परे हो गया। वह अपने कृतकर्म को धिक्कार रही थी। उसका शरीर चिन्ता की अग्नि में जलने लगा।

९. प्रेमद्रुमं मद्रमणस्य[3] शुष्कं,
तन्नेत्रनीरेण हि सिञ्चयामि।
इतीव चक्षुर्जलमुज्जहन्तीं,
पृष्ट्वा हठाद् द्वादशवर्षदेश्यः[4]।।

१०. प्रबोध्य सद्बुद्धिवरः प्रसूं[5] स्वां,
यथा कथञ्चापि वचःप्रपञ्चैः।
नेतुं स्वकीयं पितरं निकाय्यं[6],
साडम्बरं प्रस्थितवान् प्रपुण्यः।।

उसने सोचा–मेरे पति का प्रेम-वृक्ष सूख गया है, इसलिए मैं नेत्र-जल से उसका सिंचन कर रही हूं–मानो इस चिन्तन के साथ ही वह आंखों से अश्रुपात करने लगी। उस समय उसके बारह वर्षीय पुत्र ने हठपूर्वक मां से अश्रुपात करने का कारण पूछा।

१. स्मैति (स्म+एति)–आया।
२. धिक्कृतिः–धिक्कार।
३. रमणः–पति।
४. द्वादशवर्षदेश्यः (ईषदसमाप्तेऽर्थे देश्यः)–बारह वर्षीय।
५. प्रसूः– मां।
६. निकाय्यः–घर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मां ने कारण बताया। कारण जानकर वह बुद्धिमान् बालक अपने पिता को घर लाने का आग्रह करने लगा। (मां ने कहा–तुम अभी बच्चे हो, कहां जाओगे? मां ने उसे रोका) पर बालक ने जैसे–तैसे अपने वचन–कौशल से मां को मना लिया और उस भाग्यशाली बालक ने आडम्बरपूर्वक वहां से प्रस्थान कर दिया।

११. अथान्तराले नगरे विशाले,
क्वचित् स बालो ललितालकालिः[१]।
निशां व्यतिक्रान्तुमुपेत्य तस्थौ,
यत्रास्य तातोऽपि च तत्र यातः।।

(यात्रा करता हुआ बालक अपने गंतव्य की ओर बढ़ रहा था।) यात्रा के मध्यवर्ती मार्ग में कहीं एक विशाल नगर आया। वह सुन्दर केश पंक्तिवाला बालक वहां रात बिताने के लिए जिस स्थान पर ठहरा संयोगवश परदेश से लौटता हुआ उसका पिता भी वहीं आकर ठहर गया।

१२. [२]हा! कर्मणामस्ति गतिर्विचित्रा,
किं वर्णयामो वयमत्र तानि।
यान्यप्यजीवत्वमुपागतानि,
जीवानपीयद्धि कदर्थयन्ते।।

हा! कर्मों की गति विचित्र है। हम उनका यहां क्या वर्णन करें? जो कर्म अचेतन (जड़) होने पर भी चेतन की इतनी कदर्थना करते हैं।

१३. [३]दिष्टानां ही निजतः, कृतसाम्यानामजीवतया।
नहि लेखिन्यपि चलति, लिखितुं चरितं हि वैचित्र्यम्।।

जो कर्म या भाग्य स्वयं अचेतन है और अचेतन के साथ उसका साम्य है–एकत्व है, उसकी विचित्रता के बारे में लिखना कठिन हो रहा है। लेखनी नहीं चल रही है।

१४. [४]किञ्चिद्गतायां शशिनोऽङ्गनायां[५],
तद्बालकस्योरु[६]-पिचण्ड[७]पीडा।
अनीडिता[८] प्रादुरभूत्ततः स
चक्रन्द बाढं सुकुमारकायः।।

---

१. अलकालिः– केशपंक्ति।
२. इन्द्रवज्रा।
३. उपगीति।
४. उपजाति।
५. शशिनोऽङ्गना–रात्रि।
६. उरु–अत्यधिक।
७. पिचण्डः–उदर।
८. अनीडितः–असह्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रात्रि का कुछ भाग बीत जाने पर उस बालक के पेट में अकस्मात् अत्यधिक असह्य पीड़ा हुई। उससे वह सुकुमार शरीर वाला बालक जोर-जोर से रोने लगा।

१५. [१]तत्ताररराव[२]श्रवणात्प्रभूत-
निद्राभिभङ्गोऽरुणनेत्रराजिः।
[३]सौवान्नरानेवमुवाच वाचा,
भो! भो! अयं रोदिति को वराकः?।।

बालक का उच्च स्वर में क्रन्दन सुनने से श्रेष्ठी की गहरी निद्रा भंग हो गई। उसकी आंखें लाल हो गई। उसने अपने कर्मकरों से कहा-अरे! यह बेचारा कौन रो रहा है?

१६. गच्छन्तु गच्छन्तु जवाद् भवन्तः,
पृच्छन्तु पृच्छन्तु किमस्ति दुःखम्।
आज्ञापिता एवमुपेत्य तत्र,
विज्ञातवृत्तास्तमजीज्ञपंस्ते।।

तुम जाओ, जल्दी से जाओ और पूछो कि उसे 'क्या दुःख है?' इस प्रकार श्रेष्ठी द्वारा आज्ञापित होकर वे नौकर वहां गए। उन्होंने सारी घटना जानकर श्रेष्ठी को ज्ञापित कर दी।

१७. [४]यथा यथा विभावरी[५], प्रवर्धते तथा तथा।
तयाप्तमित्रभाववत्, प्रवर्ध्यतेऽथ पीडया।।

जैसे जैसे रात्रि बढ़ रही थी, वैसे वैसे उसकी पीड़ा बढ़ रही थी। मानो उस पीड़ा ने रात्रि के साथ मित्रता स्थापित कर ली थी।

१८. ततोऽनुगामिवद् यथा, यथैधितं च रोदनम्।
तथा तथा प्रवर्धितं, तदिभ्यकोपनं घनम्।।

जैसे जैसे पीड़ा उसकी अनुगामी होकर आगे बढ़ रही थी वैसे वैसे उसका रुदन भी बढ़ रहा था। जैसे जैसे उसका रुदन बढ़ रहा था वैसे वैसे श्रेष्ठी का अत्यधिक क्रोध भी बढ़ रहा था।

१९. अहो! अयं मया निवारितोऽपि यन्मुहुर्मुहुः।
न मन्यतेऽवमन्यते, रुषे[६]ति सन्मतिं जहौ।।

---

१. इन्द्रवज्रा।
२. तारराव:-उच्च स्वर में क्रन्दन।
३. सौवः (स्वस्य अयम्)-अपना।
४. अनुष्टुप्।
५. विभावरी - रात्रि।
६. रुट्-रोष, क्रोध।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आश्चर्य है! मेरे द्वारा बार-बार रोकने पर भी यह चिल्लाने से नहीं मान रहा है। मेरी अवमानना कर रहा है, इस प्रकार गुस्से में भरकर श्रेष्ठी ने अपना विवेक खो दिया।

२०. समादिशच्च तान् रुदन्तमस्खलद्रवैरमुम्।
इतो बहिष्कुरुध्वं शक्तिशालिनो हठात् त्वरम्।।

उसने अपने शक्तिशाली कर्मकरों को आदेश दिया कि अस्खलित स्वर से रोते हुए इस बालक को हठात् शीघ्र ही इस स्थान से बाहर कर दो।

२१. [1]प्राप्तादेशा गर्वतो मत्तचित्ता
गत्वा तूर्णं[2] तस्य लोकान् जजल्पुः।
भो! भो! अस्मिन्मन्दिरे नो भवद्भिः,
स्थातव्यं चैवं वदत्यस्मदीशः।।

श्रेष्ठी का आदेश पाकर गर्व से उन्मत्त चित्तवाले कर्मकरों ने वहां शीघ्र जाकर उस बालक के कर्मकरों से कहा-तुम लोग इस भवन में नहीं रह सकते, ऐसा हमारे स्वामी ने कहा है।

२२. [3]करुणितैर्वचनैरिति तेऽवदन्,
हिमकरप्रमदा[4]वसरे वयम्।
क्वचन याम इति स्वयमेव हि,
खलु भवद्भिरपीह विचार्यताम्।।

बालक के कर्मकरों ने उनसे करुणापूर्ण वचनों से कहा-'आप स्वयं ही विचार करें कि इस रात्रि के समय हम कहां जाएं?'

२३. [5]प्रसह्य ते तान् शिशुना समं हि,
निष्काषयामासुरथालयेन।
हा! कोऽबलानां हि भवेत्सहायः,
सर्वे समर्थाननुयान्ति लोकाः।।

श्रेष्ठी के कर्मकरों ने बलपूर्वक शिशु के साथ कर्मकरों को भी भवन से बाहर निकाल दिया। खेद है कि दुर्बलों का सहायक कौन होता है? सभी लोग समर्थ लोगों का ही अनुगमन करते हैं।

---

१. शालिनी।
२. तूर्णम् -शीघ्र।
३. द्रुतविलम्बितम्।
४. हिमकरप्रमदा-इन्दुकान्ता, रात्रि।
५. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२४. प्रागेव पीडा प्रचुरा समासीत्,
परिश्रमोऽभूद् गमनस्य भूमा[१]।
ततस्तिरस्कारमसोढुकाम
इवाव्रजत् प्रेतपतिप्रदेशम्[२]।।

पहले ही पीड़ा बहुत अधिक थी, फिर बाहर जाने का श्रम बहुत अधिक हुआ। उस कारण मानो तिरस्कार को न सहता हुआ वह बालक यमराजपुरी–मृत्यु के मुख में चला गया।

२५. [३]पुत्रस्य मृत्योर्विरहाच्च चक्षुषी,
नैवाश्रुवाहाद् विरते च भाविनी।
निद्रापि नेयं सुखतोऽनुगामिनी-
तीवेश्वरोऽलं शयनं चकार सः।।

(बालक को बाहर निकाल देने पर उसका प्राणान्त हो गया और साथ-साथ उसका रुदन भी बन्द हो गया।) उसके पश्चात् श्रेष्ठी मानो इसलिए गहरी नींद में सो गया कि उसकी आंखें पुत्र की मृत्यु के विरह के कारण अश्रुप्रवाह से विरत नहीं होगीं और वह सुखपूर्वक नींद भी नहीं ले सकेगा।

२६. [४]उत्थाय पप्रच्छ स बालकः क्वे-
दानीं स्थितः का गतिरस्ति तस्य।
गत्वाऽथ कश्चित्पुनरभ्युपेत्य,
न्यवेदयत् कालमुपागतः सः।।

नींद से उठकर श्रेष्ठी ने कर्मकर से पूछा–अब वह बालक कहां है? उसकी स्थिति कैसी है? कर्मकर वहां गया और उसने वापस आकर श्रेष्ठी से निवेदन किया कि वह बालक काल को प्राप्त हो गया है।

२७. [५]आसीत् कुत्रत्यः स कुमारः प्रष्टव्यं त्वयका गत्वेति।
सोऽपि ज्ञात्वा यातो ब्रूते, शक्रपुरं नगरं बालस्य।।

यह सुनकर श्रेष्ठी ने पूछा–वह बालक कहां का रहने वाला था। तुम वहां जाकर पूछकर आओ। वह वहां गया, जानकारी लेकर बोला–वह बालक इन्द्रपुर नगर का रहने वाला था।

१. भूमा–अत्यधिक।
२. प्रेतपतिप्रदेशः –यमराजपुरी, मृत्यु।
३. इन्द्रवंशा।
४. उपजाति।
५. पादाकुलकम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२८. [1]निशम्य नाम स्वपुरस्य तूर्णं,
समुत्थितस्तं स्वयमाजगाम।
दृष्ट्वैव धिङ् मामिति भाषते स्म,
मया हतो हा! शिशुरेष रम्यः।।

अपने नगर का नाम सुनकर वह शीघ्र उठा और स्वयं वह उस मृत बालक के पास आया। उसे देखकर वह बोला– 'मुझे धिक्कार है'। खेद है कि मेरे कारण इस सुन्दर बालक की मृत्यु हुई।

२९. [2]तनूभवो[3]ऽयं कस्यास्ति, कस्मादत्र समागतः।
अग्रे याता क्व चास्तीति, शीघ्रं दातव्यमुत्तरम्।।

पुनः श्रेष्ठी ने पूछा–यह किसका पुत्र था? कहां से आया था? आगे कहां जाने वाला था? शीघ्र उत्तर दो।

३०. [4]अस्ति श्रीमल्लक्ष्मणस्याङ्गजोऽयं,
नेतुं गेहं याति तातं प्रवासात्।
किं कुर्मो हा! त्वं शृणु श्रेष्ठिवर्य!
कार्यं जातं भीषणं किं विचाले[5]।।

श्रेष्ठिवर्य! तुम सुनो, यह बालक श्रीमान् लक्ष्मणजी का पुत्र था। अपने पिता को परदेश से घर लाने के लिए जा रहा था। खेद है कि बीच में ही यह घटना घटित हो गई। हम क्या करें?

३१. [6]भीमामिमां वचनपद्धतिमानिशम्य,
दम्भोलिना[7] हत इवोर्वितले[8] पपात।
स्वस्थीकृतः प्रलपति प्रचुरं हहा हा,
मूढेन मन्दमतिना हि मया कृतं किम्।।

इस आघातकारक वाणी को सुनकर वह वज्र से आहत की भांति पृथ्वीतल पर गिर गया। कर्मकरों ने हवा डाली, उसे स्वस्थ किया। स्वस्थ होकर वह अत्यधिक प्रलाप करने लगा–हाय! मूढ़ और मंदमति मैंने यह क्या किया?

---

१. उपजाति।
२. अनुष्टुप्।
३. तनूभवः –पुत्र।
४. शालिनी।
५. विचालम्–बीच में।
६. वसन्ततिलका।
७. दम्भोलिः–वज्र।
८. उर्वितलम्–पृथ्वीतल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३२. [1]बालो मदीयोऽपि मया हतो हा,
हा! हा! विधे! ते घटितं विचित्रम्।
कार्यं मयाऽहो! विहितं किमेतत्,
स्वशस्त्रतो लूनवता स्वहस्तम्।।

हा! मेरे पुत्र को मैंने ही मार दिया। हे विधे! तेरी रचना विचित्र है। अहो! मैंने यह क्या कार्य किया–अपने शस्त्र से अपने हाथ को काट डाला।

३३. [2]दुःखं द्विगुणं तस्य, जज्ञे मनसीति चिन्तयता।
कया कदर्थनयाऽहं, तनुभवमेतं कदर्थितवान्।।

इस चिन्तन से श्रेष्ठी का मानसिक दुःख दुगुना हो गया। अब वह मन में चिन्तन कर रहा था कि किस कदर्थना से मैंने अपने पुत्र की कदर्थना की।

३४. [3]एवं दुःखाम्भोनिधौ सन्निमग्नः,
स्वान्तर्दाहाब्ध्यग्निना दह्यतेऽसौ।
अस्याग्नेः को वारको भूतले स्याद्
यस्योत्पत्तिर्जीवनेनैव नित्यम्।।

इस प्रकार दुःखरूपी समुद्र में डुबा हुआ वह अपने अन्तःस्थित दाहरूपी वाडवाग्नि से दग्ध हो रहा था। इस अग्नि को बुझाने वाला इस पृथ्वी पर कौन था, जिसकी नित्य उत्पत्ति जल में हो रही थी।

३५. [4]अहो! ममत्ववैचित्र्यं, वीक्षन्तां विबुधाः समे।
हठान्निष्कासितो येन, स एवाक्रन्दति पृथु[5]।।

अहो! कैसी है ममता की विचित्रता! सभी विद्वान् इसे देखें। जिस श्रेष्ठी ने हठपूर्वक बालक को भवन से निकलवाया, वही विपुल क्रन्दन कर रहा था।

३६. [6]एवं ममत्वं खलु दुःखमूलं, विज्ञाय ये सन्ति विरक्तचित्ताः।
तेऽलं चिदानन्दसुखानि सद्यः, यान्त्यत्र को विप्रतिपद्यते वा।।

इस प्रकार घटना से स्पष्ट है कि ममत्व दुःख का मूल है। इसे जानकर जो मनुष्य विरक्त चित्तवाले हो जाते हैं, वे तत्काल चिन्मय आनन्द और सुख को प्राप्त कर लेते हैं, इसमें कौन व्यक्ति संदह कर सकता है।

१. इन्द्रवज्रा।
२. उपगीतिः।
३. शालिनी।
४. अनुष्टुप्।
५. पृथु–विपुल।
६. इन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. विश्वासात्मा

(श्वास और विश्वास में केवल एक अक्षर 'वि' की दूरी है। व्यक्ति केवल श्वास से नहीं जीता, वह विश्वास से जीता है। विश्वास की भूमिका पर आश्वास की अमिट रेखा सहज खचित होती है।)

१. [1]देहासक्तिर्बत! बलवती क्षीणमङ्गं चकार,
रुष्टो राजा सचिवमनुयन् गुप्तचेत:प्रकाशम्।
वाच्ये लज्जा भवति च भयं गोपने राजरोष:,
कार्याकार्ये तमिह परितो निन्यतुर्दिग्विमोहम्॥

(मंत्री रानी के प्रति आसक्त हो गया।) रानी के प्रति बढ़ी हुई आसक्ति से सचिव का शरीर क्षीण होने लगा। राजा ने उसके मन की बात जाननी चाही, किन्तु सचिव ने रहस्य का उद्घाटन नहीं किया। राजा कुपित हो गया। सचिव को अपना रहस्य बताने में लज्जा और उसका गोपन करने में राजरोष का भय था। कार्य और अकार्य के द्वन्द्व ने उसे चारों ओर से दिग्मूढ बना दिया।

२. संदेहानां सरसि सहसा भिद्यमानेऽन्तरात्मा,
दृश्य: स्पृश्यो भवति सचिवश्चापि राज्ञस्तथाभूत्।
विश्वासोऽपि श्वसिति सुतरां प्राप्य विश्वासमुच्चै:,
श्वास: श्वासं विसृजति न वा श्वासरोधो हि हन्ति॥

संदेहों का तालाब टूटने पर अन्तरात्मा दीखने लगती है और उसका स्पर्श होने लगता है। सचिव ने अपना हृदय खोला और राजा ने सब कुछ जान लिया। दृढ़ विश्वास को पाकर ही विश्वास श्वास लेता है। श्वास ही श्वास को छोड़ता है। श्वास का निरोध प्राणों को ले लेता है।

३. तुच्छत्वं नो किल विलयते तुच्छतायां कदाचित्,
तन्माहात्म्ये व्रजति विलयं रीतिरेषा प्रसिद्धा।
राज्ञश्चेत:सुरसरिति[2] सा मन्त्रिणस्तुच्छताया,
धारा लीनाऽभवदुदयनं प्राप तस्मिन् महत्त्वम्॥

तुच्छता तुच्छता में कभी विलीन नहीं होती। वह महानता में ही विलीन हो पाती है। यह विश्रुत विधि है। सचिव की तुच्छता की धारा राजा की मानस-गंगा में लीन हो गई और तब महत्त्व का उदय हुआ।

---

१. मन्दाक्रान्ता। २. सुरसरित्–गंगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. [1]विश्वासस्य क्षिपति सचिवे कण्ठपीठे कुठारं,
विश्वासात्माऽकृत नरपतिस्तस्य हस्तावरोधम्।
क्रूरं द्वन्द्वं भवति रभसा मृत्युना जीवनस्य,
कश्चित् कश्चित् क्षण इह भवेत्तादृशः कालचक्रे॥

विश्वास की पीठ में छुरा भोंकने वाले सचिव का हाथ विश्वासात्मा राजा ने थाम लिया। इस कालचक्र में कभी-कभी ऐसा क्षण आता है, जब जीवन का मृत्यु के साथ क्रूर द्वन्द्व होने लगता है।

(रानी राजा के आदेश से सचिव के प्रासाद में उपस्थित हुई। सचिव का मन ग्लानि से भर गया। उसने कुठार से आत्महत्या करने का प्रयास किया। गुप्तद्वार से झांकते हुए राजा ने सोचा-यह कुठार सचिव की नहीं, किन्तु विश्वास की हत्या करेगा। राजा ने सचिव का हाथ पकड़ लिया।)

(वि. सं. २०२०, आसोज (सितम्बर, १९६३), लाडनूं)

३. वैरम्

[2]मित्र! तत्र न वस्तव्यं यत्र वैरं परस्परम्।
दासीमेषविवादेन, वानराः प्रलयं गताः॥

मित्र! जहां परस्पर वैर हो, वहां नहीं रहना चाहिए। दासी और मेंढ़े के विवाद से बन्दर मारे गए।

कथा

एक बार राजकुमारों को मेंढ़े पालने का शौक चढ़ा। राजकुमारों के लिए पहले बंदर भी पाले जा चुके थे, जो यहां से वहां उछल-उछलकर सभी को प्रसन्न कर देते थे। अब मेंढ़े भी पाले गए। उनमें से एक मेंढ़ा बहुत शैतान था। वह प्रायः महल की रसोई में घुस जाता। राजा की दासी बहुत क्रोधी थी। वह उसे लकड़ी से मारने लगती। मेंढ़े के रहने की व्यवस्था अश्वशाला में कर दी गई, पर उसमें कोई बदलाव नहीं आया।

एक बार एक वृद्ध बंदर ने अपने साथी बंदरों से कहा-अब हमें यहां नहीं रहना चाहिए। यह मेंढ़ा बहुत शैतान है और राजा की दासी अत्यन्त क्रोधी है। संभव है दासी इसे कभी जलती हुई लकड़ी से मारे और जलता हुआ मेंढ़ा अश्वशाला में घुस जाए, जिससे सारे घोड़े जल जाएं, उनके उपचार के लिए बंदरों का मांस लाभप्रद बताया जाए और हम सभी को बेमौत मरना पड़े। सभी बंदरों ने वृद्ध बंदर का उपहास किया। वहां से कोई

१. मन्दाक्रान्ता। २. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

चलने को तैयार नहीं हुआ तो वह अकेला ही चल दिया। कुछ समय बाद वही हुआ, जो वृद्ध बंदर ने कहा था। सभी बंदरों को बेमौत मरना पड़ा।

४. कायोत्सर्गः

कायोत्सर्गो मुक्तिमार्गः, शुको मुक्तिमुपागतः।
समुपायमजानत्या, वध्वा नापकृतं तमः॥

कायोत्सर्ग मुक्ति का मार्ग है। इसका प्रयोग कर तोता मुक्त हो गया। सम्यक् उपाय न जानने वाली वधू अंधकार को दूर न कर सकी।

कथा

(क) एक सेठ के पिंजरे में तोता रहता था। एक दिन सेठ बाहर जा रहा था। तोते ने पूछा–आप कहां जा रहे हो?

सेठ–मैं अपने गुरु का प्रवचन सुनने जा रहा हूं।

तोता–क्या मेरा एक प्रश्न पूछोगे?

सेठ–बोलो, तुम्हारा क्या प्रश्न है?

तोता–मेरा प्रश्न है कि बंधन से मुक्ति कैसे होती है?

प्रवचन के पश्चात् सेठ ने तोते का प्रश्न पूछा। प्रश्न पूछते ही गुरुजी ने तत्काल अपने शरीर को ढीला छोड़ दिया और पट्ट से नीचे गिर पड़े। सेठ चिंतित हो गया, सोचा–आज तो अनर्थ हो गया। कुछ ही समय में सेठ अपने घर आ गया।

घर पहुंचते ही तोते ने पूछा–मेरे प्रश्न का उत्तर लाए हो? सेठ ने कहा–तुम्हारा प्रश्न पूछते ही गुरुजी ने अपना शरीर ढीला छोड़ दिया और नीचे गिर गए।

तोते ने कहा–सेठ साहब! मुझे प्रश्न का उत्तर मिल गया। कुछ ही क्षणों में सेठ कार्यव्रश भीतर गया। इधर तोते ने अपनी गर्दन को ढीला छोड़ दिया और पिंजरे में गिर गया। सेठ बाहर आया और देखा, तोता मर गया है। उसने तत्काल पिंजरे को खोल दिया। थोड़ी ही देर में तोता मुक्त-गगन में विहरण करने लगा।

सेठ ने सोचा–तोते ने रहस्य को समझ लिया कि यही बंधन-मुक्ति का मार्ग है।

(ख) सम्यक् उपाय न जानने वाली वधू अंधकार को दूर नहीं कर सकी (देखिए कथा सं. २२)।

५. अद्वैतम्

एक एव भवेदात्मा, सर्वेष्वपि हि प्राणिषु।
खादन्ती गौर्नवा रुद्धा, पुत्रः पित्रा निवादितः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सभी प्राणियों में आत्मा समान है। पुत्र ने अनाज के ढेर से अनाज खाती हुई गाय को नहीं रोका। पिता ने उसे उलाहना दिया।

कथा

पिता अपने पुत्र को साथ लेकर प्रवचन सुनने गया। प्रवचन में अद्वैत का प्रकरण चल रहा था। प्रवचनकार ने कहा–सभी प्राणियों में एक ही आत्मा है। वे सब ब्रह्मस्वरूप हैं।

प्रवचन सम्पन्न हुआ। पिता घर चला गया और पुत्र दुकान पर आ गया। किराने की दुकान थी। बाहर अन्न बिखरा हुआ था। एक गाय आई। वह अन्न खाने लगी। लड़का देखता रहा। इतने में पिता भी घर से आ गया। उसने सारी स्थिति देखी। गाय को अन्न खाते देख वह उबल पड़ा।

उसने पुत्र को उपालम्भ देते हुए कहा–अरे! क्या तू गाय को नहीं हटा सकता? इस प्रकार तो सारा धन्धा ही चौपट हो जाएगा।

लड़के ने कहा–पिताजी! गाय की आत्मा और हमारी आत्मा में अंतर ही क्या है? दोनों एक ही है। सब ब्रह्मरूप हैं।

पिता ने सुना और वह अवाक् रह गया। उसने कहा–पुत्र! प्रवचन की बात को व्यवहार में लाना अत्यन्त कठिन है।

६. स्वार्थः

पितः! घटा विपच्यन्ते, वृष्टिर्न स्यादितीष्यते।
पितः! उप्तानि[१] बीजानि, वृष्टिर्भवेदितीष्यते॥

पुत्री ने कहा–पिताजी! आवा में घड़े पक रहे हैं। मैं चाहती हूं–अभी बादल नहीं बरसें।

दूसरी पुत्री ने कहा–बीज बोए हुए हैं, बादल मंडरा रहे हैं। मैं चाहती हूं–बादल बरसें।

कथा

एक कुंभकार था। उसके दो पुत्रियां थीं। दोनों का विवाह हो चुका था। एक बार वह उनसे मिलने गया। पहली पुत्री कुंभकार के घर ब्याही हुई थी। पिता ने कुशलक्षेम पूछा। पुत्री ने कहा–और तो सब ठीक है। घड़ों का आवा तैयार है। यदि कुछ दिन वर्षा न आए तो अच्छा रहे। इसके लिए आप भगवान् से प्रार्थना करें।

१. उप्तम्–बोया हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरी पुत्री की शादी किसान के घर हुई थी। कुशलक्षेम पूछा। पुत्री ने कहा- पिताजी! अभी-अभी हमने खेतों में बीज बोए हैं। अभी वर्षा हो तो अच्छा रहे। यदि वर्षा न हुई तो सारे बीज नष्ट हो जाएंगे।

पिता ने सुना और सोचा कि दोनों पुत्रियों के हित भिन्न-भिन्न हैं।

७. दोषदर्शनम्

परस्परं दोषदृष्टिं, कुर्वन्तो यान्ति नाशनम्।
घृतं गतं गतं वित्तं, आभीर्या[१] दोषदर्शनात्॥

परस्पर एक-दूसरे का दोष देखने वाले विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। अहीरन के दोष देखने के कारण घी गया और धन भी चला गया।

कथा

एक आभीर अपनी पत्नी के साथ शकट में घी के घड़े लेकर नगर में बेचने गया। अन्य आभीर भी उसके साथ घी बेचने गए। आभीर गाड़ी के ऊपर और आभीरी गाड़ी से नीचे खड़ी थी। आभीर घी के घड़े उठाकर आभीरी को देता और वह उन्हें भूमि पर रख देती। लेने-देने में थोड़ी-सी स्खलना के कारण एक घड़ा हाथ से छूट गया और फूट गया।

आभीरी बोली-तुमने पहले घड़ा क्यों छोड़ा? आभीर बोला-तुमने घड़ा ठीक से पकड़ा क्यों नहीं? दोनों एक-दूसरे पर दोषारोपण करने लगे। आभीर को गुस्सा आया। वह नीचे उतरकर आभीरी को पीटने लगा। परस्पर लड़ाई-झगड़े में अवशिष्ट घी भी बिखर गया। कुछ घी कुत्ते चाट गए और कुछ जमीन सोख गई। शेष बचे घी को बेचने में ज्यादा परिश्रम करना पड़ा। इधर अन्य सभी आभीर घी बेचकर अपने-अपने गांव की ओर रवाना हो गए। पीछे से वह आभीर अकेले चला। रास्ते में चोरों ने उसे लूट लिया।

८. पूर्वमान्यता

पूर्वमान्यतया ग्रस्तो न सत्यं लभते जनः।
मुखे लवणमापन्ना, पिपीलिकेव शर्कराम्॥

जैसे चींटी मुख में नमक का कण रखकर शर्करा का स्वाद नहीं ले सकती, वैसे ही पूर्वमान्यता से ग्रस्त व्यक्ति सत्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

---

१. आभीरी-अहीरन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथा

एक चींटी अपने मुंह में लवण का कण लेकर शक्कर के ढेर पर रहने वाली चींटी के पास गई। उसने उसका स्वागत किया। वह बोली-'मेरा मुंह हमेशा खारा रहता है।' उसने कहा-'लो, यह चीनी खा लो।' उसने चीनी का एक कण मुंह में लिया, फिर भी उसका मुंह खारा रहा, क्योंकि उसके मुंह में पहले ही से ही नमक का कण मौजूद था। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी पूर्वमान्यता से ग्रस्त है, वह कभी सत्य को प्राप्त नहीं कर सकता। जब वह अपनी पूर्वमान्यता को छोड़ देता है, तब ही सत्य तक पहुंच सकता है।

९. न्यूनता

न्यूनते द्वे गृहस्य स्तः, एकस्मिन् दिवसे ध्रुवम्।
एतद् विनंक्ष्यति स्वामिन्! कर्त्ता चापि विनंक्ष्यति॥

हे राजन्! इस घर (महल) में दो कमियां हैं-पहली कमी यह है कि एक दिन यह महल नष्ट हो जाएगा। दूसरी कमी यह है कि एक दिन इसको बनाने वाला भी नष्ट हो जाएगा।

कथा

एक राजा ने बहुमंजिला मकान बनवाया। उसकी सारे नगर में प्रशंसा होने लगी। वह प्रत्येक व्यक्ति से यही पूछता कि मेरे इस मकान में क्या कमी है? किन्तु सभी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर चले जाते।

एक दिन एक संन्यासी वहां आया। राजा ने उसे अपना नवनिर्मित मकान दिखाकर पूछा-'महात्मन्! इस महल में कोई कमी तो नहीं है?'

संन्यासी ने कहा-'राजन्! इसमें मुझे दो कमियां दिखाई दे रही हैं। राजा का मन उदास हो गया। उसने अन्यमनस्कता से पूछा-वे दो कमियां कौनसी हैं? मैं उन्हें भी पूरा कर दूंगा। मेरे पास न तो धन की कमी है, न ही कारीगरों की।

संन्यासी ने कहा-'पहली कमी तो यह है कि नवनिर्मित भवन एक दिन अवश्य ही नष्ट हो जाएगा। दूसरी कमी यह है कि इसको बनाने वाला भी अमर नहीं रहेगा।

राजा ने यह सुना, आकाश की ओर देखा और देखता ही रह गया।

१०. यमराजः

कष्टकाले विचारो यः स सुखे परिवर्तते।
यमं प्रत्युक्तवान् वृद्धो भारमुत्थापितुं स्मृतः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्य का कष्ट के समय में जो विचार होता है, वह सुख के क्षण में बदल जाता है। वृद्ध ने यम से कहा–मैंने तुमको मेरे सिर पर भार रखने के लिए याद किया है।

कथा

एक वृद्ध सिर पर लकड़ी का भार लिए जा रहा था। रास्ता लम्बा था। वह थक गया। अभी गांव दूर था। वह भार को नीचे रख बैठ गया। दुःख के मारे वह मृत्यु को बार-बार याद कर रहा था। अरे! मुझे मौत क्यों नहीं उठा ले जाती? इतने में यमराज उसके सामने आकर खड़ा हो गया।

वृद्ध ने पूछा–'आप कौन हैं?'

'मैं यमराज हूं।' तूने मुझे याद किया था, इसलिए मैं आया हूं।

वृद्ध मौत के भय से कांपने लगा। उसने कहा–मैंने तो अपना भार उठवाने के लिए आपको याद किया था। कृपया आप लकड़ी के गट्ठर को मेरे सिर पर रख दें।

११. सन्तोषः

स्त्रीद्वयारोपमाधाय, श्वा क्षुधाकुलितो मृतः।
मोहमूढो नृपो मृत्युं, प्राप्तः खादन्निहाम्रकम्।।

दो स्त्रियों के आरोप का वहन कर सताबा नामक कुत्ता भूख से आकुल होकर मर गया।

मोह से मूर्च्छित राजा आम के फल को खाकर मृत्यु को प्राप्त हो गया।

कथा

(क) एक धोबी के दो स्त्रियां थीं। उनके पास एक कुत्ता था। उसका नाम था 'सताबा'। वह प्रायः भूखा रहता था। दोनों ही स्त्रियां उसे रोटी नहीं देती थी। किन्तु जब वे दोनों लड़ाई करतीं, तब एक-दूसरे को 'सताबे की नार' कहती थीं। कुत्ते को इसी से सन्तोष होता था और इसी सन्तोष में वह भूख से व्याकुल होकर मर गया।

(ख) राजा घूमने के लिए निकला। बगीचे में पहुंचा। मंत्री ने सावधान करते हुए कहा–'महाराज! आप आम के वृक्ष के नीचे न बैठें। आपको आम नहीं खाना है, न उसके नीचे बैठना है। चिकित्सक ने कहा है कि यदि आप आम खाएंगे तो जी नहीं सकेंगे। आम को हाथ में लेने का अर्थ है–मृत्यु को हाथ में लेना।

राजा ने मन ही मन सोचा–'कैसे होते हैं वैद्य! उन्होंने आम खाने का निषेध क्यों किया? आम की छाया सघन होती है। उसके नीचे बैठने में क्या दोष है? खाने में दोष की संभावना हो सकती है, बैठने मात्र से नहीं।' राजा गया, आम के वृक्ष के नीचे बैठा। पके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुए आमों की सुगन्ध से मन भर गया। मुंह में पानी आ गया। इतने में हवा का एक झोंका आया। पका हुआ आम वृक्ष से टूटा और राजा की गोद में आ गिरा। राजा ने उसे छुआ। हाथ में उठाया। सूंघा। मोहकवर्ण! मीठी सुगन्ध!

मंत्री ने कहा–'महाराज! यह क्या कर रहे हैं?' मौत को बुला रहे हैं? दूर फेंक दीजिए इस आम को।

राजा ने हंसते हुए कहा–तुम बड़े अविश्वासी हो। देखने और सूंघने में हानि क्या है? मैं इसे खाऊंगा नहीं। राजा बार-बार सूंघता रहा। मीठी सुगन्ध मन को भा गई। सूंघते-सूंघते राजा आम को चूसने लगा। बड़ा मीठा रस था। मंत्री ने हाथ पकड़ लिया।

राजा बोला–'मंत्री! वैद्य यों ही डराते हैं। भला एक आम चूसने से कोई आदमी मरता है क्या? मैं कोई छककर तो नहीं खा रहा हूं। तुम चिन्ता मत करो।' निषेध के बावजूद भी राजा आम चूसता गया और कुछ ही दिनों में बीमार होकर मर गया।

आदमी जानता हुआ भी पदार्थासक्ति छोड़ नहीं पाता, क्योंकि उसका संकल्प स्थूल चेतना के ऊपर होता है।

१२. सर्वजित्

न बाह्यविजयेनैव, सर्वजित्त्वं भविष्यसि।
मात्रोक्तमान्तराणां च शत्रूणां विजयं कुरु।।

मां ने कहा–आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो। बाह्य विजय से सर्वजित् नहीं बनोगे।

कथा

राजा अन्य राजाओं को जीतकर सर्वजित् होकर मां के पास आया और आशीर्वाद मांगा।

मां तत्त्वज्ञा थी। मां ने कहा–बेटा! शत्रु राजाओं पर विजय प्राप्त कर तू सर्वजित् नहीं बन सकता, जब तक कि तू अपने भीतर अवस्थित शत्रुओं को नहीं जीत लेता।

१३. तुलना

वाजी[१] लवणवाही च, गर्दभस्तूल[२]वाहकः।
तुलना वाजिनोऽकारि, तद्भारो द्विगुणोऽभवत्।।

घोड़े पर नमक की बोरी लदी हुई थी और गधे पर रूई की बोरी। गधे ने घोड़े के साथ तुलना की। गधा पानी में बैठा, रूई भीग गई, भार दुगुना हो गया।

१. वाजी–अश्व। २. तूलम्–रूई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथा

एक आदमी काफिला लिए जा रहा था माल का। कुछ गधे थे, कुछ साथ में घोड़े थे। बीच में नदी आयी। एक घोड़ा, जिस पर नमक की बोरी लदी हुई थी, बैठ गया। नदी में था पानी। सारा नमक भीग गया, थोड़ी ही देर में रिस-रिसकर बहने लगा। बोरी खाली हो गई। घोड़ा हल्का हो गया। गधे ने सोचा, यह तो अच्छा उपाय है। मैं भी हल्का हो जाऊं। वह भी नदी में थोड़ी देर बैठा, परन्तु वह यह नहीं जानता था कि ऊपर क्या लदा है? ऊपर थी कपास। ज्योंही पानी में इधर-उधर लेटा, कपास भीग गई। उठा तो हल्का होने की जगह और अधिक भारी हो गया। जब विवेक का जागरण नहीं होता, तब व्यक्ति प्रयत्न करता है हल्का होने का और जाने-अनजाने अधिक भारी वन जाता है।

१४. स्वभावः

वृश्चिकः[१] प्रकृतिं स्वस्य, निकृष्टामपि नोज्झति।
वरिष्ठा प्रकृतिर्भद्र!, मया त्याज्या कथं तदा?।।

बिच्छू स्वयं की निकृष्ट प्रकृति को भी नहीं छोड़ता, तो भद्र! मैं अपनी श्रेष्ठ प्रकृति को कैसे छोड़ दूं?

कथा

बिच्छू को पानी में डुबकियां खाते देख एक व्यक्ति ने अपनी अंगुली से उसे निकाला। उसकी अंगुली पर आते ही उसने डंक मारा, डंक लगाते ही वह पुनः पानी में गिर गया। उसने फिर उसे निकालने की कोशिश की, फिर डंक मारा, गिर गया। वह फिर उसे निकालने लगा, तब पास खड़े एक व्यक्ति ने उसे टोकते हुए कहा-मूर्ख, यह तेरे डंक मारता है और तू इसे निकालने को दौड़ता है, क्या यह तेरा भाई है? चल हट।

उसने कहा-मैं इसे निकालने दौड़ता हूं, मेरा यह स्वभाव अच्छा है या बुरा?

अच्छा।

यह डंक मारता है, इसका यह स्वभाव अच्छा है या बुरा?

बुरा।

जब यह अपना बुरा स्वभाव नहीं छोड़ता, तब मैं अपना अच्छा स्वभाव कैसे छोड़ सकता हूं?

---

१. वृश्चिकः-बिच्छू।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१५. अनुभवः

व्यवहारायानुभूतिः, ज्ञानं बुद्धेर्विकासकम्।
अनुभवविहीनेन, गणितैर्नाशितं कुलम्।।

व्यवहार को संचालित करने का साधन है–अनुभव। बुद्धि के विकास का साधन है–ज्ञान। अनुभवविहीन गणितज्ञ ने गणित के द्वारा कुल का विनाश कर दिया।

कथा

एक इंजीनियर गांव से शहर की ओर जा रहा था। साथ में पूरा परिवार था। रास्ता कच्चा था। रास्ते में एक नदी पड़ती थी। नदी में पानी गहरा था। सब किनारे पर रुक गए। इंजीनियर ने पहले पानी की गहराई को मापा, फिर साथ वालों की संख्या की गिनती की। गणित के हिसाब से अनुपात निकाला। अनुपात के अनुसार हल निकला कि नदी को पार किया जा सकता है। उसने पिता, माता और छोटी बहन को नदी में उतरने के लिए कहा। सबने आनाकानी की। इंजीनियर साहब के विशेष आग्रह पर सब नदी में उतरे। कुछ आगे बढ़े। वहां पानी गहरा था। तीनों डूब गए। इंजीनियर यह देख घबरा उठा। उसने तत्काल गणित के अनुपात को देखा–वह सही था। वह गुनगुनाने लगा–'हिसाब ज्यों का त्यों, कुनबा डूबा क्यों?

यह था बुद्धि का अतिक्रमण। बुद्धि विकास का सशक्त साधन है, किन्तु अनुभव उससे भी बड़ा है। बुद्धि से खतरा भी होता है, अनुभव निरापद होता है।

१६. महद् ध्येयम्

फलाकांक्षा न कर्त्तव्या, सर्वोच्चं ध्येयमर्थ्यताम्।
तिसृभिरर्थितं[1] वस्तु, चतुर्थ्या प्रार्थितो नृपः।।

फल की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। जो ध्येय सर्वोच्च है, उसके लिए ही प्रार्थना करनी चाहिए। तीनों रानियों ने वस्तु की याचना की और चौथी रानी ने स्वयं राजा को ही प्राप्त करने की प्रार्थना की।

कथा

एक राजा के चार रानियां थीं। राजा प्रयोजनवश प्रदेश गया। लम्बा समय गुजर गया। रानियां प्रतीक्षा कर रही थीं। जब पता चला कि राजा आने वाले हैं, तो चारों रानियों ने चार पत्र प्रेषित किए।

१. अर्थितम्–याचित।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहली रानी ने पत्र में लिखा–आप मेरे लिए नूपुर लेकर आना।

दूसरी रानी ने पत्र में लिखा–आप मेरे लिए हार लेकर आना।

तीसरी रानी ने पत्र में लिखा–आप मेरे लिए बाजूबंद लेकर आना।

चौथी रानी ने पत्र में लिखा–मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए, आप आ जाइए।

कुछ दिन बाद राजा नगर में आया। प्रजा प्रसन्न हुई। रानियों ने बधाइयां बांटी। राजा परिषद् में बैठा। रानियों को भी आमंत्रित किया। राजा ने अपनी यात्रा का वृत्तांत सुनाया। वह अपने साथ कुछ आभूषण भी लाया था। एक रानी के लिए नूपुर, दूसरी के लिए हार और तीसरी के लिए बाजूबंद। शेष सारे आभूषण छोटी रानी को दे दिए।

तीनों रानियां यह पक्षपात कैसे सहन कर सकती थीं? राजा पर पक्षपात का आरोप लगाया। राजा ने क्षणभर सुनकर कहा–मैंने पक्षपात नहीं किया है। जिसने जो मंगाया, उसे वह सब कुछ मिल गया। छोटी रानी ने मुझे मांगा था, इसलिए मैं शेष आभूषणों के साथ उसे मिल गया।

१७. अविधिज्ञता

दोग्धा दुग्धमवाप्नोति, तदज्ञो मूत्रगोमयम्।
संयमी स्वं प्रसाध्नोति, तदन्यः स्वं विराध्यति।।

गाय के दोहन की विधि को जानने वाला दूध को प्राप्त करता है और दोहन की विधि को न जानने वाला गोमूत्र तथा गोबर प्राप्त करता है। संयम की विधि को जानने वाला अपने आपको सिद्ध कर लेता है और विधि को न जानने वाला चेतना को विकृत बना लेता है।

कथा

एक द्वीप था, जहां रत्नों का व्यापार होता था। वहां के निवासी गाय से परिचित नहीं थे। एक व्यापारी रत्नों को खरीदने उस द्वीप में गया और साथ में एक गाय ले गया। उसने राजा को प्रसन्न करना चाहा।

एक दिन व्यापारी राजा के पास दूध लेकर आया। राजा ने दूध पीया। बहुत प्रसन्नता व्यक्त की। दूसरे दिन दही, तीसरे दिन मक्खन। इस प्रकार वह प्रतिदिन कुछ न कुछ उपहार लेकर आता और राजा की प्रसन्नता प्राप्त करता।

कुछ दिन बीते, व्यापारी ने राजा से विदा ली। राजा ने कहा–'सेठ! तुम जो चीजें भेंट देते हो, उस वृक्ष को यहीं छोड़ जाना। उसे साथ मत ले जाना। मैं तुम्हें करों से मुक्त करता हूं।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सेठ ने गाय को वहीं छोड़ दिया और चला गया। राजा ने अपने कर्मचारियों से कहा–दो–चार आदमी हर समय इस वृक्ष के पास खड़े रहो। यह वृक्ष जो भी दे, तत्काल मेरे सामने प्रस्तुत करो। आदमी सोने-चांदी के बर्तन लेकर खड़े हो गए। गाय ने मूत्र किया, कर्मचारियों ने उसे चांदी के बर्तन में ले लिया। तत्काल राजा के सामने प्रस्तुत किया।

राजा ने कहा–अरे! यह तो कोई नया ही पदार्थ है। आज तक तो उस सेठ ने मुझे ऐसा पदार्थ खिलाया ही नहीं। सूंघा तो बदबू आ रही थी। चखा तो तत्काल थू–थू करने लगा। राजा ने कहा–अरे! यह तो कड़वी चीज है, कोई बात नहीं। जो मीठा देती है, वह कभी-कभी कड़वा भी देती है।

इतने में दूसरा आदमी सोने के बर्तन में गरम–गरम गोबर लेकर आया। उसको देखा तो राजा को वह भी नई चीज लगी, किन्तु चखा तो मुंह खराब हो गया। थू-थू कर थूका और राजा को गुस्सा आ गया। उसने कहा–सेठ ने हमें धोखा दिया है। जो मूल वृक्ष था, उसे वह साथ ले गया और जो खराब वृक्ष था, उसे यहां छोड़ गया। तुम लोग दौड़ो और उसे पकड़कर लाओ। अभी तक तो वह सीमा के बाहर तक नहीं गया होगा। जहां भी हो, पकड़कर लाओ। कर्मचारी गए और उसे पकड़ कर ले आए।

राजा ने कहा–मेरे साथ भी धोखा!

सेठ बोला–राजन्! कभी नहीं, आपके साथ धोखा कैसे कर सकता हूं? राजा ने सारी बात बताई।

व्यापारी बोला–'राजन्! वृक्ष वही है, उसी के उपहार देता रहा हूं। आपके व्यक्ति उसके फल लेना नहीं जानते। मैं उन्हें फल लेने की विधि बता देता हूं।'

सेठ ने कर्मचारियों को गाय दुहने की विधि बताई। दही जमाने और मक्खन निकालने की प्रक्रिया भी उनको सिखाई। अब राजा को पूर्ववत् दूध, दही, मक्खन मिलने लगे।

कर्मचारियों ने राजा से कहा–महाराज! वृक्ष वही है, हम पहले दुहना नहीं जानते थे। जो दुहना नहीं जानते, उन्हें दूध कैसे प्राप्त हो सकता है? दूध के बिना दही और मक्खन भी कैसे प्राप्त होंगे?

१८. क्रोधं मा कुरु

द्रोणाचार्य उवाचेति, कोपं मा कुर्विदं वचः।
उत्तीर्णो धर्मपुत्रो हि, यथावाणी तथाकृतः।।

द्रोणाचार्य ने पाठ पढ़ाया–'क्रोध मत करो।' इस पाठ में धर्मपुत्र युधिष्ठिर उत्तीर्ण हुआ, क्योंकि उसने वाणी और कार्य में सामञ्जस्य प्रदर्शित किया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथा

द्रोणाचार्य अपने युग के प्रसिद्ध आचार्य थे। वे सब शास्त्रों के ज्ञाता थे, गुरुकुल के संचालक थे। गुरुकुल में सैकड़ों विद्यार्थी पढ़ते थे। वहीं पर कौरवों और पाण्डवों की शिक्षा हुई। अन्यान्य विद्याओं के साथ चरित्रनिर्माण की शिक्षा भी दी जाती थी। एक दिन द्रोणाचार्य ने सभी विद्यार्थियों से कहा–शिक्षा के दो रूप हैं–पढ़ना और उसे आचरण में उतारना। पढ़ने से बुद्धि विकसित होती है और आचरण से जीवन बनता है। दोनों का संयोग ही जीवन की समग्रता है।

एक दिन द्रोणाचार्य ने पुस्तकीय ज्ञान के साथ दो पाठ याद करने के लिए कहा- 'सत्यं वद', 'क्रोधं मा कुरु'। प्रायः प्रायः सभी विद्यार्थियों ने दोनों पाठ याद कर लिए। युधिष्ठिर ने भी एक पाठ याद करके सुना दिया, किन्तु दूसरे पाठ में मौन हो गया। दो, तीन, चार, पांच दिन बीत गए। पर दूसरा पाठ याद कर नहीं सुनाया।

द्रोणाचार्य युधिष्ठिर से बड़ा स्नेह रखते थे, किन्तु एक छोटा सा पाठ न सुनाने से वे बड़े दुःखी हुए। उन्होंनें युधिष्ठिर को डांटा और दो–चार चांटे जड़ दिए। चांटे जड़ते ही युधिष्ठिर बोला–गुरुवर! अब पाठ याद हो गया। वैसे तो मैंने दोनों पाठ उसी दिन याद कर लिए थे, पर आपने जो आचरण की बात साथ में कही थी उसके अभाव में मुझे कभी–कभी क्रोध आता रहा है। इसलिए जब तक क्रोध नहीं छूटता, तब तक पाठ याद करने की बात कैसे करता? आज चांटों के बावजूद मुझे क्रोध नहीं आया, तब मैं कह सकता हूं कि आज मुझे 'क्रोधं मा कुरु' पाठ याद हो गया है।

इस बात से द्रोणाचार्य स्तब्ध रह गए। वे बोले–इस रूप में तो हमने भी कभी पाठ याद नहीं किया। यह बालक बड़ा होनहार है। इसलिए आज मैं इसे 'धर्मपुत्र' के रूप में संबोधित करता हूं।

१९. महत्त्वाकांक्षा

क्षणं स्थित्वोदितं[१] तेन, गुरोः कार्यं वरं यतः।
गुरुर्भवितुमिच्छामि, दुस्त्यज्याहंकृतिः[२] यतः।।

आगन्तुक किशोर ने क्षणभर ठहरकर कहा–गुरु का काम आदेश देना है, यह अच्छा है। इसलिए मैं गुरु होना चाहता हूं, क्योंकि अहंकार को छोड़ना बड़ा कठिन काम है।

कथा

एक लड़का जा रहा था। रास्ते में चलते–चलते उसे भूख सताने लगी। इधर-

१. उदितम्–कथित। २. अहंकृतिः–अहंकार।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उधर देखा तो उसे एक झोंपड़ी दिखाई दी। वह उधर गया। झोंपड़ी में एक बाबा बैठा था। उसने जाकर कहा–बाबा! भूख लगी है, कुछ खाने को दो।

बाबा ने कहा, चेले क्यों नहीं बन जाते?

लड़का बोला, चेला क्या होता है? मुझे बताओ।

बाबा ने कहा–दो होते हैं, एक होता है गुरु, जो आदेश देता है और दूसरा होता है–चेला, जो आदेश मानता है। तुम चेले बन जाओ।

लड़के ने दो क्षण सोचकर कहा–बाबाजी! मैं चेला तो नहीं बनना चाहता। यदि गुरु बनाते हो, तो मैं तैयार हूं।

२०. अनर्थस्य मूलम्

सेवाभावस्तथौदार्यं, धनाभावे सुलभ्यते।
धनभावे वैपरीत्यं, भ्रातृयुग्मे यथाऽभवत्।।

धन के अभाव में सेवा का भाव और उदारता–ये दो गुण व्यक्ति में मिलते हैं। धन होने पर ये दोनों गुण समाप्त हो जाते हैं, जैसा कि भ्रातृयुगल के साथ हुआ।

कथा

दो राजपूत सगे भाई थे। कमाने के लिए दोनों परदेश गए। बारह वर्षों तक परदेश में रहे। वहां उन्होंने खूब धनमाल कमाया। दोनों भाई मोहरों की दो 'थैलियां' कमर में बांधकर अपने देश की ओर लौटने लगे। मार्ग में एक बड़ा तालाब आया। दोनों भाई उसकी पाल पर चलने लगे, तभी एक भाई के मन में दुष्ट भाव उत्पन्न हुआ। उसने मन ही मन सोचा कि मोहरों की थैली लेकर इसे धक्का दे दूं तो यह तालाब में गिर पड़ेगा। यों सोचकर उसने दूसरे भाई से थैली मांगी, लेकिन उसने नहीं दी। अब दूसरे भाई के मन में भी वही दुष्ट भाव आया, तब वह बोला–भाईजी! आपके बोझ हो रहा होगा, अतः थैली मुझे दे दीजिए।

किन्तु इस भाई ने भी अपनी थैली दूसरे भाई को नहीं दी। तभी एक भाई के मन में अच्छे भाव आए। उसने सोचा, अहो! मैंने अपने सगे भाई को मारने की ठानी, मुझे धिक्कार है।

उसने अपने मन की बात भाई को बताते हुए कहा–आज मेरे मन में आपको मारने का ख्याल आया। मैंने सोचा कि मैं थैली लेकर आपको तालाब में धक्का दे दूं। इसीलिए आपसे थैली मांगी थी, लेकिन बाद में अच्छे परिणाम आने से मन से यह विचार त्याग दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तब दूसरे भाई ने कहा–तुम्हारी ही तरह मेरे मन में भी यह दुष्ट परिणाम आया था। रोटी तो हम कमाकर भी खा लेंगे, लेकिन पास में मोहरों की थैली होने से ऐसे अनर्थ के भाव उपजते हैं, अतः दोनों ही थैलियां तालाब में गिरा देते हैं।

यों सोचकर दोनों भाइयों ने अपनी–अपनी थैली तालाब में गिरा दी। उस समय तालाब में एक बड़ी मछली ने मुंह खोल रखा था। मोहरों की दोनों थैलियां उसके उदर में समा गईं। बाद में उस मछली को मछुआरे पकड़कर ले गए।

अब दोनों भाई भी अपने गांव पहुंच गए। मां–बाप, पत्नी, बहन व सभी परिजन बड़े प्रसन्न हुए। बहन ने विचार किया कि भाई कई वर्षों से लौटे हैं, अतः इनके लिए विशेष भोजन बनाऊंगी। यों सोचकर वह बाजार में मछुआरे से मछली लेने गई। संयोग से उसे वही मछली मिली, जिसने मोहरों की थैलियां निगल रखी थी। घर लाकर उसने मछली को चीरा तो उसमें से मोहरों ही थैलियां निकली। उनके गिरने से आवाज हुई।

जब मां ने बेटी से पूछा–यह आवाज किसकी हुई?

तब वह बोली–यह तो थाली की आवाज हुई है।

इस पर मां ने कहा–थाली की आवाज कहां है? यह तो मोहरों की आवाज लगती है।

इसके पश्चात् बुढ़िया रसोई में जाकर इधर–उधर टटोलने लगी। तभी मोहरों की थैली उसके हाथ लग गई, तो उसे वह खींचने लगी। दूसरी तरफ बेटी खींच रही थी। थैली छीनने के प्रयास में उसने मां को धक्का दिया। अचानक गिरने से बुढ़िया वहीं मर गई।

बेटी मोहरों की थैलियां लेकर अपने ससुराल की ओर भागने लगी। धमाके की आवाज सुनकर दोनों भाई दौड़कर आए। आगे देखा तो मां मरी हुई पड़ी थी। बहन को भागते देखकर दोनों भाई उसके पीछे दौड़े। आगे जाकर बहिन को पकड़ लिया। उसके हाथ में वे ही दोनों मोहरों की थैलियां देखकर वे चकरा गए। ये तो वे ही थैलियां हैं, जो हम तालाब में फेंककर आए थे।

उन्होंने सोचा, हम तो इन मोहरों को फेंक आए, किन्तु संयोग से ये वापिस आ गईं। अब हमारे ये किस काम की? मोहरों की इन थैलियों ने तो अनर्थ कर दिया। मां मर गई और बहन का लोभ जाग गया, अतः अब इन्हें वापिस बहन को ही सौंप देते हैं।

ऐसा सोचकर उन्होंने वे थैलियां बहन को सौंप दी। साधुओं की वाणी सुनने से दोनों भाइयों को वैराग्यभाव उत्पन्न हुआ। दोनों भाई अच्छे कर्म करते हुए देवलोक चले गए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२१. दुरुपयोगः

आलस्येन प्रमादेन, वरं[१] दुरुपयुज्यते।
दुर्लभत्वं ततस्तस्य, चोपसर्गहरं यथा।।

आलस्य और प्रमाद से वरदान का दुरुपयोग किया जाता है, इसलिए 'उपसर्गहर स्तोत्र' से मिलने वाली सफलता दुर्लभ हो गई।

कथा

जैन परम्परा में आचार्य भद्रबांहु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संघ के सामने कठिनाई आने पर उन्होंने एक मंत्र की रचना की। संघ का संकट दूर हो गया।

एक बार एक स्त्री रसोई बना रही थी। उसका बछड़ा भाग गया। स्त्री ने सोचा, बछड़े को पकड़ लाऊं। फिर सोचा, मुझे उठकर जाने की क्या जरूरत है? मुझे मंत्र याद है। उसने मंत्र का पाठ किया और देवी उपस्थित हो गई।

स्त्री ने कहा–देवी! कोई विशेष संकट तो नहीं है, किन्तु मेरा बछड़ा भाग गया है। तुम उसे लाकर खूंटे पर बांध दो।

देवी को आश्चर्य हुआ। वह भद्रबाहु के पास जाकर बोली, 'महाराज! आपने यह क्या कर दिया?' यह मंत्र आपने क्यों दे दिया? आज तो हमें बछड़ा बांधना पड़ रहा है। कल पता नहीं, क्या करना पड़ेगा? यह अकर्मण्यता है, अपने कर्म और पुरुषार्थ पर अविश्वास है।

आज शक्ति है, पर कर्मण्यता नहीं है। शक्ति और कर्मण्यता का योग ही सफलता का मार्ग है।

२२. अज्ञानम्

हठयोगान्न जायेत, तमसोऽपगमः क्वचित्।
जायते ज्ञानयोगेन यथा श्वश्र्वा[२] व्यधीयत।।

अंधकार हठयोग (मिथ्या आग्रह) से कहीं भी दूर नहीं होता। वह ज्ञानयोग से दूर हो सकता है, जैसे कि सास ने अंधकार को दूर किया था।

कथा

सास बहुरानी को काम सिखाना चाहती तो बहुरानी कहती–यह तो मैं जानती हूं, पर जानती कुछ नहीं थी। सास उसकी मूढ़ता व फूहड़पन से बहुत परेशान थी। वह बार-

१. वरः–वरदान। २. श्वश्रूः–सास।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बार उसे डांटती, पर उसके कान पर जूं तक नहीं रेंगती थी। एक दिन सास ने उसे उसकी मूर्खता का ज्ञान कराने का विचार किया।

सास ने कहा–पड़ौस के घर में शादी है। आज रात को मैं देर से घर आऊंगी। पीछे से घर में अंधेरा प्रवेश न करे, इसका ध्यान रखना।

सूर्यास्त के बाद बहू ने द्वार पर आकर जोर से आवाज लगाई–अंधेरे! आज मेरे घर मत आना। यदि भूलकर भी आ गया तो तेरी खैर नहीं होगी। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, सारे घर में अंधेरा ही अंधेरा दिखाई देने लगा।

बहू ने सोचा–अंधेरा दुष्ट है। बातों से नहीं मानेगा। उसने हाथ में लाठी लेकर मारना शुरू किया। दीवार फूट गई, आंगन टूट गया। हाथ लहूलुहान हो गए। आखिर हार मानकर कोने में बैठी-बैठी रोने लगी।

रात को दस बजे सास ने आते ही आवाज दी–बहुरानी! घर में अंधेरा कैसे आ गया? क्या तुमने मेरे कहने का ध्यान नहीं रखा? बहू ने सास को बाहर की रोशनी में रक्त से रंगे अपने दोनों हाथ दिखाए।

सास ने लम्बी सांस लेते हुए कहा–बहुरानी! यह क्या किया? बहू ने कहा-आपका आदेश पूरा करने के लिए मैंने अंधेरे को लाठी से मारा। मेरे हाथों में घाव हो गए, पर वह पापी टस से मस नहीं हुआ। उस समय सास ने दियासलाई लेकर लालटेन जलाई तो अंधेरा नौ–दो ग्यारह हो गया।

सास ने कहा–बहू! अंधेरा पीटने से नहीं, प्रकाश से जाता है। अपनी आदत के अनुसार बहू ने कहा–यह काम तो आसान है, मैं भी कर सकती थी। इसमें क्या है? किन्तु बाद में वह अपनी मूर्खता का अनुभव करने लगी।

जिस प्रकार बाहर का अंधेरा प्रकाश से दूर होता है, उसी प्रकार भीतर का अंधेरा अध्यात्म के प्रकाश से दूर होता है, केवल शरीर को पीड़ित करने से नहीं।

२३. मनोभावः

तेन मम श्रुतौ प्रोक्तं येनोक्तञ्च तव श्रुतौ।
ग्रंथिं नारे[1]! प्रदास्यामि, गच्छ भद्र! सुखं सुखम्।।

जिसने तुम्हारे कानों में कहा, उसने मेरे कानों में भी कह दिया। अरे! अब यह गांठ मैं नहीं दूंगी। भद्र! तुम सुखपूर्वक चले जाओ।

कथा

एक बुढ़िया जा रही थी। सिर पर गठरी थी। उसी रास्ते से एक युवक भी जा रहा

१. नारे (न+अरे) अरे! नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। उसने बुढ़िया से कहा, 'दादी! कुछ देर के लिए गठरी मुझे दे दो।' तुम्हें थोड़ा-सा विश्राम मिल जाएगा। बुढ़िया ने उसका भाव देखा और गठरी उसे दे दी। थोड़ी देर पश्चात् बुढ़िया ने फिर गठरी ले ली।

युवक का मन बदल गया। उसने सोचा, 'गठरी मेरे पास थी। उसे लेकर मैं भाग जाता तो बुढ़िया मेरा क्या करती?' युवक ने फिर गठरी मांगी, परन्तु उसने नहीं दी।

युवक ने पूछा-दादी! अब क्यों नहीं दोगी?

बुढ़िया बोली-बेटा! अब नहीं दूंगी। जो तुझे कह गया, वह मुझे भी कह गया।

सरलता मन का वह प्रकाश है, जिसमें कोई भी वस्तु अस्पष्ट नहीं रहती। माया मन का वह अंधकार है, जिसमें आदमी निरंतर भटकता रहता है।

२४. चातुर्यम्

पुरुषार्थं विना चापि बुद्धिं कार्यं न सिद्ध्यति।
विद्यार्थिनः श्यालकस्य[१] दृष्टान्तावुपयोगिनौ।।

पुरुषार्थ और बुद्धि के बिना कार्य सिद्ध नहीं होता। इस विषय में विद्यार्थी और राजा के साले का दृष्टान्त उपयोगी है।

कथा

एक राजा था। उसके दरबार में उसके मंत्री का दायित्व एक साधारण, पर एक बुद्धिमान् व्यक्ति निभाता था। महारानी का भाई (महाराजा का साला) भी इन्हीं के दरबार में था। राजा मंत्री को अपने साले से अधिक इज्जत देता था, पर वह महारानी को पसंद नहीं था।

एक बार रानी ने रूठने का अभिनय करते हुए राजा से कहा-'महाराज! आप उस मंत्री को मेरे भाई से भी अधिक इज्जत देते हो?' ऐसा क्यों?

राजा ने कहा-क्योंकि मंत्री तुम्हारे भाई से अधिक चतुर है।

महारानी ने प्रतिप्रश्न किया-'वह कैसे?' इस पर राजा ने पहले अपने साले को बुलाया और कहा कि बाहर जो कठपुतली वाले आए हैं, पता करो कि वे कहां से आए हैं? साला कुछ देर बाद आया और बोला-'महाराज! वे कठियार से आए हैं।' कुछ देर बाद राजा ने मंत्री को बुलाया और उसे भी कठपुतली वालों के बारे में पता करने को कहा।

थोड़ी देर बाद मंत्री आया और बोला-'महाराज! वे कठियार से आए हैं। उनके पास अच्छी किस्म की लकड़ी भरपूर मात्रा में है, जो नए महल के दरवाजे बनाने में काम आएगी। इसीलिए मैं उनके पास लकड़ी खरीदने का प्रस्ताव रख आया हूं। वे हमें कम

१. श्यालकः-साला (पत्नी का भाई)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीमत पर लकड़ी बेचने को तैयार हैं। इसके साथ ही आज रात महाराजश्री के मनोरंजन के लिए भी आने का बुलावा दे दिया है।' यह सब बताकर मंत्री वहां से चला गया।

राजा रानी की ओर देखकर मुस्करा रहा था। रानी नतमस्तक हो गई, चूंकि उसे अपने प्रश्न का उत्तर मिल चुका था।

२५. आग्रहः

मात्रा मे शिक्षितं नूनं, गृहीतं न विमुच्यताम्।
पादाघातं[१] गर्दभस्य, सहमानोऽपि सोऽवचत्।।

गधे की लातों को सहन करता हुआ बच्चा बोला–मेरी मां ने सिखाया है कि जिसको पकड़ो, उसे छोड़ो मत।

कथा

बच्चा प्रतिदिन स्कूल जाता था, पर पढ़ने में उसका मन एकाग्र नहीं रहता था। वह कभी कुछ पढ़ता और कभी कुछ। अध्यापक ने प्रमाणपत्र पर इस तथ्य को अंकित कर दिया। मां ने प्रमाणपत्र पढ़ा और बच्चे को समझाते हुए कहा–अच्छे बच्चे वे होते हैं, जो एक बार पकड़ी हुई चीज को नहीं छोड़ते। यह बात बच्चे के मन में जम गई। दूसरे दिन से उसने अपने स्वभाव को बदलना शुरू कर दिया।

एक दिन बच्चा स्कूल से घर लौट रहा था। रास्ते में उसने एक गधा देखा। बच्चे ने खेल-खेल में गधे की पूंछ पकड़ ली। गधा दुलत्ती मारने लगा। बच्चे ने कसकर पूंछ पकड़ ली। वहां से गुजरने वाले लोगों ने बालक को बहुत समझाया, पूंछ छुड़वानी चाही, पर वह नहीं माना। एक व्यक्ति ने उससे दुलार से पूंछ न छोड़ने का कारण पूछा।

वह बोला–मेरी मां ने कहा है कि अच्छे बच्चे एक बार पकड़ी हुई चीज को कभी नहीं छोड़ते।

माता ने जिस संदर्भ में बात कही थी, उसे न समझकर गधे की पूंछ पकड़ने वाला बालक दुलत्ती खाता गया। इसी प्रकार तत्त्व को समझे बिना उसका आग्रह करने वाला व्यक्ति अपना हित नहीं साध सकता।

२६. भयं कुतः?

महात्मैकेन स पृष्टः जागर्सि ते भयं कुतः?।
तेनोक्तमान्तरः शत्रुः भयं जनयति सदा।।

---

१. पादाघातम्–पैर का प्रहार।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक व्यक्ति ने महात्मा से पूछा—आप जागते क्यों हैं? आपको किससे भय है? महात्मा ने कहा—आन्तरिक शत्रु सदा भय उत्पन्न करते हैं।

कथा

आधी रात बीत चुकी थी। आश्रम का समूचा वातावरण नीरव और शान्त था। अपनी कुटिया में एक महात्मा जाग रहे थे। एक व्यक्ति महात्मा के पास आया। चरण छूकर उसने पूछा—'भगवन्! आप जागते क्यों हैं? आपको किस चीज का भय है? न आपके पास धन है, न कोई और वस्तु, फिर भय कैसा?' महात्मा ने कहा—'वत्स! बाहरी शत्रुओं का मुझे कोई भय नहीं है। मेरे आन्तरिक शत्रु—क्रोध, लोभ, राग, द्वेष, मोह आदि-आदि मेरे में सदा भय उत्पन्न करते रहते हैं। इसलिए मुझे जागना पड़ता है।' प्रश्नकर्त्ता का मन समाहित हो गया।

(वि. सं. २०३६, चैत्र शुक्ला ६ (२ अप्रैल, १९७९), दिल्ली)

□□□

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अष्टमः उच्छ्वासः

पाइयभारई

१. तुलसीमंजरी पसत्थिसिलोगा

(आचार्य हेमचन्द्र द्वारा प्रणीत हैमशब्दानुशासन का आठवां अध्याय प्राकृत आदि छह भाषाओं में निबद्ध है। तुलसीमञ्जरी उसी अध्याय की बृहत् प्रक्रिया है। उसके प्रत्येक प्रकरण की समाप्ति पर व्याकरण के अनुरूप श्लोकों की रचना की गई है।)

१. [1]प्रणम्य श्रीमहावीरं, प्राकृतश्रुतिसिद्धये।
तुलसीमञ्जरीं कुर्वे, हैमसूत्रानुसारिणीम्।।

प्राकृत-श्रुति की सिद्धि के लिए मैं श्रीमहावीर को प्रणाम कर 'हैमशब्दानुशासनम्' के सूत्रों का अनुसरण करने वाली 'तुलसीमञ्जरी' की रचना करता हूं।

२. [2]आगया तुह पयम्मि य लच्छी,
निच्चला खलु मुणीसर! जाआ।
तो मणो वि मम निच्चलभावं,
लद्धुमेत्थ चिअ णिच्चं रमई।।

हे मुनीश्वर! तुम्हारे चरणों में लक्ष्मी आकर निश्चल (स्थिर) हो गई है, इसलिए मेरा मन भी निश्चल भाव को प्राप्त करने के लिए तुम्हारे चरणों में सदैव रमण करता है।

३. [3]जस्स पयांबुजरेणू, अवि सुपवित्तं कुणई मणुयगणं।
तस्स किवासलिलं चे, विमलं कुज्जा विचित्तं किं?।।

जिनके चरण-कमल की रज भी मनुष्यों को पवित्र करती है उस स्थिति में यदि उनका कृपा रूपी जल मनुष्यों को पवित्र करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

१. अनुष्टुप्। ३. आर्या।
२. इन्द्रवज्रा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. [1]जहा सरा वंजणाणं, संति सज्जीवणप्पआ।
तहा तमेव अम्हाणं, अत्थि संजमजीवओ।।

जैसे स्वर व्यञ्जनों को सम्यक् जीवन प्रदान करने वाले हैं–व्यंजनों की व्यवस्था स्वरों से ही होती है वैसे ही हे मुनीश! तुम हमें संयम जीवन देने वाले हो–हम मुनियों की व्यवस्था आपसे ही होती है।

५. पाए करे मुहे नेत्ते, सिरिं दट्ठुं विराइअं।
संसओ होइ जं तीसे, वासो पोम्मं व णं तुमं।।

हे तुलसी मुनीश! तुम्हारे चरण, हाथ, मुख और नेत्र में लक्ष्मी का निवास देखकर संशय हो रहा है कि उसका निवास कमल में है या तुम्हारे भीतर।

६. कम्मसद्दस्स कीवत्तं, लिंगमेत्तं हुवीअ जं।
तुमे तु तस्स विद्धंसं, किच्चा तं चरिअट्ठिअं।।

हे तुलसी मुनीश! कर्म शब्द का क्लीबत्व लिंगमात्र तक सीमित था, किन्तु तुमने उस कर्म का नाश कर उसे चरितार्थ कर दिया।

७. जस्स नो जम्हदम्हत्तं, अत्थि तं तुलसीगणिं।
जमम्हत्तेण जाणामो, सब्भत्तिभावणा हि सा।।

जिसमें युष्मद् (तू) और अस्मद् (मैं) का भेद नहीं है, उस तुलसीगणी को हम अस्मद् (उत्तम पुरुष) रूप में जान रहे हैं और वही वास्तव में सद्भक्ति की भावना है।

८. सव्वासु वि विभत्तीसु, एगरूवं जहाव्वयं।
तहा सव्वविभत्तीसु, एगरूवा तुहं मई।।

जैसे सब विभक्तियों में अव्यय एकरूप रहते हैं, वैसे ही हे तुलसी मुनीश! तुम्हारी मति सब विभक्तियों–सभी विवेचनाओं में एकरूप बनी हुई है।

९. अत्थी णं पच्चओ थीणं, इत्थिपच्चयपच्चओ।
कहं तदा तुमे जाओ, संसओ एस मे महं?।।

कुछ लोग स्त्रियों में प्रत्यय–विश्वास नहीं करते, फिर तुमने 'स्त्री-प्रत्यय' में प्रत्यय कैसे किया? यह मेरा बहुत बड़ा संशय है।

१०. वायरणे पहाणत्तं, कारकस्स जहा भवे।
तहा गणे पहाणत्तं, कारकत्तेण ते भवे।।

---

१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे व्याकरण में कारक की प्रधानता होती है, वैसे ही गण में कारक रूप में तुम्हारी प्रधानता है।

११. तहियं वयणं तुब्भ, को न सद्दहए जणो?।
जं विअसिअं हिययं, कुणए सुइमत्तओ।।

तुम्हारा हितकर वचन, जिसे सुनने मात्र से हृदय विकस्वर हो जाता है, उस पर कौन व्यक्ति श्रद्धा नहीं करता?

१२. [1]जगदर्चिततुलसीमञ्जर्या इव सुरुचेस्तुलसीमञ्जर्याः।
पूर्वार्धं कलितं सुखकर्या तुलसीकृपालतामञ्जर्या।।

तुलसी का पौधा जगत्मान्य होता है। उसकी मंजरी की भांति मैंने आचार्य तुलसी की सुखकारी कृपा से सुरुचि पूर्ण 'तुलसीमंजरी' के पूर्वार्ध की संरचना की है।

१३. [2]आर्हतीं भारतीं स्मृत्वा, भैक्षवीं च मतिप्रदाम्।
तुलसीमञ्जरी मञ्जुरुत्तरार्धेन तन्यते।।

अर्हत् की तथा बुद्धि प्रदान करने वाली भिक्षु स्वामी की वाणी का स्मरण कर मैं भव्य 'तुलसीमञ्जरी' के उत्तरार्ध का निर्माण कर रहा हूं।

१४. तुलसीमञ्जरीनामा, ग्रन्थः षट्शारदात्मकः।
प्राकृताख्यैकदेशेन, पूर्तिमाश्रितवानयम्।।

छह भाषाओं से युक्त 'तुलसीमञ्जरी' नामक यह ग्रन्थ प्राकृत नामक एक भाग से संपूर्णता को प्राप्त हुआ है।

१५. [3]षड्जीवकायेषु यथा हि पृथ्वीराधारभूता भवतीह लोके।
तथैव च प्राकृतभारतीयं, षड्वाग्भिराधारतया मतास्ति।।

जैसे इस लोक में षड्जीवनिकायों में पृथ्वी आधारभूत प्रथम निकाय है वैसे ही यह प्राकृत भाषा छह भाषाओं का आधार है।

(वि. सं. १९९८ (सन् १९४१), राजलदेसर चतुर्मास)

---

१. पादाकुलकम्।
२. अनुष्टुप्।
३. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. राजगिहसंकप्पो

(राजगृह, वैभार पर्वत का सर्वोच्च शिखर। वहां सप्तपर्णी गुफा के द्वार पर आचार्य तुलसी संसघ प्रकृतिनिर्मित विशाल शिलाखंड पर विराजे। कहा जाता है कि यह वही शिलाखंड है, जहां भगवान् महावीर के चरण टिके थे।

उस दृश्य को देखकर सहसा भगवान् महावीर की स्मृति हो आई। उस स्मृति में मैंने प्राकृत भाषा में आशुकवित्व करते हुए श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।)

१. [१]मिउभावं कठोरत्तं, किच्चा चिअ समन्निअं।
अभू परीसहेऽदीणो, मिऊ सव्वेसु पाणिसु।।

भगवान् महावीर ने मृदुता और कठोरता का समन्वय किया।

यह शिलापट्ट ऊपर से चिकना और भीतर से कठोर है। भगवान् महावीर के आसन के लिए यह इसलिए उपयुक्त बना कि वे परीषहों को सहन करने में अदीन-कठोर थे और सब प्राणियों के प्रति मृदुता (स्निग्धता) का अनुभव करने वाले थे।

२. अंतिमं देसणं काउं, साहिआ अंतिमा गई।
अंतं किच्चा अणंतो भू, अयलो अक्खयो अजो।।

इस वैभारगिरि पर अंतिम देशना देकर भगवान् अंतिम गति (मोक्ष गति) को प्राप्त हो गए। वे इस स्थूल शरीर (कर्म शरीर) का अंत कर अनंत, अचल, अक्षय और अजन्मा हो गए।

३. जस्स रम्माणि वक्काणि, कुज्जा वक्कमवक्कगं।
तेसिं णाम समुद्धारो, कायव्वो सो कहं भवे।।

जिनके सुरम्य वाक्य वक्र को भी अवक्र (सरल) बना देते हैं, उनके वाक्यों (उनकी वाणी) का समुद्धार करना है, वह कैसे हो?

४. पसारो उवदेसाणं, आयतुलप्पसाहिओ।
भवे सो दिवसो धन्नो, भविस्सइ भविस्सइ।।

आत्मतुला का प्रतिपादन करने वाले उनके उपदेशों का प्रसार जिस दिन होगा, वह दिन धन्य होगा, धन्य होगा।

५. विगारा णिव्विगारत्तं, जत्थ जंति य पाणिणं।
को विगारी भवे तत्थ, भूमी चेवाविगारिणी?।।

---
१. अनुष्टुप्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस शिलापट्ट पर स्थित होकर प्राणियों के विकार निर्विकारता को प्राप्त हो जाते हैं, वहां कौन विकारी होगा? यह भूमि ही निर्विकार है।

(वि. सं. २०१५, पौष शुक्ला दसमी (१९ जनवरी, १९५९), राजगृह, वैभार पर्वत)

३. अप्पनिवेदणं

(रींछेड़, मेवाड़ में आचार्य तुलसी के निर्देशानुसार प्राकृत में गुम्फित अनुभूतिपरक आत्मनिवेदन–)

१. [1]सामण्णमेयं गहियं ति जाणे,
किमट्ठमेयं गहियं न जाणे।
नाणं न सव्वत्थपवत्तगं जं,
सद्धापगासो परमोत्थि नाणा।।

'श्रामण्य स्वीकार किया है'–यह मैं जानता हूं, किन्तु यह नहीं जानता कि मैंने श्रामण्य क्यों स्वीकार किया? ज्ञान सभी अर्थों का प्रवर्तक नहीं होता। श्रद्धा का प्रकाश ज्ञान के प्रकाश से महत्त्वपूर्ण है।

२. [2]बालत्तणे णाम अणिच्छियत्थे,
कज्जं कयं णो परिणामदंसी।
मग्गावरोहो न कुहावि लद्धो,
सद्धापगासो परमोत्थि नाणा।।

निश्चय करने में अक्षम बचपन में मैंने अनेक कार्य किए हैं। मैं उस समय परिणामदर्शी नहीं था। फिर भी मेरा मार्ग कहीं भी अवरुद्ध नहीं हुआ। श्रद्धा का प्रकाश ज्ञान के प्रकाश से महत्त्वपूर्ण है।

३. [3]विसिट्ठनाणी वि विणीयसीसो,
अच्चं च निच्चं गुरुणो करेइ।
नाणं न सव्वत्थपवत्तगं जं,
सद्धापगासो परमोत्थि नाणा।।

विनीत शिष्य ज्ञानी होने पर भी सदा गुरु की अर्चा करता है। क्योंकि ज्ञान सभी अर्थों का प्रवर्तक नहीं होता। श्रद्धा का प्रकाश ज्ञान के प्रकाश से महत्त्वपूर्ण है।

---

१. उपजाति।
२. इन्द्रवज्रा।
३. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. बहुस्सुओ भिक्खुवरो करेइ,
गिलाणकज्जं अगिलाणभावा।
नाणं न सव्वत्थपवत्तगं जं,
सद्धापगासो परमोत्थि नाणा।।

बहुश्रुत भिक्षु ग्लान की सेवा अग्लान भाव से करता है। ज्ञान सभी अर्थों का प्रवर्तक नहीं होता। श्रद्धा का प्रकाश ज्ञान के प्रकाश से महत्त्वपूर्ण है।

५. [1]तक्कप्पहाणो वि महामणीसी,
बुड्ढस्स पुज्जस्स सुयप्पगस्स।
आणं अखंडं पकरेइ सक्खं,
सद्धापगासो परमोत्थि नाणा।।

तर्क-प्रधान महामनीषी शिष्य भी अल्पश्रुत अपने वृद्ध पूज्य की आज्ञा का साक्षात् रूप से अखंड आराधन करता है। श्रद्धा का प्रकाश ज्ञान के प्रकाश से महत्त्वपूर्ण है।

६. णाणेण हं णाणुसओ म्हि णिच्चं,
सद्धा उ णिच्चं अणुचारिणी मे।
वत्तो पि हं तेण इणं च मन्ने,
सद्धापगासो परमोत्थि नाणा।।

ज्ञान ने मेरा सदा अनुसरण नहीं किया, किन्तु श्रद्धा सदा मेरी अनुचारिणी रही है। अतः मैं व्यक्त होने पर भी यह मानता हूं कि श्रद्धा का प्रकाश ज्ञान के प्रकाश से महत्त्वपूर्ण है।

७. [2]न जत्थ नाणं कुणई पगासं,
निच्चंधयारे गुविले मणस्स।
तत्थावि सद्धा कुणई पगासं,
सद्धापगासो परमोत्थि नाणा।।

सदा सघन अंधकार से व्याप्त मन के गहन जंगल में जहां ज्ञान प्रकाश नहीं कर पाता, वहां भी श्रद्धा प्रकाश फैला देती है। श्रद्धा का प्रकाश ज्ञान के प्रकाश से महत्त्वपूर्ण है।

---

१. इन्द्रवज्रा। २. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८. अचक्खुगाणं इणमत्थि चक्खू,
अपायगाणं चरणं इणं च।
सद्धाविहीणस्स मणस्स देसे,
णो वारिहं वोत्तुमिणं ति भव्वं।।

यह श्रद्धा नेत्रहीन व्यक्तियों के लिए नेत्र और चरणहीन व्यक्तियों के लिए चरण है। श्रद्धाविहीन मन के प्रदेश में यह भव्य है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

९. [1]जो अत्तवीसासपगासपत्तो,
तेणंधयारो सयलो वि तिण्णो।
राओ वि णो तारिसमंधयारं,
संदेहघत्तस्स जहा दिणे वि।।

जिसने आत्म-विश्वास का प्रकाश पा लिया, उसने समूचे अंधकार का पार पा लिया। रात्रि में भी वैसा अंधकार नहीं होता, जैसा अंधकार दिन में भी संदेहशील व्यक्ति के होता है।

१०. [2]मणप्पसाओ विउलो जहत्थि,
महं स सक्को वि परेण लद्धुं।
भवे उवालंभपरो न भावो,
अणिच्छिए वेस तउज्जुमग्गो।।

जैसे मुझे मन की विपुल प्रसन्नता प्राप्त है, उसे दूसरा भी प्राप्त कर सकता है, यदि उसके मन में अनिश्चित वस्तु के प्रति उपालंभ या शिकायत का भाव न हो। प्रसन्नता की प्राप्ति का यह ऋजु मार्ग है।

११. [3]जइत्थि पच्चक्खमिहं भवं महं,
तो पक्खपातं न पियस्स संसए।
ण तुच्छगं सो कुणई महंतगं,
परं महंतं पि करेइ तुच्छयं।।

यदि आप वास्तव में महान् हैं, तो प्रिय के प्रति पक्षपात न करें। क्योंकि पक्षपात तुच्छ व्यक्ति को महान् नहीं बना सकता, किन्तु महान् को तुच्छ बना डालता है।

---

१. इन्द्रवज्रा।
२. उपेन्द्रवज्रा।
३. उपजाति (वंशस्थ+इन्द्रवंशा)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१२. जइत्थि पच्चक्खमिहं भवं लहू,
तो विद्ध-आणं समतिक्कमाहि णो।
फलाणुभूई स्स परं भविस्सई,
तया जया तं गुरुओ भविस्ससि।।

यदि तुम प्रत्यक्ष ही छोटे हो, तो वृद्धजनों की आज्ञा का अतिक्रमण मत करो। इसकी फलानुभूति तुम्हें तब होगी, जब तुम स्वयं गुरु बनोगे।

१३. [1]अलद्धलक्खे मणसो पवित्ती,
घणत्तमागच्छइ जारिसं च।
न तारिसं गच्छइ लद्धलक्खे,
मए समंता अणुभूयमेयं।।

लक्ष्य की अनुपलब्धि के काल में मन की प्रवृत्ति जितनी सघन होती है, उतनी लक्ष्य के उपलब्ध होने पर नहीं होती। मैंने सभी क्षेत्रों में यह अनुभव किया है।

१४. [2]तेणेव सामण्णमुवागएण,
लक्खं परं किंचिऽवधारणीयं।
पस्सं जणो लक्खमपत्तमित्थ,
सयं तदट्ठं धणियं पयाइ।।

इसीलिए श्रामण्य में उपस्थित मुनि को किसी न किसी लक्ष्य का अवधारण कर लेना चाहिए। जब तक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होगी, तब तक वह स्वयं बहुत अधिक प्रयत्न करता रहेगा।

१५. तस्संधयारो दिवसे वि अत्थि,
निरिक्खिओ जेण महं न अप्पा।
राओ वि तस्सत्थि महं पगासो,
निरिक्खिओ जेण महं णिअप्पा।।

जिसने महान् आत्मा का निरीक्षण नहीं किया है, उसके लिए दिन में भी अंधकार है और जिसने अपनी महान् आत्मा का निरीक्षण किया है, उसके लिए रात में भी महान् प्रकाश है।

---

१. उपेन्द्रवज्रा। २. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१६. [१]जस्सत्थि पासे चिअ अप्पणो पहू,
ण सो जणो णाम परस्सिओ सिया।
ण जेण लद्धो चिअ अप्पणो पहू,
पासं परं रुस्सइ तुस्सई सया।।

जिसके पास अपना प्रभु विद्यमान है, वह व्यक्ति कभी भी दूसरे के आश्रित नहीं होता। जिसने अपने प्रभु को नहीं पाया, वह दूसरे को देखकर रुष्ट या तुष्ट होता रहता है।

१७. [२]आराहिओ होहिइ अप्पणो पहू,
विराहिआ होहिइ खुद्दभावणा।
आराहिआ होहिइ खुद्दभावणा,
विराहिओ होहिइ अप्पणो पहू।।

जब अपने प्रभु की आराधना की जाती है, तब क्षुद्र भावना विराधित हो जाती है, नष्ट हो जाती है। जब क्षुद्र भावना की आराधना की जाती है, तब अपने प्रभु की विराधना होती है।

१८. पासं पियस्सावि जणस्स दोसे,
गुणे य पासं तह अप्पियस्स।
अप्पं सिणिद्धं पकरेमि नूणं,
कहेंति लूहं पवरं कहेंतु।।

प्रियजन के दोषों और अप्रियजन के गुणों को देखकर भी मैं अपने आपको स्निग्ध–स्नेहमय बनाए रखता हूं। फिर भी मेरे अपने लोग मुझको 'रूक्ष' कहते हैं, भले ही कहें।

१९. गुणे हि पासं सययं पियस्स,
दोसे हि पासं तह अप्पियस्स।
अप्पं सुलूहं पकरेमि नूणं,
परं सगा मं च कहेंतु निद्धं।।

प्रियजनों के गुणों और अप्रियजनों के दोषों को देखकर मैं अपने आपको रूक्ष बना लेता हूं, फिर भी मेरे अपने लोग मुझको 'स्नेहिल' कहते हैं, भले ही कहें।

---

१. उपजाति (वंशस्थ+इन्द्रवंशा)। २. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२०. नाहिंति लोगा किमियं ति नच्चा,
कज्जं सुकज्जं पि न तं करोसि।
परस्स दिट्ठीइ निरिक्खमाणो,
अप्पाणमेवं परतंतिओ सि।।

यदि मैं यह करूंगा तो लोग क्या समझेंगे—ऐसा जानकर तुम अच्छे कार्य को भी नहीं करते। इस प्रकार तुम दूसरे की दृष्टि को देखते हुए अपने आपको परतंत्र बना डालते हो।

२१. परस्स तोलामि अहं तुलाए,
माणेण अन्नस्स नियं मिणामि।
पासामि दिट्ठीइ परस्स चे हं,
तो अत्थिभावो पि ण अप्पणोत्थि।।

मैं दूसरों की तुला से तोला जाऊं, दूसरों के माप से मापा जाऊं और दूसरों की दृष्टि से देखा जाऊं—इस प्रक्रिया में स्वयं का अस्तित्व-भाव भी नहीं रह जाता।

२२. एएण सिद्धंतविणिच्छएण,
अणेगवारं जडिला ठिई वि।
उज्जूकया णेव मणं विसण्णं,
अत्थित्तमेवापि सुरक्खियं च।।

इस सिद्धान्त को निश्चित कर मैंने अनेक बार जटिल स्थिति को भी सरल बनाया है। इस प्रक्रिया से मेरा मन भी विषण्ण नहीं हुआ और मैंने अपने अस्तित्व की भी पूर्ण सुरक्षा की।

२३. [1]पढियं गुणियं सुणियं,
भणंतस्स होइ जंपिरा बुद्धी।
जप्पंतस्सणुभूयं,
बुद्धी मोणं सयं समासेइ।।

जो व्यक्ति पढ़े हुए, अभ्यास किए हुए और सुने हुए की बात कहता है उसकी बुद्धि वाचाल हो जाती है। जो अपनी अनुभूत बात कहता है, उसकी बुद्धि मौन हो जाती है।

---

१. आर्या।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२४. [1]सच्चं खु सक्खं भवई तया जया,
सद्दस्स जाला विगओ भवामि।
सद्दस्स कारागिहतंतिओ जणो,
सव्वत्थ मोहं तिमिरं च पासई।।

जब मैं शब्द-जाल से छूटता हूं, तब सत्य का साक्षात्कार होता है। जो व्यक्ति शब्द के कारागृह का बन्दी है, वह सर्वत्र मोह और अंधकार ही देखता रहता है।

२५. [2]जेणत्थि दिण्णा पवरा सुदिट्ठी,
तेणत्थि मग्गो पवरोत्थ पत्तो।
सुरक्खिआ तेण कयण्णया य,
पइट्ठिओ मे तुलसी तओत्थि।।

जिसने मुझे सुदृष्टि दी, उसी ने मुझे सही मार्ग भी दिखाया। मेरी कृतज्ञ भावना भी सुरक्षित रही। मेरे हृदय में आचार्य तुलसी प्रतिष्ठित हैं।

(वि. २०१९, पौष शुक्ला ३ (२९ दिसम्बर, १९६२), रींछेड

□□□

---

१. इन्द्रवज्रा।
२. उपजाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्टद्वयम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. ग्रन्थगताः सूक्तयः

प्रथमः उच्छ्वासः

१. **ऋतमिति सकलाः पूर्णमापूरयन्ति। पृ. ६**

यह सत्य है कि सभी लोग भरे हुए को ही भरते हैं।

२. **सारे नाडम्बरो यद् बहिरुपकरणं रच्यते स्वल्पसारैः। पृ. ६**

सारयुक्त में कोई आडम्बर नहीं होता। जो स्वल्पसार वाला होता है, वही बाहरी उपकरणों की रचना करता है, आडम्बर दिखाता है।

३. **पापमज्ञानमुच्चैः। पृ. ७**

अज्ञान बहुत बड़ा पाप है।

४. **न विश्वासश्चाप्यो भवति महतां चञ्चलधियाम्। पृ. ७**

चंचलवृत्ति वाले व्यक्ति महान् होते हुए भी विश्वास प्राप्त करने योग्य नहीं हो सकते।

५. **अन्यालम्बनतो यदूर्ध्वगमनं तन्नास्ति रिक्तं भयात्। पृ. ८**

दूसरों के सहारे ऊंचा चढ़ना खतरे से खाली नहीं होता।

६. **हृदयमितरद् भिन्नमावश्यकत्वम्। पृ. ८**

हृदय भिन्न होता है और आवश्यकता भिन्न।

७. **हा! हा! चित्रं सकलमनुजाः वावदूकेषु रक्ताः। पृ. १०**

अत्यन्त आश्चर्य है कि सब लोग वाचाल व्यक्तियों में ही अनुरक्त होते हैं।

८. **नीचो गर्वी भवति विषया नापरे येन दृष्टाः। पृ. १०**

जिसने दूसरे विषयों को नहीं जाना वही तुच्छ—अज्ञानी व्यक्ति थोड़ा-सा जानकर गर्वित होता है।

९. **हा! दम्भिनां चेष्टितम्। पृ. ११**

हा! दम्भियों की चेष्टा कुटिल होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१०. **किमिति हा! महिमा महतामसौ। पृ. १२**

आश्चर्य है! किसी की उपेक्षा करना क्या महान् व्यक्तियों की महिमा है।

११. **बहुलता न भवेन्मधुरा क्वचित्। पृ. १२**

प्रचुरता (संग्रह) कहीं मधुर नहीं होती।

१२. **मधुरतां सृजति ध्रुवमल्पता। पृ. १२**

अल्पता (असंग्रह) मधुरता का सृजन करती है।

१३. **न तु नुताऽपि च शून्यगतोच्चता। पृ. १३**

परप्रेरित होने पर भी शून्य में जाने से उच्चता की प्राप्ति नहीं होती।

१४. **सदृशचरितयुग्मे कः कथं तोलयेत् कम्। पृ. १३**

जहां दो का सदृश चरित्र होता है वहां कौन किसको कैसे तोल सकता है?

१५. **दुर्लभो हि विकासः। पृ. १३**

विकास दुर्लभ है।

१६. **सलिलमपि सुधा स्याद् मन्थनेनेति तत्त्वम्। पृ. १४**

मंथन[१] से पानी भी अमृत बन जाता है, यह एक सत्य है।

१७. **अमृतमपि विषं स्याद् रूढवृत्त्येति तथ्यम्। पृ. १४**

यह एक तथ्य है कि रूढ़वृत्ति से अमृत भी विष हो जाता है।

१८. **हाऽज्ञानिनां चेष्टितम्। पृ. १४**

हा! अज्ञानियों की चेष्टा विपरीत ही होती है।

१९. **ततो विश्वासो नो भवति महतां चञ्चलधियाम्। पृ. १४**

चंचल बुद्धि वाले बड़े व्यक्तियों के प्रति विश्वास नहीं होता।

२०. **धिक् चापलाजृम्भितम्। पृ. १५**

धिक्कार है! चपलता को।

२१. **कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति। पृ. १५**

पुत्र कुपुत्र हो सकता है, किंतु माता कभी कुमाता नहीं हो सकती।

---

१. समुद्र-मन्थन से अमृत निकला था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२२. **पुत्रास्ते वसुधातले सुकृतयो ये स्युः पितुः सेविनः।**
दोषान् सर्वगुणान् विधाय सततं लोके यतन्ते हितम्।। पृ. १५
इस पृथ्वी पर वे ही पुत्र भाग्यशाली होते हैं जो पिता की सेवा करते हैं, जो अपने दोषों को सर्वगुणों के रूप में परिणत कर निरन्तर लोक-हित में प्रयत्न करते हैं।

२३. **शोषणं भूरि दुःखम्। पृ. १६**
शोषण प्रचुर दुःख का हेतु होता है।

२४. **श्रेयस्करं शासनम्। पृ. १६**
शासन (संघ) श्रेयस्कर होता है।

२५. **अग्राहे बाह्यरूपं न भवति विपुलं किन्तु माधुर्यमत्र। पृ. १७**
असंग्रह में बाह्य रूप विशाल नहीं होता, किन्तु मधुरता होती है।

२६. **संग्रहे व्यत्ययो हि। पृ. १७**
संग्रह में विपरीत होता है—बाह्य रूप बड़ा होता है, मधुरता नहीं होती।

२७. **परः परः स्वकः स्वकः। पृ. १८**
अपना अपना होता है, पराया पराया होता है।

२८. **दोषैर्मुक्ता यदि स्युर्न खलु गुणगणैश्चापि के ते तटस्थाः। पृ. २१**
वे तटस्थ व्यक्ति कौन हैं जो दोषों से मुक्त हों और गुणसमूह से भरे हुए भी न हों।

२९. **नूनं न स्याच्छून्यतायां स्वतेजः। पृ. २२**
यह निश्चित है कि शून्यता में अपना तेज नहीं होता।

३०. **भीता हि जडा भवन्ति। पृ. २२**
डरने वाले जड़ होते हैं।

३१. **अप्यस्ति यत्रावरणं कनीयः तत्रैव जाड्यं च तमः प्रवेशि। पृ. २३**
जहां थोड़ा भी आवरण है, वहीं जड़ता और अन्धकार प्रवेश पाते हैं।

३२. **तत् किं स्नेहः साहचर्याद् बिभेति। पृ. २३**
वह स्नेह क्या, जो साहचर्य से भय खाए।

३३. **स्नेहश्चेतः चिक्कणत्वं चिनोति। पृ. २३**
स्नेह चित्त को स्निग्धता से भरता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३४. **निश्छिद्रत्वं तेन काम्यं प्रगत्याम्। पृ. २४**

प्रगति में निश्छिद्रता काम्य होती है।

३५. **स्वकीयाः परकीयाः स्युः परकीया अपि स्वकाः। पृ. २५**

लक्ष्मी के चले जाने पर अपने पराए हो जाते हैं और लक्ष्मी के मिल जाने पर पराए भी अपने हो जाते हैं।

३६. **ते के सन्तो जगत्यां परहितनिरता ये न जीवन्ति कष्टम्। पृ. २६**

जगत् में वे कौन व्यक्ति हैं जो परहित में लगे हुए हैं और कष्ट का जीवन नहीं जीते।

द्वितीयः उच्छ्वासः

३७. **लघुत्वमुच्चैर्गमनस्य हतु। पृ. २७**

लघुता–हल्कापन ऊपर जाने का हेतु है।

३८. **प्रायो जाड्यं ह्यन्धकारानुयायि। पृ. २७**

जड़ता प्रायः अन्धकार का अनुगमन करने वाली होती है।

३९. **दोषोऽपि नापरजनान् परिपीडयन् ही।**
कारुण्यभाजनमलं सुजनाशयेषु।। पृ. २९

जो भी दोष दूसरे लोगों को पीडित नहीं करता वह दोष सज्जन व्यक्तियों के हृदय में करुणा का पात्र होता है।

४०. **दुष्टानां खलु जीवितं सुमहतामेकाङ्गिपक्षे स्थिरम्। पृ. ३०**

दुष्ट व्यक्तियों का जीवन महान् पुरुषों के एकांगी पक्ष पर ही स्थिर रहता है।

४१. **गुरुत्वमन्तःकरणे प्रविष्टं लघुत्वमापादयते जनानाम्।**
लघुत्वमन्तःकरणे प्रविष्टं गुरुत्वमापादयते जनेषु।। पृ. ३१

मनुष्यों के अन्तःकरण में गुरुत्व (बड़प्पन) आते ही वह उनको लघु बना देता है और अन्तःकरण में लघुत्व आते ही वह उन्हें गुरु बना देता है।

४२. **क्षीणत्वं माननैयून्याद्, न केषां स्वाभिमानिनाम्। पृ. ३२**

सम्मान की न्यूनता होने पर किस स्वाभिमानी को ठेस नहीं पहुंचती?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४३. **कश्चिन्नयत्युदयमस्तमियर्त्ति कश्चित्। पृ. ३३**

इस संसार में कोई उदित होता है, कोई अस्त।

४४. **आलोकदक्षा विरला भवन्ति। पृ. ३४**

आलोक को जानने वाले विरल होते हैं।

४५. **जानन्ति केचिन्न च कर्तुमीशाः, कर्तुं क्षमा न च ते विदन्ति।**
जानन्ति तत्त्वं प्रभवन्ति कर्तुं, ते केऽपि लोके विरला भवन्ति।। पृ. ३४

कुछ लोग जानते हैं, करने में समर्थ नहीं होते। कुछ लोग करने में समर्थ होते हैं, जानते नहीं। जो तत्त्व को जानते भी हैं और उसका आचरण करने में भी समर्थ होते हैं वे विरल लोग इस लोक में कौन हैं।

४६. **कोऽपि नेच्छतितमां शासनं स्वात्मनि। पृ. ३६**

कोई भी अपने पर अनुशासन करना नहीं चाहता।

४७. **विषयेषु विरक्तो हि शोकं तरति मानवः। पृ. ४७**

जो मनुष्य विषयों से विरक्त होता है, वह शोक का पार पा जाता है।

४८. **प्रेम्णोऽभावे विजनवसतिश्चापि नैकत्वमेति। पृ. ५२**

प्रेम के अभाव में एकान्त में रहने वाला व्यक्ति भी अकेला नहीं है।

तृतीयः उच्छ्वासः

४९. **पदे पदे सदानन्दः, शक्तिस्रोतः पदे पदे।**
ध्यानहीना न पश्यन्ति, बहुरत्नं शरीरकम्।। पृ. ५४

पग-पग पर सदा आनन्द है, पग-पग पर शक्तिस्रोत है, यह शरीर बहुरत्न वाला है, पर ध्यानहीन व्यक्ति उसे देख नहीं पाते।

५०. **वास्तवे सुखदुःखानां दाता कोऽपि न विद्यते। पृ. ५५**

वास्तव में सुख-दुःख देने वाला कोई भी नहीं होता।

५१. **शठे शाठ्यं समाचर्य स्वयं दुःखं समर्जितम्। पृ. ६२**

धूर्त के प्रति धूर्तता का आचरण कर व्यक्ति स्वयं दुःख का अर्जन करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थः उच्छ्वासः

५२. **न कष्टं नाम कष्टाय, कष्टापोहाय तन्मतम्।**

अस्मिन् कष्टाकुले लोके, कष्टमुक्तेरसौ पथः।। पृ. ७३

कष्ट को सहना कष्ट के लिए नहीं है। वह कष्ट को दूर करने का उपाय है। इस कष्टाकुल जगत् में कष्ट को सहना ही कष्टमुक्ति का उपाय है।

५३. **आग्रहेण विवादेन लघुतां मानवो व्रजेत्। पृ. ८५**

आग्रह और विवाद से मनुष्य लघु—छोटा बनता है।

५४. **सुखं वाञ्छति सर्वोऽपि, दुःखं कोऽपि न वाञ्छति।**

सुखार्थं यतते लोको, दुःखं तथापि जायते।। पृ. ९३

सभी सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता। प्राणी सुख के लिए प्रयत्न करता है, फिर भी उसे दुःख होता है।

५५. **असन्तोषः बहिःकांक्षा, सन्तोषः प्रीतिरात्मनि।**

सन्तोषः परमं सौख्यं, असन्तोषोऽसुखं परम्।। पृ. ९४

असन्तोष बाह्य की आकांक्षा है, सन्तोष आत्मा में प्रीति है। इसलिए सन्तोष परम सुख है और असन्तोष परम दुःख है।

५६. **ज्ञानं भारः क्रियां विना। पृ. ९६**

क्रिया—आचरण के बिना ज्ञान भारभूत होता है।

५७. **ज्ञानिनां पर्षदि प्रायो मौनमज्ञानिनो वरम्।**

अज्ञानिनां समक्षे तु ज्ञानी भवति मौनभाक्।। पृ. ९८

ज्ञानियों की सभा में अज्ञानी का प्रायः मौन रहना ही अच्छा है और अज्ञानियों के सामने ज्ञानी का मौन होना अच्छा है।

५८. **विवादो वर्धते यत्र, मौनं तत्राऽतिशोभनम्। पृ. ९८**

जहां विवाद बढ़ता हो वहां मौन हो जाना बहुत अच्छा है।

५९. **प्रमोदो दुर्लभो लोके, ईर्ष्यास्ति सुलभा नृणाम्।**

गुणे संभागिता नेष्टा, दोषे संभागिता प्रिया।। पृ. ९९

इस संसार में मनुष्यों के लिए प्रमोद भावना का होना दुर्लभ है, ईर्ष्या का होना सुलभ है। वह गुण में संभागी होना नहीं चाहता, दोष में संभागी होना उसे प्रिय लगता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चमः उच्छ्वासः

६०. रन्ध्रे वेष्टुं ऋजुगतिरहो! रत्नवानेष दर्वी। पृ. १२५

सदा वक्र गति करने वाला मणिधर सर्प बिल में प्रवेश करते समय ऋजुगति वाला हो जाता है।

६१. लाभालाभे भवति समता तस्य किन्नाम दुःखम्।

रक्तो द्विष्टः सततमपि यस्तस्य सौख्यं कुतस्त्यम्।। पृ. १२६

जो व्यक्ति लाभ और अलाभ में सम रहता है, उसे दुःख कहां? और जो सतत लाभ में रक्त और अलाभ में द्विष्ट होता है, उसे सुख कहां?

६२. भाग्योदयो भिन्नपदो विभाति, सर्वत्र साम्यं न हि तेन दृष्टम्। पृ. १४०

सबका भाग्योदय भिन्न-भिन्न होता है। उसमें सर्वत्र समानता नहीं देखी जाती।

६३. अप्रेम्णि ये प्रेम सभाजयन्ति, ते पण्डिता एव न संशयोऽत्र। पृ. १४३

जो मनुष्य अप्रेम में भी प्रेम का आचरण करते हैं वे सब पंडित ही होते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

६४. विनम्र एव प्रविशेद् मनस्सु न वा गुरोः स्यात् सुलभोऽवकाशः। पृ. १५०

विनम्र ही मन में प्रवेश पा सकता है, गुरु—भारी के लिए वहां अवकाश नहीं है।

६५. सत्यात् परो नो परमेश्वरोऽस्ति। पृ. १५२

सत्य से बढ़कर कोई परम ईश्वर नहीं है।

६६. नात्मश्लाघा पण्डितेनात्र कार्या, दोषा वाच्या नो परेषां कदाचित्। पृ. १६२

पंडित व्यक्ति को अपनी प्रशंसा और दूसरों का दोषाख्यान नहीं करना चाहिए।

६७. भिन्ने मूलेप्येकता श्लाघनीया। पृ. १६४

मूल के भिन्न होने पर भी एकता श्लाघनीय होती है।

६८. उद्धारयेत् कः खलु निम्नवृत्तिम्। पृ. १६६

निम्नवृत्ति वाले का कौन उद्धार कर सकता है?

६९. सदा ऋजुत्वं पुरुषैः प्रशस्तं, परन्तु वक्रत्वमपि क्वचित् स्यात्। पृ. १६८

मनुष्य ने सदा ऋजुता की प्रशंसा की, किन्तु वक्रता भी कहीं कहीं प्रशस्त होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७०. **सर्वा कला धर्मकलाप्रविष्टा। पृ. १७३**

सारी कला धर्मकला में प्रविष्ट है।

७१. **यस्य ध्यानपदं नास्ति, नानन्दस्तस्य जायते। पृ. १७५**

जिसके ध्यान नहीं होता उसे आनन्द नहीं होता।

७२. **आधारशून्यं न गृहं गृहं स्यान्नाचारशून्यो मनुजोऽपि तद्वान्। पृ. १७५**

जैसे आधारशून्य गृह गृह नहीं होता वैसे ही आचारशून्य मनुष्य मनुष्य नहीं होता।

७३. **बिम्बं यदुच्चैः प्रतिभाति नित्यं, निम्नास्पदं तत् प्रतिबिम्बमेति। पृ. १८०**

बिम्ब सदा ऊपर होता है और वही निम्नास्पद होकर प्रतिबिम्ब हो जाता है।

७४. **परां स्पृशन्तीह जना न ते स्युः गाम्भीर्यभाजो भुवने कदापि। पृ. १८१**

जो व्यक्ति एक साथ वेग से उत्कर्ष का स्पर्श करते हैं वे कभी इस संसार में गंभीर नहीं हो सकते।

७५. **प्रकृतौ विद्यमानानां सौन्दर्यं जायते ध्रुवम्। पृ. १८१**

जो लोग प्रकृति में रहते हैं, उनमें निश्चित ही सौन्दर्य होता है।

७६. **श्रमः शमो यत् सहगामिनौ स्तः। पृ. १८३**

श्रम और शम सहगामी होते हैं।

७७. **तपसा लभ्यते सर्वं, तपोनिष्ठा गरीयसी। पृ. १८४**

तप से सब कुछ प्राप्त होता है। तपोनिष्ठा महान् होती है।

७८. **मनःप्रसत्तिः यदि साधुरूपा स्वास्थ्यस्य प्रश्नोऽपि समाधिमेति। पृ. १८५**

यदि मन की प्रसन्नता अच्छी है तो स्वास्थ्य का प्रश्न सहज समाहित हो जाता है।

षष्ठः उच्छ्वासः

७९. **कोपोऽसह्यो भवति महतां यन्मुधारोपजन्यः। पृ. १८८**

महान् व्यक्तियों का व्यर्थ के आरोप से उत्पन्न कोप असह्य होता है।

८०. **त्यागो भोगं जयति सततम्। पृ. १८९**

त्याग की भोग पर सदा विजय होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८१. **लक्ष्ये दृष्टिं क्षिपति पुरुषे दुर्लभा नार्थसिद्धिः। पृ. १९०**

व्यक्ति की दृष्टि लक्ष्य पर निश्चित हो जाने पर लक्ष्यसिद्धि दुर्लभ नहीं होती।

८२. **लोप्तुं शक्या न खलु सहजा दुर्जनैः सज्जनाभा। पृ. १९०**

दुर्जन व्यक्ति सज्जन पुरुषों की सहज आभा का लोप नहीं कर सकते।

८३. **वात्सल्यं नो रचयति भिदां दूरतः पार्श्वतो वा। पृ. १९५**

वात्सल्य दूर और पास का कभी भेद नहीं करता।

८४. **चित्ते गुरोः शश्वदनाश्रवाणाम्। पृ. १९५**

गुरु के चित्त में अविनीत शिष्यों का कभी प्रवेश नहीं होता।

८५. **क्व सार्थका स्याद् व्यवहारशून्या (प्रवृत्तिः)? पृ. १९९**

व्यवहारशून्य प्रवृत्ति कहां सार्थक होती है।

८६. **नातिक्रान्तो मारकस्यापि मृत्युः। पृ. १९९**

मारने वाले की भी मृत्यु अतिक्रान्त नहीं होती—उसकी भी मृत्यु होती है।

८७. **के के मुक्ता हा! प्रतीकारबुद्ध्या। पृ. २००**

आश्चर्य है! ऐसे कौन से व्यक्ति हैं जो प्रतिकार की भावना से मुक्त हों?

८८. **नम्रः कम्रो भवति भुवने यो नमेद् भज्यते न। पृ. २०१**

इस लोक में नम्र व्यक्ति ही कमनीय होता है। जो झुकना जानता है वह टूटता नहीं।

सप्तमः उच्छ्वासः

८९. **हा! कर्मणामस्ति गतिर्विचित्रा। पृ. २०६**

हा! कर्मों की गति विचित्र है।

९०. **हा! कोऽबलानां हि भवेत् सहायः।**
सर्वे समर्थाननुयान्ति लोकाः।। पृ. २०८

खेद है! दुर्बलों का सहायक कौन हो। सभी समर्थ लोगों का ही अनुगमन करते हैं।

९१. **श्वासः श्वासं विसृजति न वा श्वासरोधो हि हन्ति। पृ. २१२**

श्वास ही श्वास को छोड़ता है। श्वास का निरोध प्राणों का हरण कर लेता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९२. तुच्छत्वं नो किल विलयते तुच्छतायां कदाचित्।
तन्माहात्म्ये व्रजति विलयं रीतिरेषा प्रसिद्धा।। पृ. २१२
तुच्छता कभी तुच्छता में विलीन नहीं होती। वह महानता में विलीन होती है, यह प्रसिद्ध रीति है।

९३. एक एव भवेदात्मा सर्वेष्वपि हि प्राणिषु। पृ. २१४
सभी प्राणियों में आत्मा समान है।

९४. पूर्वमान्यतया ग्रस्तो न सत्यं लभते जनः। पृ. २१६
पूर्वमान्यता से ग्रस्त व्यक्ति सत्य को प्राप्त नहीं होता।

९५. कष्टकाले विचारो यः स सुखे परिवर्तते। पृ. २१७
कष्ट के समय जो विचार होता है वह सुख के क्षण में बदल जाता है।

९६. फलाकांक्षा न कर्त्तव्या, सर्वोच्चं ध्येयमर्थ्यताम्। पृ. २२१
फल की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए, सर्वोच्च ध्येय की याचना करनी चाहिए।

९७. दुस्त्यज्याहंकृतिः यतः। पृ. २२४
अहंकार को छोड़ना कठिन है।

९८. पुरुषार्थं विना चापि बुद्धिं कार्यं न सिद्धयति। पृ. २२९
पुरुषार्थ और बुद्धि के बिना कार्य सिद्ध नहीं होता।

अष्टमः उच्छ्वासः

९९. सद्धापगासो परमोत्थि नाणा। पृ. २३७
श्रद्धा का प्रकाश ज्ञान के प्रकाश से महत्त्वपूर्ण है।

१००. अचक्खुगाणं इणमत्थि चक्खू।
अपायगाणं चरणं इणं च।। पृ. २३९
श्रद्धा नेत्रहीन व्यक्तियों के लिए नेत्र और चरणहीन व्यक्तियों के लिए चरण है।

१०१. ण तुच्छगं सो कुणई महंतगं।
परं महंतं पि करेइ तुच्छयं।। पृ. २३९
पक्षपात तुच्छ व्यक्ति को महान् नहीं बना सकता, किन्तु महान् को तुच्छ बना डालता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आचार्य महाप्रज्ञ : जीवन-परिचय

जन्म : १४ जून १९२०, टमकोर (वि.सं. १९७७, आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी)

दीक्षा : १० फरवरी १९३१, सरदारशहर (वि.सं. १९८७, माघ शुक्ला दशमी)

अग्रगण्य : ६ फरवरी १९४४, गंगाशहर (वि.सं. २०००, माघ शुक्ला त्रयोदशी)

साहय्यपति : ३० जुलाई १९४७, रतनगढ़ (वि.सं. २००४, श्रावण शुक्ला त्रयोदशी)

निकायसचिव : २८ जनवरी १९६६, हिसार (वि.सं. २०२२, माघ शुक्ला षष्ठी

महाप्रज्ञ अलंकरण : १२ नवम्बर १९७८, गंगाशहर (वि.सं. २०३५, कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी)

युवाचार्य मनोनयन : ४ फरवरी १९७९, राजलदेसर (वि.सं. २०३५, माघ शुक्ला सप्तमी)

आचार्यपद : १८ फरवरी, १९९४, सुजानगढ़ (वि.सं. २०५०, माघ शुक्ला सप्तमी)

आचार्यपदाभिषेक : ५ फरवरी १९९५, दिल्ली (वि.सं. २०५१, माघ शुक्ला षष्ठी)

युगप्रधानपद : २३ जनवरी १९९९, टोहाना (वि.सं. २०५५, माघ शुक्ला षष्ठी)

युगप्रधानपदाभिषेक : १९ सितंबर १९९९, दिल्ली (वि.सं. २०५६, भाद्रव शुक्ला नवमी)

विशेष ज्ञातव्य : इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार (सन् २००३), धर्म चक्रवर्ती (सन् २००४) एवं राष्ट्रीय साम्प्रदायिक सद्भाव पुरस्कार (सन् २००५) आदि पुरस्कारों से पुरस्कृत/सम्मानित। साहित्य जगत् में चर्चित। शताधिक पुस्तकों के लेखक। दार्शनिक और प्रबुद्ध चिन्तक आदि।

महाप्रयाण : ९ मई २०१०, सरदारशहर (वि.सं. २०६७, द्वि. वैशाख कृष्णा एकादशी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

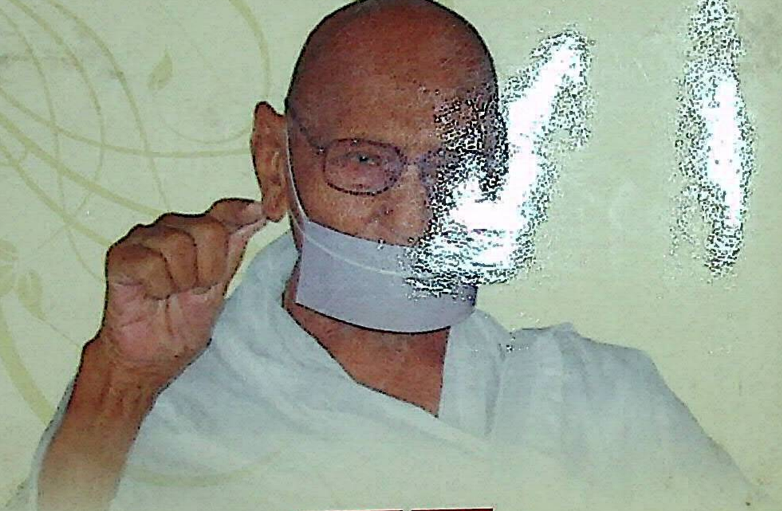

महाप्रज्ञ उवाच

विश्वासं कुरुषे कुरुष्व चिदि तं बाढं न वा विद्युति,
विश्वासं कुरुषे कुरुष्व मनसः शान्तौ न वा वार्दले।
विश्वासं कुरुषे कुरुष्व सुतरां हस्ते न वा वैभवे,
स्थैर्ये विश्वसनं हितं स्थिरतरं तच्चञ्चले चञ्चलम्।।

- यदि तू विश्वास करता है तो चैतन्य में गहरा विश्वास कर, विद्युत में नहीं।
- यदि तू विश्वास करता है तो मानसिक शान्ति में विश्वास कर, बादल में नहीं।
- यदि तू विश्वास करता है तो सदा हाथ-श्रम में विश्वास कर, वैभव में नहीं।
- स्थैर्य में विश्वास करना हितकर और स्थिरतर होता है, चंचल में किया गया विश्वास भी चंचल होता है।

ISBN 817195161
9788171951611

₹ 200/-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi